शिवाजी

[महाराष्ट्र-जातीय जीवन-सूर्य]

लेखक

स्व० सर यदुनाथ सरकार सी० आई० ई०,

एम० ए०, डी० लिट्० (ऑनररी),

ऑनररी एम० आर० ए०, एस्०, (लन्दन)

एफ्० आर० ए० एस्० (बङ्गाल)

कॉरस्पोण्डिंग मेम्बर रायल हिस्टारिकल

सोसायटी (इंग्लैण्ड)

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई-४

तृतीय संस्करण : नवम्बर, १९५९

मूल्य तीन रुपये पच्चीस नये पैसे

प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी, मैनेजिंग डायरेक्टर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर
(प्राइवेट) लिमिटेड, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई—४
मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ५५६५-१६

प्रकाशकका वक्तव्य

सर यदुनाथ सरकार जैसे संसार-प्रसिद्ध इतिहासकारका परिचय देना या उनकी अमर कृतियोंके बारेमे कुछ लिखना, सूर्यको दीपक दिखानेके समान होगा। सत्तर वर्षके इस तपस्वीने अपने अथक परिश्रम द्वारा भारतीय इतिहासके विभिन्न कालोंका ठीक-ठीक इतिहास लिखने और तत्कालीन घटनाओं तथा परिस्थितियोंपर पूरा-पूरा प्रकाश डालनेका जीवनभर भरसक प्रयत्न किया और आज भी वह उसी लगन और उत्साहके साथ अपने कार्यमें लगा हुआ है। पाँच मोटी-मोटी जिल्दोंमे औरंगजेबका इतिहास लिखनेके बाद उन्होंने इर्विन लिखित 'लेटर मुगल्ज़' नामक अपूर्ण ग्रन्थका सम्पादन किया, और अब 'फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर' शीर्षक बृहत् ग्रन्थकी रचना कर रहे है, जिसके तीन खण्ड तो प्रकाशित हो चुके हैं और अन्तिम चौथा खण्ड जल्द ही तैयार हो जावेगा। इनके सिवाय और भी कई ग्रन्थ सर यदुनाथकी लेखनीसे निकल चुके है और उन्होंने सम्पादन तो न जाने कितनोंका किया है।

सर यदुनाथ सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीके भारतीय इतिहासके आचार्य कहे जा सकते है। इन्हीं दो शताब्दियोंने दक्षिणी भारतमें मराठोंकी नवीन सत्ताका उत्थान और साथ ही उसका पतन और अन्त भी देखा। सर यदुनाथने मराठोंके इतिहासका पूरा-पूरा अध्ययन किया है, निष्पक्ष दृष्टिसे मराठोंके नेताओंकी ठीक-ठीक योग्यताको कूता है और उनकी विफलताओंको खोजकर उनके सच्चे कारणोंको ढूंढ़ निकाला है। सर यदुनाथने अँग्रेजीमें शिवाजीकी जीवनी भी लिखी है, जो अपने ढंगकी एक ही है। देश-विदेशके विद्वानोंने उसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। उसके तृतीय संस्करणपर रॉयल एशियाटिक सोसायटीकी बम्बईवाली शाखाने उन्हें 'जेम्स कैम्बेल सुवर्णपदक' देकर सम्मानित किया था।

स्वयं बंगाली-भाषा-भाषी होते हुए भी सर यदुनाथ हिन्दीके बड़े ही हिमायती हैं। उनके विचारानुसार हिन्दी भाषा ही राष्ट्र-भाषा हो सकती है। वे स्वयं हिन्दी लिख-पढ़ लेते हैं और हिन्दीमें भाषण भी दे लेते हैं। बरसोंसे आपकी इच्छा थी कि मेरे अंग्रेजी 'शिवाजी' का हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हो, तदनुसार आपने स्वयं ही उसका संक्षिप्त एवं संशोधित हिन्दी संस्करण तैयार किया, जो 'विशाल भारत' में क्रमशः प्रकाशित होता रहा। उसीको हम आज पुस्तकाकार प्रकाशित कर रहे हैं। इधर पिछले दस वर्षोंमें जो-जो नई ऐतिहासिक खोजें हुई हैं उनको भी इस ग्रन्थमें सम्मिलित कर दिया गया है, जिससे इस संस्करणका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। जहाँतक हम जानते हैं, हिन्दीमें अबतक शिवाजीका ऐसा सच्चा और प्रामाणिक जीवनचरित प्रकाशित नहीं हुआ है। आशा है कि हिन्दी भाषा-भाषी इस ग्रन्थका हृदयसे स्वागत करेंगे।

हम सर यदुनाथके बहुत ही कृतज्ञ हैं कि उन्होंने ऐसे ग्रन्थ-रत्नको प्रकाशित करनेका हमें अवसर दिया। यदि हमारे पाठकोंने सहयोग दिया तो हम सर यदुनाथके अन्य ग्रन्थोंके भी हिन्दी संस्करण प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

—नाथूराम प्रेमी

पुनश्च—इस ग्रन्थके पहले संस्करणको समाप्त हुए काफी समय हो गया। माँग इसकी बराबर बनी रही; परन्तु युद्धजनित कठिनाइयोंके कारण हम इसे अबतक प्रकाशित नहीं कर सके। कोई चार वर्ष बाद अब यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसमें यत्र-तत्र संशोधन किया गया है और इधरकी दस वर्षोंकी खोजमें जो कुछ नई बातें मालूम हुई हैं वे भी शामिल कर दी गई हैं। ग्रन्थकर्त्ताके शिष्य महाराज कुमार डाक्टर रघुवीरसिंहजीने इस कार्यमें पहलेके ही समान पूरा-पूरा सहयोग दिया है, अतएव हम उनके कृतज्ञ हैं।

—जून १९४१

दुःख की बात

अत्यन्त खेदकी बात है कि पिछले वर्ष हमारे बीचसे एक अत्यन्त वयोवृद्ध ऐतिहासिक साहित्य-मनीषी उठ गए। प्रस्तुत ग्रन्थके विद्वान् लेखकके स्वर्गवासका हमें अत्यन्त दुःख है।

नवम्बर, १९५९ —प्रकाशक

भूमिका

शिवाजीके नामसे कौन परिचित नहीं? किसे शिवाजीके स्वातंत्र्य-युद्धका पता नहीं? शिवाजीकी वीरताकी कहानियाँ तो घर-घर प्रचलित हैं। परन्तु उनकी महत्ताका ठीक-ठीक तौल करना, उनकी सफलताका सच्चा महत्त्व आँकना, कोई आसान बात नहीं है।

इन पिछले पैंतीस बरसोंमें हमें शिवाजी सम्बन्धी बहुत-सी नई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है जिससे उनके चरित्र, जीवन और कार्यपर बहुत-सा नया प्रकाश पड़ता है। इस सबके अध्ययनके बाद शिवाजीके सम्बन्धमें आजतककी प्रचलित बहुत-सी धारणाओंको त्याग करना हमें अत्यावश्यक प्रतीत होता है। यह सोचना कि शिवाजी एक चतुर शक्तिशाली डाकू या एक सफल विद्रोही-मात्र थे, अब असम्भव है। एक निरे डाकू या कोरे धर्मान्ध व्यक्तिके लिए नये राज्यकी स्थापना करना संभव नहीं; उसके लिए कुशल राजनीतिज्ञकी जरूरत होती है। चौदह वर्षोंमें ही शिवाजीने एक स्वाधीन राज्यकी स्थापना करके स्वयंको एक स्वतन्त्र 'छत्रपति' शासक घोषित कर दिया था। हमारे प्राचीन ऋषियोंके विचारानुसार उनमें दैवी अंश अवश्य था जो 'नराणां नराधिपः' के रूपमें प्रकट हुआ।

शिवाजीने अपने युगकी तीन बड़ी भारतीय शक्तियोंके,—मुगल साम्राज्य, बीजापुर राज्य और पुर्तगालियोंके, लगातार विरोध और अगणनीय कठिनाइयोंका सामना करते हुए भी अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर उसे सुदृढ़ बनाया। परन्तु क्या वे एक राष्ट्रका निर्माण कर सके थे? कोई डेढ़ शताब्दीतक मराठोंका पूर्णतया जातीय राज्य रहा, जिसपर न तो विदेशियोंका प्रभाव ही था और न उनका कोई हस्तक्षेप ही। परन्तु

इस दीर्घकालीन हिन्दू-पद-पातशाहीके अन्तर्गत रहकर भी मराठे एक राष्ट्रके रूपमें संगठित न हो पाए। अधिक तो क्या, अपने छोटे-से देशमें ही या अपनी जातिमें भी वे राष्ट्रीय भावनाका संचार न कर सके।

आजके ही समान १७वीं शताब्दीमें भी जाति-भेदका भारतीय जीवनपर अकथनीय प्रभाव था; उसके सामने देश या धर्मकी विशेष पूछ न थी। कुलीनता या उच्च घरानोंकी मर्यादाकी भावनाने इन छोटी-छोटी जातियोंमें भी अनेकानेक उपविभाग उत्पन्न कर दिये थे। परन्तु राष्ट्र-निर्माणके लिए यह आवश्यक है कि जाति-भेद, संप्रदायोंका प्राधान्य और कुलीनताके अत्यधिक महत्त्वको मिटाया जाय। जातीय शिक्षा और जातिके नैतिक उत्थानके लिए लगातार कोशिश किए बिना किसी भी जाति या राष्ट्रके लिए अपना अस्तित्व बनाए रखना संभव नहीं। परन्तु मराठे शासकोंने इन सब बहुत आवश्यक बातोंकी ओर न कभी ध्यान ही दिया और न समाजमें ही किसीने इस ओर कभी प्रयत्न किया।

स्वयं मराठा जातिमें भी न तो राष्ट्रीय भावना पाई जाती थी और न देशभक्ति ही देखनेको मिलती थी। निरन्तर विरोध और शताब्दियोंकी मार-काटके उस युगमें जब एकके बाद दूसरे राज्यका जल्दी-जल्दी उत्थान और पतन हो रहा था, यदि किसी वस्तुका स्थायित्व था तो केवल जमीनका। नवीन विजेताओंने प्रायः पुराने शासकोंकी दी हुई जागीरों, जमींदारियों या दानपात्रोंसे कोई छेड़-छाड़ न की। इसी आर्थिक नींवपर मराठा समाज स्थित था, और मराठोंके लिए स्वदेशकी अपेक्षा उनका 'वतन' (= उनकी जायदाद) अधिक प्यारा और महत्त्वपूर्ण था। अतएव उनके वतनको छीन लेनेवाले या वतनपर लगान बढ़ा देनेवाले स्वदेशी शासककी अपेक्षा वे ऐसी विदेशी सत्ताको अधिक पसन्द करते थे जो उनके वतनको बनाए रखनेको तैयार हो।

इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी शिवाजीने एक स्वाधीन राज्यकी नींव डाली, और कुछ कालके लिए ही क्यों न हो, उन्होंने महाराष्ट्रके अपने प्रदेशमें शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की ।

शिवाजीके घरानेकी सत्ताका अन्त हो गया, उनका स्थापित किया हुआ राज्य भी नष्ट हो गया, फिर भी उनके जन्मसे कोई तीन शताब्दी बाद, आज; जब इतिहासकार भारतीय इतिहासकी विविध प्रवृत्तियोंपर एक दृष्टि डालता है तो उसे शिवाजीकी वह उच्च कोटिकी योग्यता देखनेको मिलती है जो पंजाब-केसरी रणजीतसिंहसे लेकर अबतकके अन्य किसी भी हिन्दू शासकमें नहीं पाई जाती । शिवाजीका नाम आज भी नवीन स्फूर्ति पैदा करता है, और उनका आदर्श भविष्यमें भी हमारे नवयुवकोंमें नवीन आशाका संचार करता रहेगा ।

शिवाजी एक आदर्श गृहस्थ, अनुकरणीय शासक और अद्वितीय राज्य-निर्माता थे, और इसी कारण संसारके महान् पुरुषोंमें उनकी गणना की जाती है । उनके व्यक्तिगत जीवनमें न तो कोई दुर्गुण ही हमें मिलता है और न आलस्यका नाम ही हम उनमें पाते हैं । एक शासक और संगटन-कर्ताके रूपमें उन्होंने अनोखी कुशलता बताई । धार्मिक असहिष्णुताके उस युगमें भी उन्होंने अन्य धर्मानुयायियोंके प्रति अनुकरणीय उदारता दिखाई ।

कुछ थोड़े-से ही आवश्यक परिवर्तनोंके बाद शिवाजीके आदर्श आज भी हमारे लिए आदर्शका काम दे सकते हैं । प्रजा शान्तिसे रहे; राज्यमें धर्म या जातिके कारण ही किसी व्यक्तिको न तो कोई असुविधा हो और न कोई हानि ही पहुँचे; शासन शुद्ध, उपकारी, प्रगतिशील एवं सुदृढ़ हो; जहाजी बेड़ोसे व्यापारकी उन्नति हो; सुशिक्षित एवं सुसज्जित सेना देशकी रक्षा करे;—इन्हीं सारी बातोंका उन्होंने प्रयत्न किया । उन्होंने क्रियाशील नीति द्वारा अपने देशकी उन्नति की और उसे कर्मनिष्ठ बनाया ।

शिवाजी मराठा जातिके निर्माता थे, और साथ ही मध्यकालीन

भारतके सर्वश्रेष्ठ रचनात्मक-प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति भी। राज्योंका अन्त हो जाता है, साम्राज्य बन-बन कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, महान् घरानोंका नामलेवा भी नहीं रह जाता है, परन्तु तब भी शिवाजीके समान वीर राजाओंकी सुस्मृति सारे जन-समाजके लिए एक अमूल्य वसीयतके रूपमें रह जाती है और पतित राष्ट्रके लिए किरण बनकर प्रकट होती है।

और इसी आशासे प्रेरित होकर मैं आज अपनी लिखी हुई शिवाजीकी जीवनीका यह संशोधित हिन्दी संस्करण प्रकाशित कर रहा हूँ। कोई दस वर्ष पहले ही यह तैयार हो चुका था, और इसके विभिन्न अध्याय एक एक करके 'विशाल भारत'में छप भी चुके थे। हिन्दीके प्रसिद्ध प्रकाशक श्रीयुत नाथूरामजी 'प्रेमी'के सहयोगसे ही आज यह संस्करण पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है। इन पिछले वर्षोंमें भी बहुत कुछ नई ऐतिहासिक खोजें हुई हैं, और इस संस्करणकी प्रेस-कापी तैयार करते समय उन सब नवीनतम खोजोंके परिणामोंका भी इस ग्रन्थमें समावेश कर दिया गया है, जिससे इस संस्करणका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। अन्तमें मुझे यह लिखते हर्ष होता है कि मेरे प्रिय शिष्य महाराजकुमार डाक्टर रघुवीरसिंहकी असीम चेष्टा और सतत यत्नके बिना यह ग्रन्थ तैयार नहीं हो सकता था।

मैं चाहता हूँ कि हमारे शिवाजी जैसे धीर-वीर, आदर्शरूप पूर्व-पुरुषोंकी प्रामाणिक जीवनियोंका घर-घर प्रचार हो, छोटे-बड़े सब उन्हें पढ़ें और उनसे प्रेरित होकर देश और राष्ट्रको उन्नति-पथकी ओर ले जायँ। अतएव मैंने इस बातका भरसक प्रयत्न किया है कि इस ग्रन्थकी भाषा ऐसी सरल और सीधी हो कि स्कूलमें पढ़नेवाला दस-बारह बरसकी उम्रका लड़का भी उसे आसानीसे समझ सके।

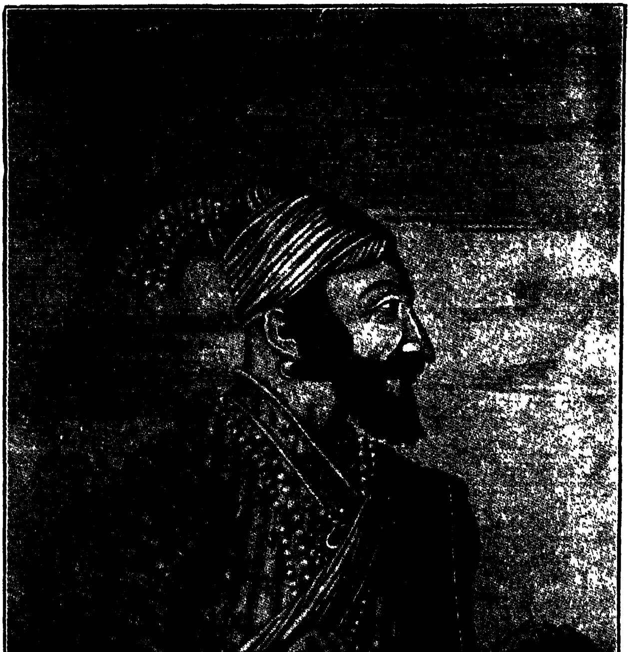
कलकत्ता
१४ फरवरी, १९४०

—यदुनाथ सरकार

विषय-सूची



ब्रिटिश म्यूज़ियममें सुरक्षित तसवीर



हॉलेण्डमें प्रकाशित तसवीर

शिवाजी

पहला अध्याय

महाराष्ट्र देश और मराठा जाति

सन् १९३१ की मर्दुमशुमारीसे मालूम होता है कि सारे भारतके ३५ करोड़ लोगोंमेंसे दो करोड़से भी ज्यादा नर-नारी मराठी भाषा बोलते हैं। इनमेंसे एक करोड़से कुछ अधिक बम्बई प्रान्तके आधे बाशिन्दोंकी, मध्यप्रदेशके एक-तिहाई लोगोंकी और निजाम-राज्यके एक-तिहाई लोगोंकी मातृभाषा मराठी है। यह भाषा दिनपर दिन फैलती जा रही है। इसका कारण यही है कि मराठी साहित्य बढ़ा-चढ़ा है एवं बढ़ रहा है, और मराठा-जाति भी तेज और उन्नतशील है।

खास महाराष्ट्र देश कहनेसे दक्षिणभारतके पठारके पश्चिम प्रान्तका करीब अट्ठाईस हजार वर्ग-मीलका प्रदेश समझा जाता था, अर्थात् नासिक, पूना और सतारा ये तीनो जिले पूरे, अहमदनगर तथा शोलापुर जिलोंका कुछ हिस्सा; उत्तरमें ताप्ती नदीसे लेकर दक्षिणमें कृष्णा नदीकी पहली शाखा वर्णा नदीतक और पूर्वमें सीना नदीसे लेकर पश्चिमकी ओर सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) के पहाड़ोंतक। सह्याद्रि पार होकर अरब-समुद्रतक फैली हुई जो लम्बी जमीन है, उसके उत्तरके आधे हिस्सेको कोंकण कहते हैं और उसके दक्षिणके भागको कनाडा और मलाबार कहते हैं। इसी कोंकण-प्रदेशके थाना, कोलाबा और रत्नागिरी नामके तीन जिले और इन्हीं जिलोंसे लगा हुआ सावन्तवाड़ी नामका देशी राज्य, यों कुल मिलाकर यह सारा प्रदेश करीब दस हजार वर्गमीलका है। यहाँके बहुतेरे लोग आजकल मराठी बोलते हैं, परन्तु ये सब लोग जातिके मराठा नहीं हैं।

खेती-बारी और जमीनकी हालत

महाराष्ट्र देशमें पानी कम बरसता है और वह भी ठिकानेसे नहीं, इस कारण यहाँ अन्न कम उपजता है। किसान साल-भर मेहनत करके किसी तरह पेट

भरनेमात्रके लिए फसल तैयार करता है। किसी-किसी साल इतनी भी फसल तैयार नहीं होती। सूखी पहाड़ी जमीनमें धान पैदा नहीं होता तथा जौ और गेहूँ भी बहुत कम होते हैं। इस देशकी खास फसल और साधारण लोगोंके खानेकी चीजें केवल जुआर, बाजरा और मक्का हैं। कभी कभी पानी न पड़नेके कारण सारी फसल सूख जाती है और जमीनका ऊपरी भाग जलकर धूलके रंग-सा हो जाता है; कोई भी चीज हरी नहीं बचती, और अनगिनती औरत-मर्द, गाय-बछड़े भूखों मर जाते हैं। इसी कारण दक्षिणमें अकाल पड़नेकी बातें बहुत सुनते हैं।

यह देश पहाड़ों और जंगलोंसे ढका हुआ है। यहाँ उपज कम होनेसे लोगोंकी संख्या भी बहुत कम है। उत्तर-दक्षिणमें सह्याद्रि पहाड़की चोटियाँ आसमानतक ऊँची और समुद्रकी तरफ जानेका रास्ता रोकती हैं। इसी सह्याद्रिकी बहुत-सी शाखाएँ पूरबकी ओर निकली हुई हैं। इस प्रकार यह देश अनेक छोटे-छोटे हिस्सोंमें बँटा हुआ है। हर एक हिस्सेमें तीन ओर पहाड़ोंकी दीवारें है और बीचमें पूरबकी ओर मुँह करके तेज बहनेवाली एक पुरानी नदी है। इन्हीं टुकड़े-टुकड़े हुए जिलोंमें मराठे लोग एकान्तवास करते थे। बाहर संसारमें क्या हो रहा है, इसकी उन्हें कुछ भी खबर न थी। इन लोगोंके पास न धन-धान्य था, न वैसा कोई कारीगरीका पेशा था, न व्यापारियोंका झुण्ड था और न राह-चलतोंके मनको खींचनेवाली बढ़ी-चढ़ी राजधानी ही थी; परन्तु भारतके पश्चिम-समुद्रके बन्दरोंतक पहुँचनेके लिए इसी देशको पार कर जाना पड़ता था।

पहाड़ी किले

इसी एकान्तवासके कारण मराठा जाति आपसे आप स्वाधीनताप्रिय हुई और अपनी जातिके विशेषत्वकी रक्षा कर सकी। इस देशमें स्वयं प्रकृति देवीने अनेक पहाड़ी किले तैयार कर दिये हैं, जिनमें आश्रय लेकर मराठे सहजमें बहुत दिनतक अपनी रक्षा कर बहुत-से चढ़ाई करनेवालोंको बाधा दे सकते थे; जिससे आखिरकार इनके थके-माँदे शत्रुको खिन्न होकर लौट जाना पड़ता।

पश्चिम-घाटकी श्रेणीके अनेक पहाड़ोंकी चोटियोंका प्रदेश समतल और आस-पास बहुत दूरतक ढलवाँ है, परन्तु इनके ऊपर बहुत-से झरने हैं। पहलेके जमानेमें

इन पहाड़ोंसे ट्रैप (Trap) पत्थरके गिरनेसे बहुत बड़ा बेसाल्ट (Basalt)—खड़ी दीवार अथवा स्तूपाकार बाहर निकला है। वह फोड़ा या खोदा नहीं जा सकता। पहाड़की चोटीपर पहुँनेके लिए पहाड़में सीढ़ियाँ काटनेसे और रास्ता रोकनेके लिए दो-चार दरवाजे बनानेहीसे एक-एक अलग अलग किला तैयार हो जाता था; जिसमें कोई खास मेहनत करने या धन खर्च करनेकी जरूरत नहीं होती थी। इस प्रकारके किलेमें रहकर पाँच सौ सैनिक भी बीस हजार शत्रुओंको बहुत दिनतक रोके रख सकते थे। ऐसे अनगिनती किलोंसे यह देश भरा हुआ होनेसे तोपोंके बिना महाराष्ट्र देशको जीतना संभव नहीं।

इस जातिका मेहनतीपन और सादगी

जिस देशकी यह दशा हो, वहाँ कोई भी व्यक्ति आलसी नहीं रह सकता; पुराने महाराष्ट्र देशमें कोई भी बेकार नहीं रहता था। दूसरेकी कमाईपर कोई भी जीवन बसर नहीं करता था; गाँवका जमींदार (पटेल या प्रधान) भी सरकारी काम करनेके बाद अपना अन्न आप उपार्जन करता था। देशमें धनियों-की संख्या बहुत कम थी और वे भी कारोबार करनेवालोंमेंसे होते थे। जमींदारोंकी बड़ाई नकद जमाके लिए उतनी नहीं होती थी, जितनी कि अन्न और सैन्य-संग्रहके लिए होती थी।

इस तरहके समाजमें हर एक स्त्री-पुरुषको शारीरिक परिश्रम किये बिना चारा नहीं; उसमें कोई भी शौकीन या नाजुक-मिजाज व्यक्ति नहीं रह सकता। प्रकृति देवीके कठोर शासनमें सबको सादे ढंगसे किसी प्रकार जीवन-निर्वाह करना पड़ता था, इसीलिए उन लोगोके वास्ते भोग-विलास तो दूर रहा, एकाग्र-चित्तसे उपार्जित ज्ञान, बारीक कारीगरी, यहाँतक कि सभ्यता भी असंभव बातें थीं। मराठोंकी प्रधानताके कालमें इन विजेता मराठोंके व्यवहारको देखनेसे उत्तर-भारतवासियोंको ये घमण्डी, मदोन्मत्त, उजड्ड, सभ्यताहीन और कुछ हद-तक जंगली मालूम होते थे।

उनमेंसे बड़े लोग भी कला-कौशल, बारीक कारीगरी, हिलमिल कर रहने और भलमनसाहतपर बहुत ही कम ध्यान देते थे। यह सच है कि अठारहवीं शताब्दीमें भारतके बहुत-से प्रान्तोंमें मराठे राज्य करते थे, परन्तु उन लोगोंकी

बनवाई हुई कोई अच्छी इमारत, सुन्दर चित्र या उमदा हस्तलिखित किताब नहीं मिलती।

मराठोंका जातीय चरित्र

महाराष्ट्र देश सूखा और स्वास्थ्यप्रद है। इस प्रकारके जल-वायुका गुण भी कम नहीं है। इसी कठोर जीवनके कारण मराठोंके स्वभावमें अपने आपपर भरोसा रखना, साहस, मेहनत, ढोंग-रहित सीधा-सादा व्यवहार, समाजमें सबके साथ एक-सा बर्ताव, और हर एक आदमीको अपनी इज्जतका खयाल तथा स्वाधीन रहनेकी इच्छा इत्यादि, बड़े-बड़े गुण उत्पन्न हुए थे। सातवीं सदीमें चीनके यात्री हुयान्‌चुयाङ्‌ने अपनी आँखों मराठोंको इस प्रकार देखा था—"इस देशके रहनेवाले तेज और लड़ाकू हैं, ये उपकारको कभी नहीं भूलते और अपकार करनेवालेसे उसका बदला लेना चाहते हैं। कोई तकलीफमें हो और मदद चाहे तो वे अपना सर्वस्व त्याग करनेको तैयार हो जाते हैं, और अपमान करनेवालेको बिना मारे नहीं छोड़ते हैं। बदला लेनेके पहले वे शत्रुको चेतावनी भी देते हैं।"

जिस समय यह बौद्ध यात्री भारतमें आया, उस समय मराठे दाक्षिणात्यके मध्य-भागमें खूब फैले हुए और धन-जनपूर्ण राज्यके अधिकारी थे। उसके बाद चौदहवीं सदीमें मुसलमानोंकी विजयके कारण वे लोग स्वराज्य खोकर दाक्षिणात्यके पश्चिमी पहाड़ों और जंगलोंमें रहने लगे। इस प्रकार गरीबी हालतमें वे एक कोनेमें पड़े रहे। इस निर्जन प्रदेशके जंगल, ऊसर जमीन और जंगली जानवरोंके साथ लड़ते-लड़ते धीरे-धीरे ये लोग सभ्यता और उदारता तो खो बैठे, परन्तु साथ ही उनमें साहस, होशियारी और कष्ट सहन करनेकी काफी शक्ति आ गई। मराठी सेना साहसी, तकलीफ बर्दास्त करनेवाली और परिश्रमी होती है। रातको चुपचाप छापा मारना, शत्रुके लिए जाल फैलाकर छिपे रहना, अफसरका मुँह न ताकते हुए अपनी बुद्धिके बलपर तकलीफसे बचना और लड़ाईकी चाल बदलनेके साथ-साथ पैंतरा बदलनेकी खूबी आदि—एक साथ इतने गुण अफगान और मराठा जातिको छोड़ एशिया महाद्वीपभरमें और किसी दूसरी जातिमें नहीं पाये जाते।

५

सामाजिक समान भाव

धनी और सभ्य समाजमें जिस तरह नाना प्रकारका जात-पाँतका बखेड़ा और ऊँच-नीचका भेद पाया जाता है, सोलहवीं शताब्दीके सीधे-साधे गरीब मराठोंमें वैसा कुछ नहीं था। वहाँ धनीका मान या पद दरिद्रीसे बहुत ऊँचा नहीं होता था। गरीबसे गरीब आदमी सैनिक भी था और कहीं खेतीका भी काम करता था, इसलिए वह भी बराबर इज्जतका हकदार समझा जाता था। वे आगरे और दिल्लीके अकर्मण्य भिखमंगोंके या पराये मत्थे खानेवाले खुशामदी टट्टुओंका सा घृणित जीवन व्यतीत करनेसे बचे रहते थे, क्योंकि इस देशमें ऐसे आदमियोंको खिलाने-पिलानेवाला कोई न था। पुरानी चाल और गरीबीके कारण मराठा-समाजमें औरतें न घूँघट डालती थीं और न अन्तःपुरमें ही रहती थीं। स्त्रियोंके स्वाधीन होनेका फल यह हुआ कि महाराष्ट्रमें जातीय शक्ति खूब बढ़ गई, और सामाजिक जीवन अधिक पवित्र और सरस हो गया? इस देशके इतिहासमें बहुत-सी काम करनेवाली बहादुर औरतोंके नाम भी पाये जाते हैं। केवल वे ही घराने जो क्षत्रिय होनेका दावा रखते थे, अपनी स्त्रियोंको घरके भीतर परदेमें रखते थे। इसके विपरीत ब्राह्मणोंके घरकी स्त्रियाँ भी परदेमें नहीं थीं, बहुत-सी तो घोड़ेपर चढ़नेमें उस्ताद थीं।

देशके धर्मने भी इस समाजकी समानताको बढ़ाया। ब्राह्मण लोग शास्त्र-ग्रन्थोंको अपने हाथमें रखकर धर्म-संसारके प्रभु हो बैठे थे, परन्तु नये-नये धार्मिक फिरके उठ खड़े हुए, जिन्होंने देशमें लाखों नर-नारियोंको सुझाया कि आदमी अच्छे चाल-चलनके बलसे ही पवित्र होता है—जन्मके कारणसे नहीं, सिर्फ क्रिया-कर्म करनेसे मुक्ति नहीं होती, मुक्ति होती है भीतरी भक्तिभावसे। इन सब नये धर्मोंने भेद-बुद्धिकी जड़ काट दी। उनका मुख्य स्थान था इस देशका प्रधान तीर्थ—पंढरपुर। जिन साधु और सुधारकोंने इस भक्ति-मंत्रसे देशवासियोंमें नया प्राण डाला, उनमें बहुत-से अशिक्षित और अब्राह्मण—दर्जी, बढ़ई, कुम्हार, माली, मोदी, हज्जाम, यहाँतक कि मेहतर—भी थे। आजतक भी वे लोग महाराष्ट्रमें भक्तोंके दिलपर अधिकार जमाए बैठे हैं। तीर्थ-तीर्थमें सालाना मेलेके दिन अगणित संख्यामें इकट्ठे होकर मराठे अपनी जातीय एकता और हिन्दू-धर्मकी

एकप्राणताका अनुभव करते हैं। जाति-भेद तो कायम रहा, परन्तु जिले-जिलेमें गाँव-गाँवमें, भेद-बुद्धि कम होने लगी।

साधारण लोगोंका साहित्य और भाषा

मराठोंका जन-साहित्य भी इस जातीय एकता-बन्धनमें सहायक हुआ। तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित और मोरोपन्त प्रभृति सन्त-कवियोंके सरल मातृ भाषामे रचित गीत और नीति-वचन घर-घर पहुँचे। "दक्षिण देश और कोंकणके हर एक शहर और गाँवमे, खासकर बरसातके समय, धार्मिक मराठा गृहस्थ घरके बाल-बच्चों और बन्धुवर्ग-सहित भक्ति-भावसे श्रीधर कविकी 'पोथी' का पाठ सुनते हैं। बीच-बीचमें कोई हँसता है, तो कोई दुःखकी साँस लेता है और कोई रोता है। जब चरम करुणरसका वर्णन आता है और श्रोता एक साथ दुःखसे रो उठते हैं, तब तो पढ़नेवालेकी आवाज़ भी नहीं सुन पड़ती।"

"पुरानी मराठी कवितामें गम्भीर अर्थवाले लम्बे-लम्बे सुन्दर पद नहीं थे, मनको उछालनेवाली वीणाकी झंकार नहीं थी, बातोंका दाँव-पेंच नहीं था, परन्तु उनके बजाय था अनपढ़ जन-साधारणका प्रिय पद्य 'पोवाड़ा' अर्थात् 'कथा'। इससे जातीयताका भाव जाग उठा है। दाक्षिणात्यकी समतल भूमि, सह्याद्रिकी गहरी तराई, पहाड़ोंकी ऊँची चोटियों और गाँव-गाँवमें दरिद्र 'गोन्धाली' (चारण) घूमते हैं। आजकल भी वे पुराने जमानेकी उन्हीं घटनाओंको लेकर कि किस प्रकार उनके पुरखोंने हथियारके जोरसे सारे भारतको जीता था, परन्तु आखिरमें समुद्र-पारसे आये हुए विदेशियोंसे हारकर तितर-बितर हो अपने देशको भाग आये थे, 'कथा' और 'कहानी' कहते हैं। गाँवके लोग भीड़ लगाकर इस कहानीको सुनते हैं। कभी तो तन्मय होकर चुप हो रहते हैं और कभी आनन्दके उल्लासमें उन्मत्त हो जाते हैं।" (एकवर्थ)

मराठा जन-साधारणकी भाषा आडम्बरशून्य, कर्कश और निरी काम-काजकी भाषा है। इसमें उर्दूकी कोमलता, शब्द-रचनाका दाव-पेंच, भाव-प्रकाशकी विचित्रता, सभ्यता और अमीरी कुछ भी नहीं है। मराठे स्वाधीनता, समानता और प्रजातंत्र-प्रिय थे इस बातका प्रमाण उनकी भाषामें पाया जाता है; उनकी

भाषामें 'आप' कहकर कोई किसीको नहीं पुकारता था—सबके सब 'तुम' कहकर पुकारते थे।

इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दीके मध्यमें महाराष्ट्रकी भाषा, धर्म, विचार और जीवनमें एक आश्चर्यजनक एकता और समानताकी सृष्टि हुई थी। केवल राष्ट्रीय एकताकी कमी थी, उसे भी पूरा कर दिया शिवाजीने। उन्होंने ही पहले पहल जातीय स्वराज्य स्थापित किया। उन्होंने दिल्लीपर शासन करनेवालोंको अपने देशसे निकाल बाहर करनेके लिए जिस युद्धका सूत्रपात किया था, उसीमें बहाए गए खूनसे उनके नाती-पोतोंके समयमें जाकर मराठोंमें एकता उत्पन्न हो गई। अन्तमें पेशवाओंके शासन-कालमें, सारे भारतके राज-राजेश्वर (सम्राट्) बननेके उद्योगके फलस्वरूप जो जातीय गौरवका ज्ञान, जातीय ऐश्वर्य तथा जातीय उत्साह जाग उठा, उसने शिवाजीके व्रतको पूर्ण कर दिया। न जाने कितनी भिन्न-भिन्न जातियाँ एक साँचेमें ढलकर एक मराठा जाति, एक राष्ट्र (Nation) के रूपमें संगठित हो गई। भारतके और किसी भी प्रदेशमें ऐसा नहीं हुआ।

खेतिहर और लड़ाकू जाति

'मराठा' कहनेसे बाहरके लोग जाति (नेशन) या जन-संघका अर्थ समझते हैं, परन्तु, महाराष्ट्रमें इस शब्दका अर्थ एक विशेष जाति (वर्ण) है, समग्र महाराष्ट्रवासी नेशन नहीं। इसी मराठा-जाति तथा उसके नजदीकके कुटुम्ब, कुनबी-जातिके बहुतसे लोग खेतिहर, सिपाही या चौकीदारीका काम करते हैं। सन् १९३१ ई० की गिनतीमें मराठा-जाति पचास लाख और कुनबी लोग पचीस लाख थे। इन्हीं दो जातियोंको लेकर शिवाजीकी सेना तैयार की गई थी, यद्यपि अफसरोंमें बहुत-से ब्राह्मण और कायस्थ भी थे।

"मराठा (अर्थात् खेतिहर) जाति सीधी-सादी, खुले दिलकी, स्वाधीन बुद्धिवाली, उदार और भली होती है। यह भलाई करनेवालोंका विश्वास करती है, बहादुर और बुद्धिमान् होती है, बीती हुई बड़ाईको याद करके घमण्डके मारे फूल जाती है। ये लोग मुर्गी और मांस खाते हैं, शराब और ताड़ी पीते

हैं; परन्तु नशेबाज नहीं होते। बम्बई-प्रान्तके रत्नागिरि जिलेकी मराठा-जातिके जितने लोग फौजमें भर्ती होते हैं उतने और किसी जातिके नहीं होते। बहुत-से लोग पुलिस या हरकारेका काम भी करते हैं। कुनबियोंकी तरह मराठे भी शान्त और भलेमानस होते हैं, क्रोधी बिलकुल नहीं होते, बल्कि अधिकतर साहसी और रहमदिल होते हैं। ये कम-खर्च, नम्र और धार्मिक होते हैं। सबके सब कुनबी आजकल खेती करनेवाले हो गये हैं। वे दृढ़, शान्त, मेहनती, कायदेसे चलनेवाले, देवी-देवताओंके भक्त और चोरी-डकैती या अन्य अपराधोंसे दूर रहते हैं। उनकी औरतें भी मर्दोंकी तरह मजबूत और सहनेवाली होती हैं। इन लोगोंमें विधवा-विवाहकी भी प्रथा है।" (बम्बई गेजेटियर)

यहाँतक तो मराठोंके गुणकी बात हुई, अब उनके कुछ दोषोंको भी सुनिए—

मराठोंके चरित्रके दोष

मराठोंकी राज-शक्ति विदेशकी लूटके बलपर जीवित थी। मालिकका व्यवहार नौकरोंके बर्तावको देखकर मालूम होता है। शिवाजीके जीवन-कालमें भी उनके ब्राह्मण अफसर घूस माँगते और वसूल करते थे।

मराठे लोग अपने शासनकी नींव सुदृढ़ आर्थिक आधारपर नहीं रख सके, इसीसे उनका राज्य अधिक दिनोंतक नहीं टिक सका। इस जातिमें एक भी आदमी बड़ा महाजन, बनिया, कारोबार चलानेवाला, यहाँतक कि सरदार या ठेकेदारतक नहीं हुआ। मराठा राज्य-शक्तिकी खास कसर थी धनका बन्दोबस्त करनेकी कमजोरी। इनके राजा हमेशा कर्जदार रहते थे। वक्तपर और अच्छी तरहसे राज्यका खर्च चलाना तथा राज-काजकी बागडोरको ठीक रखना, उन सबके लिए असंभव था।

परन्तु आजकलके मराठा एक बेजोड़ धनके धनी हैं। सिर्फ तीन पुश्त पहले उनकी जातिने लड़ाईके मैदानोंमें मौतका सामना किया था: राजकाजके दूत-कर्म और सन्धि-सम्बन्धी विचार तथा षड्यन्त्रके जालमें वह लिप्त थी; मालगुजारी और आमद-खर्चका प्रबन्ध करती थी; उसे साम्राज्यसम्बन्धी अनेक बातोंकी

चिन्ता करनी पड़ती थी। उन लोगोंने जिस भारतके इतिहासकी सृष्टि की है, हम लोग आज उसी भारतके बाशिन्दे हैं। इस सब कीर्ति-गाथाकी याद आनेपर आज भी मराठोंके हृदयमें अवर्णनीय तेजका संचार हो जाता है। तीव्र बुद्धि, धैर्य, श्रमशीलता, सीधा-सादा चाल-चलन, मनुष्य-जीवनके ऊंचे आदर्शके अनुसरण करनेकी प्रबल इच्छा, जो उचित समझते हैं उसे ही करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा, त्यागकी अभिलाषा, चरित्र-बलकी दृढ़ता और सामाजिक एवं राष्ट्रीय समानतामें विश्वास—इन सब गुणोंमें मराठोंके मध्यम श्रेणीके लोग भारतकी किसी दूसरी जातिसे कम नहीं हैं, बल्कि अनेक बातोंमें बढ़े-चढ़े हैं। काश ! इसके साथ-साथ इन लोगोंमें अंग्रेजोंकी तरह संगठन और प्रबन्ध करनेकी चतुराई, एक साथ काम करनेकी शक्ति, लोगोंसे काम लेने और उनको वशमें रखनेकी ताकत, दूरदृष्टि और अपार लोकव्यवहार-बुद्धि (common sense) रहती, तो आज भारतके इतिहासका स्वरूप दूसरा ही होता।

दूसरा अध्याय

अभ्युदय

भोंसले-वंश

शिवाजीके उत्थानके साथ ही आजकलके मराठोंके जातीय जीवनका भी आरम्भ होता है। उन्होंने ही बलहीन, अप्रसिद्ध और बिखरे हुए लोगोंको इकट्ठा करके उन्हें शक्ति प्रदान की तथा उन्हें राष्ट्रीय एकतामें गूँथकर हिन्दुओंके इतिहासमें एक नई सृष्टि-रचना की। यह बात उनकी व्यक्तिगत कीर्तिकी द्योतक है, जिसका प्रमाण उनके आदिपुरुषोंके इतिहास और उनकी पुश्तैनी पूँजीको खोजकर देखनेसे पाया जाता है। बहुत तेज बहनेवाली नदीकी नाईं उनकी उत्पत्ति एक अज्ञात और अन्धकारमय छोटे स्थानसे ही हुई थी।

'मराठा' जातिकी जिस शाखामें शिवाजीका जन्म हुआ था, उसकी उपाधि 'भोंसले' थी। इन भोंसलोंका परिवार दाक्षिणात्यमें अनेक जगह फैला हुआ है। वे राजपूतोंके वंशोंकी तरह एक ही पुरखोंकी सन्तान न थे और न वे किसी एक मुखियाके अधीन रहते थे; हर एक आदमी अपने-अपने परिवारको लेकर अपने गाँवमें रहता था। न वे किसी एक अधिपतिका कहा ही मानते थे और न एक वंशके होते हुए भी वे एक-दूसरेसे अधिक मिलते-जुलते थे। यद्यपि मध्य-युगके इतिहासमें मराठा-जातिके दो-चार सैनिकों, बड़े आदमियों अथवा जमींदारोंके नाम पाये जाते हैं, तथापि साधारणतः इन लोगोंका जाति-पेशा खेती और पशुपालन था। सोलहवीं शताब्दीके शुरूमें बहमनी-साम्राज्यके टूटनेके समय और उसके सौ वर्ष बाद अहमदनगरके निजामशाही राजवंशके जल्द ही नष्ट हो जानेसे मराठोंको एक बड़ा-भारी मौका मिला। देशकी राजनीतिक अवस्थाके कारण मराठा खेतिहरोंके बहुत-से बलवान्, चतुर और तेज पुरुषोंने हल छोड़कर तलवार पकड़ी और फौजी पेशा अख्तियार कर वे जमींदार और राजा बनने लगे। एक कृषकका पुत्र किस तरह धीरे-धीरे डाकुओंका सरदार, किरायेकी फौजका अफसर, राजदरबारका इज्जतदार सामन्त

और आखिरमें स्वतंत्र राजाके पदको प्राप्त कर सकता है—इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं स्वयं शिवाजी।

शिवाजीके पुरखे

ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके मध्यमें बाबाजी भोंसले पूना जिलेके हिंगनी और देवलगाँव नामक दो गाँवोंके पटेलका काम करते थे। गाँवके अन्य किसानोंके खेतोंमें उपजे हुए अन्नका एक हिस्सा उनको पटेलीके कामके वेतन-स्वरूप मिलता था। इसके सिवा वे अपनी कुछ निजी खेती भी करते थे। इन्हीं दो उपायोंसे उनकी गृहस्थी चलती थी। उनके मरनेके बाद उनके दो लड़के मालोजी और विठोजी पड़ोसियोंसे अनबन होनेके सबबसे बाल-बच्चों सहित गाँव छोड़कर विख्यात एलोरा पहाड़के नीचे यिरुल गाँवको चले गये। वहाँपर खेतीसे कम आमदनी देख वे सिन्धखेड़के जमींदार और अहमदनगर राज्यके सेनापति लखूजी यादवराजके पास जाकर मामूली घुड़सवारोंकी फौजमें नौकरी करने लगे। हर एकको बीस रुपये मासिक तनख्वाह मिलती थी।

शाहजी और जीजाबाई

यादवराव भी भोंसलोंके ही समान जातिके मराठा थे। मालोजीके बड़े लड़के शाहजी देखनेमें बड़े सुन्दर थे। यादवराव उस बालकको बहुत प्यार करते थे और अपने साथ उसे अन्तःपुरमें ले जाया करते थे। एक समय होलीके दिन यादवराव अपनी बैठकमें भाई-बन्धु और नौकर-चाकरोंके साथ नाच-गानका आनन्द ले रहे थे। एक तरफ गोदमें पाँच वर्षके बालक शाहजीको और दूसरी तरफ अपनी तीन वर्षकी लड़की जीजाबाईको बैठाकर, उन दोनोंके हाथोंमें उन्होंने अबीर दिया और दोनों बच्चोंको होली खेलते देख हँसते हुए कहा—"भगवान्‌ने लड़कीको कैसी सुन्दरी बनाया है। शाहजी भी रूप-रंगमें इसीके सदृश है। ईश्वर योग्यको योग्यके साथ मिलावे।"

यादवरावने हँसीमें यह बात कही थी, परन्तु मालोजी झट खड़े होकर जोरसे बोले—"आप सब लोग गवाह हैं। यादवराव आज अपनी लड़कीको मेरे लड़केके साथ वाग्दत्ता कर चुके।" यह बात सुनते ही यादवराव खिन्न-मन हो लड़कीका हाथ पकड़ अन्तःपुरको चल दिये और अन्य दिनोंकी तरह शाहजीको अपने साथ नहीं ले गये।

यादवरावकी स्त्री गिरिजाबाई बड़ी बुद्धिमती, तेज एवं बहादुर रमणी थीं। सन् १६३० ई० में जिस समय निजामशाहने विश्वासघात करके भरे दरबारमें उनके स्वामीका खून किया, उस समय गिरिजाबाई इस महान् दुःख-संवादको सुनकर जरा भी नहीं घबराईं, वरन् उसी समय बाल-बच्चों, नौकर-चाकर तथा धन-सम्पत्ति ले घोड़ेपर सवार हो, राजधानी छोड़कर बाहर निकलीं और दल-बलके साथ बाकायदे कूच करते हुए निरापद स्थानमें जा पहुँचीं। शत्रु-पक्ष न तो उन्हें कैद ही कर सका और न उनकी सम्पत्ति ही लूट सका। मुसलमान इतिहास-लेखकोंने उनकी इस समयकी स्थिर बुद्धि और साहसकी खूब प्रशंसा की है। होलीकी मजलिसमें जो-जो बातें हुई थीं, उन्हें सुन गिरिजाबाई गुस्सेमें आकर पतिसे बोली—"···क्या इसी दरिद्री, आवारा, मामूली घुड़सवारके लड़केके साथ मेरी लड़कीका सम्बन्ध होगा? ब्याह तो बराबरीके घरोंमें ही होता है। आपने कैसा, मूर्खोंका-सा काम किया है! उनकी इस अनुचित बातका माकूल जवाब क्यों नहीं दिया? उन्हें धमकाया क्यों नहीं?"

मालोजीकी उन्नति

यादवरावने दूसरे ही दिन दोनों भाइयोंको तनख्वाह दे उन्हें नौकरीसे बर्खास्त कर दिया। विवश होकर मालोजी और विठोजी यिरुल गाँवको लौट आये और फिर खेती करने लगे। एक दिन रातको मालोजी खेतके अन्नकी चौकीदारी कर रहे थे, उस समय उन्होंने एक बड़े साँपको एक बिलसे बाहर आते हुए और फिर उसी बिलमें घुसते हुए देखा। पुराना साँप जमीनमें गड़े हुए धनकी रखवाली करता है, ऐसा विश्वास उस समय बहुत-से देशोंमें प्रचलित था। मालोजीको यह बिल खोदनेसे उस जगह सोनेकी मुहरोंसे भरी हुई लोहेकी सात कड़ाहियाँ मिलीं।*

---

* बादमें लोग ऐसा कहने लगे कि मालोजी देवताओंके बड़े भक्त थे। एक दिन माघ महीनेकी रातमें खेतमें पहरा देते हुए उन्होंने देखा कि जमीनसे श्रीदेवी (लक्ष्मी अर्थात् शिवानी) निकलीं और चमकते हुए गहनेसे शोभित हाथ उनके मुख और पीठपर फेरकर बोलीं—"बच्चा, आशीर्वाद देती हूँ। यह बिल खोदनेसे सात कड़ाही-भर अशरफियाँ मिलेंगी। वह मैंने तुमको दान दीं। तेरे वंशकी सत्ताईसवीं पीढ़ीतक राजपद चलेगा। तेरी सब इच्छाएँ पूर्ण होंगी।"

इतने दिनों बाद मालोजीको अपनी उच्चाकांक्षाओंको पूर्ण करनेका साधन प्राप्त हुआ। यह गुप्त धन चमारगुण्डा गाँवके एक विश्वासी महाजनके पास रखकर उन्होंने उसमेंसे कुछ खर्च करके घोड़े, जीन, हथियार और तम्बू आदि खरीदे। फिर एक हजार घुड़सवारोंकी फौज तैयार की और उसके सेनापति बन फलटन गाँवके निम्बालकर-वंशके जमींदारके साथ मिलकर लूट-पाट करना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनोंमें उनका बल और नाम इतना बढ़ा कि शेषप्राय निजामशाही सुलतानने उनको अपनी सरकारी सेनामें भरती करके सेनापतिकी उपाधि दे दी। मालोजी अब मामूली घुड़सवार या किसान न रहे। वे अब यादवरावकी बराबरीके एक अच्छे रईस हो गये और तब यादवरावने अपनी लड़की शाहजीके साथ ब्याह दी। सम्भवतः यह विवाह सन् १६०४ में हुआ।

धन-वृद्धिके साथ-साथ मालोजीने लोगोंकी भलाई और दान-धर्म आदिके अनेक काम किये। मन्दिर बनाने और ब्राह्मणोंको भोजन देनेके सिवा उन्होंने सतारा जिलेके उत्तरी भागमें महादेव पहाड़के ऊपर चैत्रके महीनेमें शिवजीके दर्शनके लिए आये हुए लाखों यात्रियोंका जल-कष्ट दूर करनेके लिए पत्थर काटकर एक बड़ा तालाब खुदवाया। कहते हैं कि महादेवजीने प्रसन्न होकर उन्हें स्वप्नमें यह वर दिया था कि 'हम तुम्हारे वंशमें अवतार लेकर देवता और ब्राह्मणोंकी रक्षा करेंगे और दक्षिण देशका राज्य तुम्हें देंगे।'

धन और मानका सुख भोगकर मालोजी कुछ समयके बाद स्वर्गवासी हुए। उनके बाद उनकी ज़मींदारी और फौजका संचालन उनके छोटे भाई विठोजीने किया। विठोजीके मरनेपर (अनुमानतः सन् १६२७ ई०) शाहजी पुश्तैनी सम्पत्तिके हकदार और भोंसलेवंशकी सेनाके नायक हुए। यह दल इतने दिनोंमें बढ़ते-बढ़ते दो-ढाई हजार आदमियोंका हो चुका था।

शाहजीका उत्थान

सन् १६२६ ई० में निजामशाही राज्यका चतुर मन्त्री मलिक अम्बर अस्सी वर्षकी उम्रमें मर गया और उसका पुत्र फतह खाँ वजीर हुआ। इसके एक वर्षके भीतर ही दिल्लीके बादशाह जहाँगीर और बीजापुरके सुलतान इब्राहीम आदिलशाहकी भी मृत्यु हो गई। दक्षिणमें बड़ा भारी गोलमाल हुआ और लड़ाई छिड़ गई।

इतिहासमें शाहजीके कामका जिक्र पहले-पहल सन् १६२८ ई० में पाया जाता है। उस साल वे फतह खाँकी आज्ञासे सेना लेकर मुगल राज्यके पूर्व खानदेश प्रदेशको लूटने गये थे, परन्तु उस जगहके मुगल सेनापतिके बाधा देनेपर वे लौटनेको मजबूर हुए। सन् १६३० ई० में अहमदनगर राज्य अन्तिम साँसें ले रहा था। दरबारमें रोज दलबन्दीके लड़ाई-झगड़े और खूनखराबियाँ होने लगीं। राजकाजमें गोलमाल और राज्यभरमें अन्धेर शुरू हो गया। शाहजीने इसी मौकेपर अपने लिए राज्य जीतना शुरू कर दिया। कभी वे मुगलोंका साथ देते, कभी बीजापुर राज्यके आदिलशाहके साथ हो जाते और कभी फिर निजामशाहकी नौकरी करने लगते थे। आखिर सन् १६३२ ई० में मुगलोंने निजामशाहकी राजधानी दौलताबादको जीतकर सुलतानको कैद कर दिया।

उस समय शाहजीने इसी वंशके एक बालकको 'निजामशाह' नाम देकर मुकुट पहनाया; और खुद सर्वेसर्वा बनकर तीन बरसतक पूना और दौलताबादके इर्द-गिर्द शासन किया। परन्तु सन् १६३६ ई० में मुगलोंके साथ लड़ाईमें हारनेपर उन्हें सब छोड़छाड़कर बीजापुर सरकारके यहाँ नौकरी करनेको मजबूर होना पड़ा।

शिवाजीका जन्म और बाल्य-काल

जीजाबाईके गर्भसे दो पुत्र जनमे—शम्भूजी[1] (सन् १६२३ में) और शिवाजी (सन १६२७ ई० में)। दूसरे लड़केके जन्मसे पहले जीजाबाई जुन्नर शहरके नजदीक शिवनेरके पहाड़ी किलेमें रहती थी। उन्होंने अपनी होनेवाली संतानकी मंगल-कामनाके लिए किलेकी अधिष्ठात्री देवी 'शिवा-भवानी'की मनौती मानी थी। इसी कारण लड़केका नाम रखा 'शिव' जो दक्षिणियोंके उच्चारणके अनुसार 'शिवा' हो गया।

सन् १६३० से १६३६ ई० तकका काल शाहजीने लड़ाई-झगड़ों, कठिनाइयों और अपनी हालतके हेर-फेरमें ही काटा। इसके कारण उनको बहुत जगह घूमना पड़ा। उनकी स्त्री और दोनों लड़के शिवनेरके किलेमें आश्रय लेकर रहते थे। सन् १६३६ ई० में मुगलोंके साथ उनकी लड़ाई खतम हो

१. शम्भूजी तरुण अवस्थामें कनकगिरिके किलेपर आक्रमण करते समय मारे गये। इतिहास इनके सम्बन्धमें मूक है।

गई। उस समय यद्यपि उन्होंने बीजापुर राज्यकी नौकरी कर ली थी, परन्तु वे महाराष्ट्रमें अधिक नहीं रहे। वे मैसूर देशमें अपनी नई जागीर बसाने चले गये। वहाँ वे अपनी दूसरी स्त्री तुकाबाई मोहिते और उसके लड़के व्यंकोजी (उर्फ एकोजी) को लेकर रहने लगे। पहली स्त्री और उसके लड़केको मानों उन्होंने त्याग ही दिया। वे उन लोगोंको खाने-पीनेके खर्चके लिए उसी जिलेकी एक छोटी-सी जागीर देकर चले गये थे। जीजाबाई अब वयस्क हो गई थीं, उनकी उम्र उस समय ४१ वर्षकी थी। मेरा अनुमान है कि नवयौवना सुन्दरी सौतके आनेसे वे स्वामीके सुहागसे वंचित हो गई थीं। जन्मसे लेकर दस वर्षकी आयुतक शिवाजीने अपने पिताको बहुत कम देखा था, और उसके बाद तो बाप-बेटे दोनों बिलकुल ही अलग हो गये।

शिवाजीकी मातृ-भक्ति और धर्म-शिक्षा

पतिके प्रेमसे वंचित होनेके कारण जीजाबाईका मन धर्मकी ओर झुका। वह पहले भी धर्मप्राणा थीं, पर अब तो एकदम संन्यासिनीके समान रहने लगीं। फिर भी वक्तपर जमींदारीके जरूरी काम-काज किया करती थीं। माताके इन धार्मिक भावोंका प्रभाव उनके पुत्रके बाल-हृदयपर पड़ा। शिवाजी अकेलेमें बढ़ने लगे। उनके पास न तो कोई साथी ही था, न भाई, न बहिन और न पिता ही। इस निर्जन जीवनके कारण माँ-बेटेमें बहुत घनिष्ठता हो गई। शिवाजीकी स्वाभाविक मातृ-भक्ति आगे चलकर एकदम देव-भक्ति-तुल्य हो गई।

शिवाजीने बचपनसे ही अपना काम आप करना सीखा। उन्हें किसी दूसरेकी आज्ञा अथवा सलाह लेनेकी जरूरत नहीं पड़ी। इस प्रकार जीवनके आरम्भहीसे उन्होंने जिम्मेदारी उठाना और खुद काम करनेका तजुर्बा हासिल किया।

प्रसिद्ध पठान बादशाह शेरशाहका लड़कपन भी ठीक शिवाजीके समान रहा था। दोनों ही मामूली जागीरदारके लड़के थे; दोनों सौतेली माँके प्रेममें मुग्ध पिताकी अवहेलनामें पले थे; दोनोंने वन और जंगलोंमें घूमकर, किसानों और डाकुओंके साथ हेल-मेल करके देश और आदमियोंका यथार्थ अनुभव

प्राप्त किया था। दोनोंने चरित्रकी दृढ़ता, मेहनत करना, अपने ऊपर भरोसा रखना—यह सब अपने आप ही सीखा था। दोनोंने पुश्तैनी जागीरके काम-काजकी देख-भालसे ही अपने भावी राज्य-शासनका ज्ञान प्राप्त किया था; दोनोंके चरित्र और बुद्धि बहुत-कुछ मिलती-जुलती थी और दोनों ठीक एक-सी घटनाओंके बीच होकर बढ़े थे।

पूनेकी हालत

आजकल पूना शहर बम्बई-प्रदेशकी दूसरी राजधानी है। वह मराठोंकी शिक्षा, सभ्यता और उच्च अभिलाषाओंका केन्द्र है, परन्तु सन् १६३८ ई० में जिस समय बालक शिवाजी वहाँ रहनेके लिए आये थे, उस समय पूना एक छोटा-सा गाँव था और उसकी हालत बड़ी बुरी थी। छः वर्षकी लगातार लड़ाईके कारण देश उजाड़ हो गया था। अनेकों हमला करनेवाले बार-बार आकर गाँव लूटते, जला देते और लूट-मार, मार-काट करके चले जाते थे। उनके चले जानेके बाद इस अन्धेरखातेका लाभ उठाकर आसपासके डाकुओंके सरदार अपना कब्जा जमा लेते थे।

रोज-रोजकी लड़ाई, मार-काट, गोलमाल और बहुत-से आदमियोंके मारे जानेसे आसपासके पहाड़ोंके जंगलोंमें भेड़ियोंका वंश खूब बढ़ा और उनके मारे पूना जिलेके गाँवोंमें भेड़ों और बच्चोंकी जान आफतमें थी; डरके मारे खेती-पातीका काम बन्द-सा ही हो रहा था।

दादाजी कोण्डदेव

सन् १६३७ ई० में जब शाहजी बीजापुरकी नौकरी स्वीकार करके मैसूर जाने लगे, उस समय उन्होंने दादाजी कोण्डदेव नामक एक भले चाल-चलनवाले चतुर ब्राह्मणको पूनाकी जागीरका कार्यकर्त्ता नियुक्त करके कहा—"मेरी पहली स्त्री और पुत्र शिवाजी शिवनेरके किलेमें हैं। उनको पूनेमें लाकर उनकी देख-रेख करो।" तदनुसार कोण्डदेवने वैसा ही किया।[1]

शाहजीकी पूनेकी जागीरकी मालगुजारी कागजोंके अनुसार चालीस हजार हांण (प्रायः डेढ़ लाख रुपये) थी, परन्तु उस समय उसमें उपज बहुत कम

१. दो वर्ष बाद (१६४० ई०) जीजाबाई और शिवाजी दादाके साथ शाहजीके पास बंगलोर गये, परन्तु उन्होंने उन लोगोंको फिर पूना भेज दिया।

थी। दादाजी कोण्डदेव जमींदारीके काममें बड़े पक्के थे। उन्होंने सह्याद्रिकी चोटियोंमें रहनेवाले पहाड़ियोंको इनाम देकर आसपासके भेड़ियोंके झुण्डका नाश कराया। उन लोगोंको अपने हाथमें लेकर उन्होंने पहले तो बहुत थोड़ी माल-गुजारीपर उन्हें जमीन दी और फिर धीरे-धीरे मालगुजारी बढ़ानेका तय करके उन्हें नीचेकी तराइयोंमें रहने और खेती करनेके लिए भी राजी कर लिया। इस तरहसे देशमें लोगोंकी बस्ती और उसके साथ-साथ खेतीका काम भी शीघ्रतासे बढ़ने लगा।

शान्ति-रक्षाके लिए उन्होंने कितने ही स्थानीय लोगोंको पहरेदार बनाकर जगह-जगहपर थाने स्थापित कर दिये। दादाजीकी कड़ी देख-रेख और पक्षपात-हीन न्यायके कारण देशमें डाकू और बदमाशोंका नामतक न रहा। उनकी न्यायप्रियताके सम्बन्धमें एक कथा प्रचलित है। उन्होंने 'शाहबाग'के नामसे एक फलोंका बगीचा लगाया था। उन्होंने इस बातकी कड़ी आज्ञा दे रखी थी कि उस बगीचेकी पत्ती भी तोड़नेसे अपराधीको सजा मिलेगी। एक दिन भूलकर स्वयं उन्होंने एक आम तोड़ लिया; पर नियमकी बात याद आनेपर वे अपने-आपको दण्ड देनेके लिए अपने अपराधी हाथको काटनेको तैयार हो गये। परन्तु दूसरे लोगोंने उनको ऐसा करनेसे रोका। इसके बाद वे इस कसूरको याद रखनेके लिए हमेशा एक लोहेकी जंजीर पहना करते थे!

शिवाजी लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे, परन्तु इससे उनकी कोई हानि नहीं हुई। अकबर, हैदरअली, रणजीतसिंह—हिन्दुस्तानके ये तीन कर्मवीर शासक भी निरक्षर थे। उस समय मध्ययुग था और अकसर लोग अनपढ़ होते थे। उस जमानेमें पोथीकी इस विद्याका अभाव होते हुए भी शिवाजीका मन अन्धकारपूर्ण और अकर्मण्य नहीं रह सका और न उनकी व्यवहार-कुशलतामें ही कुछ कमी हुई। कारण यह था कि शिवाजीने रामायण और महाभारतकी कथाओं और पुराणोंके पाठ और कीर्तनको सुन-सुनकर भारतके प्राचीन ज्ञान, धर्म तथा कथाओंके मर्मकी अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उन्होंने इन्हीं कथाओंको सुनकर राज-नीति, धर्म-नीति, रण-चातुरी और राज-काजकी पद्धति सीखी थी। जिस जगह कथा-कीर्तन होता, वहाँ वे जरूर जाते और तन्मय होकर सुनते थे। यदि कोई हिन्दू संन्यासी या मुसलमान पीर आता था, तो वे उसके पास जाकर

अपनी भक्ति प्रकट करते और उससे धर्मोपदेश लेते थे। इसीसे शिक्षाका यथार्थ फल जो होना चाहिए था, वह उन्हें सम्पूर्ण-रूपसे उपलब्ध हुआ था।

मावले जाति

पूना जिलेके पश्चिम भागमें, सह्याद्रिके ऊपर होकर गई हुई ९० मील लम्बी और १२ से लेकर २४ मीलतक चौड़ी जमीनका एक प्रदेश है। उसका नाम 'मावल'[1] अर्थात् सूर्यास्तका देश या पश्चिम है। यह प्रान्त बहुत ऊँचा-नीचा है। वह खड़े ढालू और ऊँचे टीलोंसे भरा है। उसके नीचे टेढ़ी-मेढ़ी और गहरी तराई फैली हुई है। इस नीचेकी समतल भूमिपर छोटे-बड़े अनेक पहाड़ एक-दूसरेपर सिर उठाये खड़े हैं। उनके ऊँचे-ऊँचे स्थानोंपर कसौटी पत्थरकी अनेक बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। यह प्रदेश जगह-जगहपर पहाड़ों और जंगलोंसे घिरा है। वृक्षोंके नीचे घनी झाड़ियाँ, लताएँ और पेड़-पौधे हैं, जो चलनेवालोंका रास्ता रोकते हैं।

इसी मावल-प्रदेशके उत्तरकी ओर कोली नामक एक पुरानी असभ्य डाकुओं-की जाति रहती थी और दक्षिणमें मराठे किसान रहते थे। मावलके मराठोंके शरीरमें कुछ पहाड़ी जातिका रक्त मिला हुआ है। ये देखनेमें तो दुबले-पतले और काले होते हैं, परन्तु भीतरसे बड़े गठीले और फुर्तीले होते हैं। इस देशकी हवा सूखी और हलकी है, और दक्षिणकी अन्य जगहोंकी अपेक्षा यह स्थान कम गरम है। मावलकी आबहवा शरीरके बलको बढ़ानेवाली है।

शिवाजीके मावले बन्धुगण

दादाजीने मावल देशको अपने कब्जेमें कर लिया। उन्होंने बहुत-से गाँवोंके तहसीलदारों (देशपाण्डों) को भी अपने अधीन कर लिया। जिन्होंने उनका शासन स्वीकार नहीं किया, उन्हें उन्होंने लड़कर खतम कर दिया। इस प्रकार उस प्रांतमें अमन-चैन स्थापित करनेका फल यह हुआ कि मावलके सब गाँव पूनाके अधिकारीके लिए धन और जनसे सहायता देनेको तैयार हो गये। शिवाजीके प्रायः सभी अच्छेसे अच्छे सिपाही इसी मावल देशके निवासी

---

१. मराठी भाषामें 'मावळणें' (infinitive) क्रियापदका अर्थ, 'अस्त होना' है। इस पर्वतमय देशको उत्तरमें 'डांग,' बीचमें अर्थात् ठेठ महाराष्ट्रमें 'मावल', और दक्षिणमें अर्थात् कर्णाटकमें 'मलाड़' कहते है।

थे। यहीं उनको लड़कपनके साथी और अत्यन्त स्वामिभक्त नौकर मिले थे। इन्हीं लोगोंके साथ बालक शिवाजी पश्चिमी घाटके पहाड़ों, वनों, जंगलों, नदीके तटों और तराइयोंमें घूमा-फिरा करते थे। वे धीरे-धीरे कष्टसहिष्णु और बड़े मेहनती हो गये, और उन्हें देश और देशवासियोंका बड़ा अच्छा ज्ञान हो गया। शिवाजीकी बढ़तीसे मावल जमींदारों और मजबूर किसानोंके कार्य-क्षेत्रकी सीमा सम्पूर्ण दक्षिणमें फैल गई और साथ ही साथ उन्हें अपने धन, बल और कीर्तिकी वृद्धि करनेका बड़ा भारी सुयोग भी मिला। ये गरीब देहाती लोग, जो देशसे एक कोनेमें बन्द निर्जीवसे पड़े थे, शिवाजोकी लड़ाइयों और लूट-पाटमें सम्मिलित होकर सेनापति और अन्य सम्भ्रान्त पदोंको प्राप्त करने लगे। फल यह हुआ कि उनकी उच्चाकांक्षाओंके साथ-साथ उनमें राज्याभिलाषा भी जाग्रत् हो गई। वे खुल्लमखुल्ला हेलमेल बढ़ाकर उनके भाई-बन्दोंके समान हो गये। फ्रांसीसी सेनाकी दृष्टिमें जिस प्रकार :नेपोलियन एक साथ भाई, नेता और देवताके समान था, उसी प्रकार मावलोंके लिए शिवाजी थे।

शिवाजीका स्वाधीन जीवन-प्रेम

दादाजी तथा अन्यान्य ब्राह्मण लोग जो रामायण, महाभारत तथा अन्य शास्त्र पढ़ते थे, उसे सुन-सुनकर शिवाजीका बाल-हृदय विकसित हुआ। अपनी संन्यासिनी-तुल्य माताका उदाहरण देखकर और उनके उपदेश सुनकर शिवाजीके मनमें सात्त्विक भाव, दृढ़ता और धर्म-प्रेम उत्पन्न हुआ और स्वाधीन जीवनके लिए उनका मन तरसने लगा। किसी मुसलमान राजाके अधीन सेनापति बनकर धन और सुखकी लालसामें जीवन बिताना उन्हें दासताके समान बुरा मालूम पड़ने लगा, और उन्होंने ऐसे जीवनसे घृणा करना सीखा। स्वाधीन राजा होना ही उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। समस्त हिन्दू-जातिके उद्धार करने और उसकी रक्षा करनेकी इच्छा उनके मनमें बहुत पीछे उत्पन्न हुई थी।

दादाजी कोण्डदेव जमींदारके चतुर दीवान और धार्मिक गृहस्थ थे। अगस्त, सन् १६४४ ई० के एक आदिलशाही फरमानसे मालूम होता है कि उस समय शाहजी विनष्ट अहमदनगर राज्यके परगने और गढ़ जीतकर, छोटा-सा ही क्यों न हो, अपना एक स्वाधीन राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे थे। इसी

कारणसे आदिलशाहने उनको विद्रोही घोषित किया; और जब शाहजीने अपने प्रधान कर्मचारी दादाजी कोण्डदेवको कोण्डानाकी तरफ विजय करनेके लिए भेजा, तब आदिलशाहने भी दादाजीके विरुद्ध दो सेनापतियोंको भेजा। बादमें जब कोण्डाना किला, जो अब सिंहगढ़के नामसे प्रसिद्ध है, शाहजीके अधिकारमें आया, तब उन्होंने वह किला अपने पुत्र शिवाजीको दे दिया। बीजापुरी दरबारके साथ शाहजीके झगड़ेका गूढ़ कारण उनकी स्वाधीन होनेकी यह इच्छा ही थी।

युवक शिवाजीका पहला स्वाधीन काम

७ मार्च सन् १६४७ ई० में दादाजीका देहान्त हो गया। उसी समयसे, जब उनकी उम्र केवल बीस वर्षकी ही थी, शिवाजी खुदमुख्तार हो गये। इस बीचमें शिवाजीने युद्ध-विद्या और जमींदारी चलानेका काम अच्छी तरह सीख लिया था; स्थानीय रैयत और फौजके साथ अच्छी तरह घनिष्ठता भी स्थापित कर ली थी। अपनी बुद्धिसे काम लेने तथा अन्य लोगोंको कब्जेमें रखकर उनसे काम करानेका भी उन्हें खूब अभ्यास हो गया था। उनके तत्कालीन नौकर बड़े स्वामिभक्त और होशियार थे। उस समय श्यामराव नीलकण्ठ रांझेकर उनके पेशवा या दीवान थे; बालकृष्ण दीक्षित मजमूयेदार (हिसाब लिखनेवाले) थे; सोणाजी पन्त दबीर (चिट्ठी लिखनेवाले), और रघुनाथ बल्लाल कोर्डे सबनीस (फौजको तनख्वाह देनेवाले) थे। इन लोगोंको शाहजीने पहले ही भेज दिया था।

सन् १६४६ ई० में बीजापुर राज्यके बुरे दिन प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। सुलतान मुहम्मद आदिलशाह—जिन्होंने बहुत दिनोंतक इज्जतके साथ राजपाट चलाया था, कई प्रदेश भी जीते थे—एकाएक बीमार पड़ गये। उनके बचनेमें शंका होने लगी। यद्यपि वे उसके बाद भी दस वर्षतक जीवित रहे, परन्तु वे अधमरी या मृतकके समान अवस्थामें ही रहे। साधारण लोगोंका कहना था कि एक फकीर साधु शाह हाशिम उलुबोने मन्त्रके बलसे अपने जीवनकी दस वर्ष आयु राजाको दान दे दी थी। उसी उधार ली हुई आयुसे वे किसी प्रकार दस वर्षतक जीवित रहे। इन वर्षोंमें राजा निर्जीव गुड्डेके

समान थे। बड़ी बेगम साहिबा राज-काज चलाने लगीं। राज्यके केन्द्रसे जीवन-शक्ति लुप्त हो गई।

यह शिवाजीके लिए बड़ा-भारी सुयोग था। इसी साल उन्होंने बाजी पासलकर, येशाजी कंक और तानाजी मालसुरेको कुछ मावले सिपाहियोंके साथ भेज बीजापुर राज्यके पक्षके किलेदारको भुलावा देकर तोरणा[१] नामक किला दखल कर लिया। वहाँके शाही खजानेमें दो लाख होंण जमा थे, जो शिवाजीके हाथ लगे। तोरणासे पाँच मील दक्षिण-पूर्वमें इसी पहाड़की दूसरी चोटीपर उन्होंने राजगढ़ नामक एक नया किला तैयार किया और उसके नीचे क्रमसे तीन जगह जमीनको समतल बनाकर दीवारोंसे घेरकर 'माचो' अर्थात् रक्षित-ग्राम बनाये।

प्रथम राज्य-विस्तार

दादाजी कोण्डदेवकी मृत्युके उपरान्त शिवाजी सबसे पहले अपने पिताकी उस प्रदेशमें फैली सब जागीरोंको संगठित करके एकच्छत्र राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न करने लगे। पूनासे अठारह मील उत्तरमें चाकण किलेके मालिक फिरंगजी नरसालाने शिवाजीकी प्रभुताको स्वीकार किया। दक्षिण-पूर्व दिशामें बारामती और इन्द्रापुर नामक छोटे थानोंके कर्मचारियोंने भी शिवाजीकी अधीनता मंजूर की।

इसके बाद शिवाजी बीजापुर राज्यकी भूमि छीनकर अपने राज्यकी सीमा बढ़ाने लगे। पूनासे ग्यारह मील दक्षिण-पश्चिममें कोण्डानेका किला बीजापुरके सुलतानका था। इस किलेके अफसरने घूँस लेकर किला शिवाजीके सुपुर्द कर दिया।

शाहजी बीजापुरमें कैद

सन् १६४८ ई० के छः माह बीतते-बीतते शिवाजीने अपना अधिकार बहुत दूरतक जमा लिया था। ठीक उसी समय एक नई आपत्तिने उनके मार्गमें बाधा डाल दी। २५वीं जुलाईको बीजापुरके सेनापति मुस्तफा खाँकी आज्ञासे उनके पिता शाहजी जिंजी किलेके बाहर कैद कर लिये गये, और उनकी समस्त फौज और जायदादको सरकारने जब्त कर लिया। बहुत दिन बादके लिखे हुए इतिहासमें इस घटनाका कारण झूठा बनाकर लिखा गया है।

१. पूनासे २५ मील दक्षिण-पश्चिममें है।

बीजापुरके सुलताननने शिवाजीको दबानेके लिए शाहजीको कैद किया था और धमकाकर कहा था कि यदि शिवाजी वशमें होना न चाहे, तो कैदखानेके दरवाजेको ईंटांसे चुनवाकर शाहजीको जीते-जी गाड़ दिया जायगा। परन्तु उस समयके सरकारी फारसी इतिहास (जहूर-बिन-जहूरी-कृत 'मुहम्मद आदिलशाहके राज-काजके विवरण') से मालूम पड़ता है कि बीजापुरकी सेना जब बहुत दिनोंतक लड़नेपर भी जिंजीका किला न ले सकी और उसे खाने-पीनेकी तकलीफ हुई; तब शाहजी, प्रधान सेनापतिके हुक्मके विरुद्ध, अकाल पड़नेका कारण बता लड़ाईको छोड़कर, अपनी जागीरको लौट जानेके लिए तैयार हो गये। प्रधान सेनापति नवाब मुस्तफा खाँने देखा कि किलेको घेरना तो दूर रहा, अगर शाहजीको भागनेसे न रोका जायगा, तो आपसमें मार-काट शुरू हो जायगी। ऐसी अवस्थामें उन्होंने बुद्धिमानी कर बिना लड़ाई किये ही शाहजीको कैद कर लिया और उनकी सब जायदाद ज़ब्त कर ली। उस गोलमालमें एक दमड़ीकी भी लूट-खसोट नहीं होने पाई।

उन्नीसवीं शताब्दीमें लिखे हुए मराठी ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि मुस्तफा खाँके इशारेसे मुधोल गाँवके जागीरदार बाजीराव घोरपड़ेने शाहजीको अपने डेरेमें बुलाकर विश्वासघातसे कैद कर लिया। इसी अन्यायका बदला लेनेके लिए कई वर्ष बाद शाहजीने शिवाजीको आज्ञा देकर मुधोलके इस घोरपड़ेके वंशका प्रायः विनाश कराके ही छोड़ा, परन्तु एक अधिक विश्वसनीय फारसी इतिहास 'बसातीन्-ए-सलातीन्' से हम लोगोंको मालूम होता है कि यह बात सच नहीं है। इस पुस्तकमें शाहजीकी कैदका हाल इस प्रकार लिखा है—
"शाहजीके न माननेपर नवाब मुस्तफा खाँने उनको गिरफ्तार करनेका निश्चय किया। एक दिन बहुत सबेरे बाजीराव घोरपड़े और यशवन्तराव (असदखानी) को अपनी-अपनी फौज तैयार कर शाहजीके खेमेकी तरफ भेजा। शाहजी रात-भर नाच-गानका आनन्द लेकर सबेरे सो गये थे। इन दोनों रावोंका आना और उनका उद्देश्य जानकर शाहजी चकरा गये और घोड़ेपर सवार हो खेमेसे अकेले ही भागे। बाजीरावने उनके पीछे अपना घोड़ा छोड़ा और उनको पकड़कर नवाबके सामने उपस्थित किया।...आदिलशाहने यह खबर सुनकर कैदीको राजधानीमें लानेके लिए अफ़ज़ल खाँको और उनकी जायदादकी जिम्मेवारीके लिए एक

खोजाको जिंजी भेजा।" शाहजीको बीजापुर ले जाकर कुछ दिन सेनापति अहमद खाँके घरमें कैद रक्खा गया।[1]

शाहजीका नजरबन्दीसे छूटना

शिवाजी बड़ी आपदमें पड़े। पिताको बचानेके लिए उन्हें बीजापुरके अधीन होना पड़ेगा, इस प्रकारकी अधीनता स्वीकार करनेपर नये जीते हुए सब इलाके लौटा देने होंगे, इतना सब किया-कराया परिश्रम व्यर्थ होगा। इस कारण दोनों तरफसे बचनेके लिए उन्होंने राजनीतिकी कूट चाल चली। बलवान् पराक्रमी मुगल-सम्राट् बीजापुरका शत्रु था। साथ ही बीजापुरके राजामें इतनी हिम्मत न थी कि वह उसका हुक्म न मानता, इसलिए शिवाजीने समीपस्थ मुगल-प्रदेशके शासनकर्ता शाहजादे मुरादबख्शके यहाँ दर्ख्वास्त की कि यदि बादशाह शाहजीके पुराने कसूर (अर्थात् सन् १६३३–३६ ई० तक बादशाहके विरुद्ध लड़ना) माफ कर दें और भविष्यमें शाहजी और उनके लड़कोंकी रक्षा करनेको राजी हों, तो शाहजादेके अभयपत्र भेजनेपर शिवाजी मुगल फौजमें सम्मिलित होकर बादशाहकी नौकरी स्वीकार कर लेंगे। परन्तु कई महीनेतक लिखा-पढ़ी और दूत भेजनेके बाद भी शाहजहाँने शिवाजीकी प्रार्थना नहीं सुनी। बीजापुर राज्यके सेनापति अहमद खाँके अनुरोध करनेपर और बगलोर, कोण्डाना और कन्दर्पी—इन तीन किलोंके समर्पण करनेपर आदिलशाहने १६ मई सन् १६४९ ई० के दिन शाहजीको छोड़ दिया। ५ मई सन् १६४९ ई० को मुहम्मद आदिलशाहके एक बेटा पैदा हुआ था; इसी जन्मोत्सवकी खुशीमें ११ रोज बाद शाहजीको छुटकारा मिल गया। उसके बाद कुछ दिनतक उन्होंने मैसूरके विद्रोही जमींदारों (पोलिकरों) के विरुद्ध लड़कर उन लोगोंको फिरसे बीजापुरके अधीन किया और वे मद्रास प्रान्तमें बीजापुर राज्यके जागीरदार हो गये।

शाहजी जमानतपर छूटे थे, इसलिए वे कहीं फिरसे विपत्तिमें न पड़ जायँ, यह विचारकर शिवाजी सन् १६५० से १६५५ ई० तक शान्त रहे। बीजापुर-सरकारको उन्होंने किसी प्रकार भी नाराज नहीं किया।

परन्तु इसी समय उन्होंने पुरन्दरके किलेको अपने अधीन कर लिया। यह किला 'नीलकण्ठ नायक' उपाधिवाले एक ब्राह्मण-वंशकी जागीरमें

१. 'शिवभारत' काव्यमें इस नजरबन्दीका सच्चा विवरण दिया है।

था। उस समय इस किलेमें नीलोजी, शंकराजी और पिलाजी नामक तीन भाई शामिल रहते थे और वे तीनों उसके बराबरीके साझीदार थे। बड़े भाई नीलोजी बड़े कंजूस और मतलबी थे। वे अन्य दो भाइयोंका हक और अधिकार स्वयं दबाये बैठे थे और उन्हें कुछ भी नहीं देते थे, इसलिए दुःख पाकर उन दोनों भाइयोंने अपनी पुश्तैनी सम्पत्तिके बटवारेके लिए शिवाजीकी सहायता ली।

दो-तीन पुश्तसे शिवाजीकी इस कुटुम्बके साथ मैत्री थी और पुरन्दर पूनेसे केवल नौ कोस दूर था। दिवालीके दिन शिवाजी मेहमान बनकर पुरन्दरके किलेमें गये। तीसरे दिन दोनों छोटे भाइयोंने बड़े भाईको बाँधकर शिवाजीके सामने हाजिर किया। शिवाजीने उन तीनों भाइयोंको कैदकर किलेपर अपना कब्जा जमा लिया और वहाँ मावलोंकी फौज तैनात कर दी। परन्तु कुछ दिन बाद उन लोगोंके जीवन-निर्वाहके लिए उन्हें चामली गाँव दे दिया और पिलाजीको अपनी फौजमें नौकरी दे दी।

शिवाजीका जावलीपर अधिकार

सतारा जिलेके उत्तर-पश्चिमके कोनेमें सुप्रसिद्ध महाबलेश्वर पहाड़से पाँच-छः मील पश्चिमकी ओर जावली नामक ग्राम है। सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें मोरे नामक एक मराठा घरानेने बीजापुरके प्रथम सुलतानसे जावली परगना जागीरके रूपमें पाया था। उसने धीरे-धीरे आसपासके प्रदेशपर अधिकार जमाकर, प्रायः सम्पूर्ण सतारा जिले तथा कोंकणके कुछ हिस्सेमें अपना राज्य स्थापित किया। एक बार मोरे ने अपने हाथसे एक शेर मारा था, इसलिए उसकी वीरतासे प्रसन्न होकर बीजापुर-सुलतानने उसे 'चन्द्रराव'की उपाधि प्रदान की। यही उपाधि वंशपरम्परासे मोरे-वंशके ज्येष्ठ पुत्र धारण करते चले आये थे। बड़ा भाई जावलीका मालिक होता था और छोटे भाइयोंको नजदीकके गाँव दिये जाते थे।

आठ पुश्तसे युद्ध और लूट-खसोटके द्वारा मोरे लोगोंके भाण्डारमें बहुत धन संचय हो गया था। उनके अधीन बारह हजार पैदल सेना थी। ये सब सैनिक मावलोंके जाति-भाई थे। पर्वतोंमें रहनेके कारण सब बलवान् और साहसी थे। इस कारण उस समय जावली राज्य प्रायः सम्पूर्ण सतारा जिलेमें फैला हुआ था। इसके पश्चिमकी ओर समुद्रसे चार हजार फुटकी ऊँचाईपर

सह्याद्रि खड़ा है और पूरबकी ओरकी तराई घने जंगलों और पत्थरोंसे भरी पड़ी है। यह पेड़ोंसे छाई हुई पथरीली जमीन पश्चिममें ६० मील चौड़ी है। इसको पारकर उस तरफ कोंकण जानेके लिए आठ घाटियाँ पार करनी पड़ती हैं। इनमेंसे दो ही ऐसी हैं जिनमें बैलगाड़ी चल सकती है।

यही जावली देश दक्षिण और पश्चिमकी ओर शिवाजीके राज्यविस्तारकी राह रोके हुए था। मालवोंके सारे मुखियोंको अपने साथ लेनेके शिवाजीके सारे प्रयत्नोंमें चन्द्रराव बाधा डाल रहा था और उस प्रदेशमें अपनी सत्ता बनाये रखनेको वह आदिलशाही सूबेदारकी सहायतासे वहाँ एक शिवाजी-विरोधी दलको संगठित करनेका प्रयत्न करने लगा। अतः उन्होंने एक दिन रघुनाथ बल्लाल कोर्डेसे कहा, "चन्द्ररावको मारे बिना राज्य नहीं मिलेगा। यह काम तुम्हारे सिवा कोई दूसरा नहीं कर सकता। हम तुम्हें दूत बनाकर उसके पास भेजते हैं।" रघुनाथ राजी हो गये और शिवाजीकी ओरसे सुलहकी बातचीत करनेके बहाने एक सौ पचीस चुने हुए सिपाहियोंको साथ ले जावली जा पहुँचे।

इस घटनाके तीन-चार वर्ष पूर्व यशवंत मोरे नामक व्यक्ति चन्द्ररावकी पदवी ग्रहण कर राजा हुआ था। रघुनाथ पहले दिन तो मामूली शराफतकी बातचीत कर डेरेपर लौट आये और चन्द्ररावकी बेखबरीका उल्लेख करके अपने मालिकको फौज लेकर जावलीके नजदीक रहनेके लिए लिखा, ताकि मोरेका खून होनेके बाद जावलीपर चढ़ाई करनेमें देरी न हो। दूसरी बार मुलाकात एकान्तमें हुई। रघुनाथने बातचीत शुरू करके अकस्मात् छुरा निकाला, चन्द्रराव तथा उनके भाई सूर्यरावको मारकर खतम कर दिया; और फिर दौड़कर फाटकके बाहर हो गये। बेचारे द्वारपाल लोग चकरा कर हक्का-बक्का-से रह गये और वे उसे कुछ भी बाधा न दे सके। जिन सिपाहियोंने उनका पीछा किया वे भी हारकर लौट गये। रघुनाथ वनमें एक पूर्व-निर्दिष्ट स्थानमें जाकर छिप रहे।

शिवाजी भी नजदीक ही छिपे थे। मोरेकी हत्याका समाचार सुनते ही उन्होंने जावलीपर धावा कर दिया। जावलीके नेताहीन सिपाही छः घण्टेतक बहादुरीके साथ लड़े परन्तु अन्तमें उन्होंने (१५ जनवरी सन् १६५६ ई० को) किला खाली कर दिया। चन्द्ररावके दो लड़के और परिवारवर्ग कैद कर लिए गये, लेकिन उनके कुछ निजी आदमियों तथा काम-काजके मुखिया हनुमंतराव

मोरेने उनके नौकर-चाकरोंको इकट्ठा किया और वे एक नजदीकके गाँवमें आत्म-रक्षाका उपाय करने लगे। शिवाजीने देखा कि हनुमंतकी हत्याके बिना जावलीका कंटक दूर नहीं होगा, अतः उन्होंने शम्भूजी कावजी नामक एक मराठा योद्धाको दूतके बहाने हनुमंतके पास भेजा। मुलाकातके समय कावजीने हनुमंतका खून कर दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण जावली प्रदेश शिवाजीके हाथ आ गया। अब उनको दक्षिणमें कोल्हापुरतक और पश्चिममें रत्नागिरी जिलोंपर अधिकार जमानेका मौका मिला। जावली राज्यपर अधिकार जमानेसे शिवाजीको सताराका पश्चिमी प्रदेश, जिसमें ६० मील लम्बी पहाड़ी भूमि और तराई है, मिल गया। इससे एक बड़ा भारी लाभ यह हुआ कि अब उन्हें मावलोंकी सेना एकत्रित करनेके लिए दुगुना क्षेत्र मिल गया। इसके सिवा मोरे लोगोंकी फौज, हाकिम आदि तथा उनकी आठ पीढ़ियोंसे जमा की हुई प्रचुर धन-राशि भी शिवाजीके हाथ लगी।

मोरे वंशके कुछ लोग नहीं पकड़े जा सके। वे ही शिवाजीसे बदला लेनेके लिए सन् १६५६ ई० में जयसिंहके सहायक हुए।

शिवाजीका नया किला

जावली गाँवसे दो मील पश्चिमकी ओर शिवाजीने प्रतापगढ़ नामक एक नया किला बनवाया और वहीं भवानीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करवाई, क्योंकि आदि भवानी देवीका मन्दिर बीजापुर राज्यके अन्तर्गत तुलजापुरमें था। प्रतापगढ़की यही भवानी शिवाजीकी इष्टदेवी हुई। वहाँ वे अनेकों बार दर्शन करने गये और बहुत-सा धन दान किया। जावली जीतनेके बाद अप्रैल १६५६ ई० में शिवाजीने रायगढ़ नामका एक बड़ा किला मोरेके हाथसे छीन लिया। यही बादमें उनकी राजधानी हुई। चौबीसवीं सितम्बरको उन्होंने अपने सौतेले मामा शम्भूजी मोहितेके पास दशहरेकी भेंटके बहाने जाकर उन्हें अकस्मात् कैद कर लिया। शम्भूजी शाहजीकी आज्ञासे सुपे परगनेके हाकिम थे। उन्होंने शिवाजीके अधीन काम करनेसे इनकार कर दिया, इसपर शिवाजीने अपने पिताके पास उन्हें भेजकर सुपे परगनेपर कब्जा कर लिया। इधर ता० ४ नवम्बर सन् १६५६ ई० को वहाँके सुल्तान मुहम्मद आदिलशाहके मरनेपर बीजापुरमें जो गड़बड़ी मची थी, शिवाजीने उससे भी बहुत लाभ उठाया।

तीसरा अध्याय

मुगलों और बीजापुरके साथ शिवाजीकी पहली लड़ाई

मुगल-राज्यपर पहली चढ़ाई

सन् १६५६ ई० की चौथी नवम्बरको बीजापुरके सुलतान मुहम्मद आदिलशाहका देहान्त हुआ और कच्ची बुद्धिवाला एक युवक, अली आदिलशाह, जिसे राज-काज चलानेका बिलकुल ही ज्ञान न था, गद्दीपर बैठा। उस समय दक्षिणके मुगलप्रदेशमें औरंगजेब सूबेदारी करता था। उसने बीजापुरपर दखल जमानेका यह मौका हाथसे छोड़ना उचित न समझा। अली आदिलशाह मृत सुलतानका पुत्र नहीं है, यह अफवाह फैलाकर उसने युद्धकी घोषणा कर दी और अन्य बीजापुरी जागीरदारोंकी तरह शिवाजीको भी लालच देकर मुगलोंकी सहायताके लिए बुलाया। दोनोंके बीच लेन-देनके बारेमें लिखा-पढ़ी होने लगी। बादमें शिवाजीके दूत सोनाजी पण्डित बीदरके किलेके सामने औरंगजेबके शिविरमें पहुँचे (मार्च सन् १६५७ ई०); और वहीं लेन-देनकी बातें तै करनेके लिए एक महीनेतक रहे। आखिरमें औरंगजेबने शिवाजीकी सब बातोंको मंजूर करके उन्हें मुगलोंकी फौजको मदद देनेके लिए २३ अप्रैलको एक पत्र लिखा।

लेकिन इसी बीचमें शिवाजीने मन ही मन यह निश्चय कर लिया था कि वे मुगलोंकी तरफसे न लड़कर स्वयं अपने ही लिए लड़ेंगे। मुगलराज्य लूटनेसे ही उनके लिए वैसा लाभ होना सम्भव था। यह चाल गुप्त ही रखकर सलाह करनेके बहाने उन्होंने सोनाजीको अप्रैल महीनेके मध्यमें पास बुला लिया, और कुछ दिन बाद ही मुगलोंके अधीन दाक्षिणात्यके दक्षिण-पश्चिम भाग (अर्थात् महाराष्ट्रके हिस्से) पर चढ़ाई कर दी। उस जगह मुगलोंकी फौज कम थी और फौजके अफसर आलसी और बेखबर थे।

शिवाजीकी आज्ञासे मीनाजी भोंसले और काशी नामक दो मराठा सरदारोंने भीमा नदी पार करके मुगलोंके चमारगुण्डा और रायसीन नामक परगनोंके

गाँवोंको लूट लिया, और अहमदनगर शहरके आसपासतक आतंक फैला दिया। स्वयं शिवाजीने भी तीसवीं अप्रैलको अँधेरी रातमें रस्सीकी सीढ़ी (मराठी नाम 'माळा') लगाकर उत्तर-पूना जिलेमें दीवार लाँघकर जुन्नर शहरके भीतर प्रवेश किया और पहरेवालोंको मार डाला। यहाँसे वे तीन लाख होंण (बारह लाख रुपये), दो सौ घोड़े और बहुत कीमती गहने तथा कपड़े आदि लूटकर लौट आये।

यह खबर सुनते ही औरंगजेबने उस ओर बहुत-सी फौज रवाना कर दी, और वहाँके अधिकारियोंको कड़ी चेतावनी दी। अहमदनगरके किलेदार मुल्तफत खाँने बाहर आकर कई एक छोटी-मोटी लड़ाइयोंके बाद मीनाजीको चमारगुण्डा थानेसे भगा दिया। इधर राव कर्ण और शाइस्ता खाँके आनेसे शिवाजीने जुन्नर परगनेमें बहुत दिनतक रहना निरापद न समझा, अतः वे वहाँसे चलते बने और अहमदनगर जिलेमें (मई महीनेके अन्तमें) जा पहुँचे। परन्तु वहाँ औरंगजेब द्वारा भेजी हुई फौजको लेकर नासिरी खाँ शीघ्र ही आ धमका और उसने ऊपर अकस्मात् धावा करके शिवाजीको (४ जूनको) घेर लिया। इस युद्धमें बहुत-से मराठे मारे गये, जो बचे, वे सब जान लेकर भागे।

अब मुगल अफसर अपने राज्यकी दक्षिण-पश्चिम सरहदपर जगह-जगह सिपाहियोंकी गारद बैठाकर देशकी रक्षा करने लगे। बीच-बीचमें वे तेजीसे मराठोंके राज्यमें घुसकर लोगोंको लूटते, गाँवोंमें आग लगाते, रैयतों और गाय-बछड़ोंको पकड़ लाते और फिर भागकर अपनी-अपनी जगह लौट जाते। औरंगजेबके अच्छे बन्दोबस्त और मजबूत शासनके कारण शिवाजी उसको और कोई हानि न पहुँचा सके। इसी बीच वर्षा आरम्भ हो गई; अतः दोनों पक्षोंने जून, जुलाई और अगस्तके महीने अपने-अपने सीमान्तोंपर बैठकर बिताये।

औरंगजेबके साथ सन्धि

सितम्बरमें बीजापुर राज्यने औरंगजेबके साथ सन्धि कर ली। अब शिवाजी किसके जोरपर लड़ें? उन्होंने भी मुगल-राज्यकी अधीनता कबूल कर नासिरी खाँके पास दूत भेजा। नासिरी खाँने शिवाजीकी प्रार्थनाको औरंगजेबके पास पहुँचाया, पर वहाँसे कोई ठीक जवाब न मिला। उसके बाद शिवाजीने अपने

दूत रघुनाथ बल्लाल कोर्डेको सीधा औरंगजेबके पास भेजा और औरंगजेबने अन्तमें (जनवरी सन् १६५८ ई० में) शिवाजीको विद्रोहके लिए क्षमा कर दिया; और मराठा प्रदेशपर उनका अधिकार स्वीकार उसी आशयका एक पत्र उन्हें लिखा। इधर शिवाजीने भी प्रतिज्ञा की कि वे मुगल-सीमाकी रक्षा करेंगे, अपने पाँच सौ घुड़सवारोंकी फौज औरंगजेबकी मातहतीमें लड़ाईके समय भेजेंगे और सोनाजी पण्डितको अपना दूत बनाकर शाहजादेके दरबारमें रखेंगे।

लेकिन औरंगजेब शिवाजीके ऊपर सचमुचमें विश्वास न कर सका। वह उस समय दिल्लीके सिंहासनपर दखल जमानेके लिए उत्तर-भारतकी ओर जा रहा था। जाते समय दक्षिणमें अपनी फौजोंको शिवाजीके ऊपर कड़ी नजर रखनेके लिए कह गया। उसने मीर जुमलाको (दिसम्बर १६५७ ई० में) लिखा था—"नासिरी खाँके चले आनेसे यह प्रान्त खाली हो गया है। खबरदार रहना, वह कुत्तेका बच्चा मौकेकी तलाशमें है।" उसने आदिलशाहको लिखा कि "इस देशकी रक्षा करना। शिवाजीने इस देशके कितने ही किलोंपर चोरीसे दखल कर लिया है। उसको उन सबसे हटा दो और अगर शिवाजीको नौकर रखना चाहो तो उसे कर्नाटकमें जागीर दो, ताकि वह बादशाही राज्यसे अलग रहे और उपद्रव न कर सके।"

शिवाजीका उत्तर-कोंकण जीतना

परन्तु सन् १६५८ और १६५९ ई० के दो वर्षमें मुगल शाहजादे दिल्लीके सिंहासनके लिए आप ही युद्धमें फँसे रहे, इसलिए शिवाजीको इस ओरसे कुछ भी डर न रहा। इधर पिछले युद्धमें किसके दोषसे बीजापुरवाले मुगलोंसे हारे, इस बातको लेकर बीजापुरके मंत्री और फौजी अफसरोंमें बड़ी भारी हुज्जत होने लगी। प्रधान मंत्री खान मुहम्मदका राजधानीमें खून हो गया। इस गड़बड़ीसे लाभ उठाकर शिवाजी अपना राज्य मनमाना बढ़ाने लगे। पश्चिमी घाट (सह्याद्रि-श्रेणी) पार कर वे उत्तर-कोंकण,—वर्तमान थाना जिलेमें जा घुसे और बीजापुरके हाथसे कल्याण और भिवंडी नामक दो शहर छीन लिये। वहाँ उन्हें बहुत माल हाथ लगा (२४ अक्टूबर सन् १६५७)।

बीजापुरके अधीन मुल्ला अहमद नामक एक अरब जातिका रईस इस

कल्याण-प्रदेशपर शासन करता था। शिवाजीके सेनापति आबाजी सोनदेवने इस देशपर अधिकार करते समय मुल्ला अहमदकी खूबसूरत नौजवान पुत्र-वधूको कैद कर लिया, और भेंट-स्वरूप शिवाजीके पास भेज दिया, परन्तु शिवाजीने बन्दिनी-की ओर केवल एक ही बार देखकर कहा—"आह, यदि मेरी माँ भी इसीके समान होती, तो कैसे आनन्दकी बात होती! मेरा भी चेहरा कैसा सुन्दर होता!" इस प्रकार शिवाजीने उस युवतीको माँ कहकर सम्बोधन किया और उसे कपड़ों तथा गहनों सहित उसके ससुरके पास इज्जतके साथ बीजापुर भेज दिया। उस युगमें यह एक नई बात हुई जिसे सुनकर सब लोग अचम्भित हो गये।

इसके बाद शिवाजीने कल्याण और भिवण्डीके उत्तरमें माहुली किलेपर (जनवरी सन् १६५८ ई० में) अधिकार कर लिया। इस तरह उत्तर-कोंकण दखल करके उन्होंने धीरे-धीरे दक्षिणके कोलाबा जिलेके कुछ हिस्सोंपर भी अधि-कार कर लिया और वहाँ बहुत-से किले बनवाये। कल्याणके उत्तरमें पोर्तुगीज लोगोंके दामन-प्रदेशके कई गाँवोंको लूटकर शिवाजीकी सेनाने आसिरी किलेमें सदाके लिए अड्डा जमा लिया। उसी समय शिवाजीने कल्याणके पास समुद्रकी खाड़ीमें जहाज तैयार करवाकर मराठी जल-सेनाकी भी नींव डाली।

शिवाजीको दबानेके लिए अफजल खाँका जाना

सन् १६५८ ई० के शुरूमें जब औरंगजेब दक्षिणसे चला गया, तब बीजापुर राज्यको शान्ति और नया बल मिला। मन्त्री खवास खाँ बड़ा चालाक था और राजमाता बड़ी साहिबा बहुत तेजी और होशियारीसे राज-काज चलाने लगीं। कब्जेसे निकले हुए चारों ओरके छोटे-छोटे सामन्त राजाओंके दबानेका प्रयत्न होने लगा। शाहजीको हुक्म हुआ कि अपने विद्रोही लड़केको वशमें करें। उन्होंने जवाब दिया—"शिवा हमारा त्याज्य पुत्र है। आप लोग उसे पकड़कर सजा दे सकते हैं, हमारा कोई संकोच न कीजिए।"

अब शिवाजीके विरुद्ध फौज भेजनेकी सलाह हुई, लेकिन डरके मारे किसी उमरावने उस लड़ाईमें सेनापति होना स्वीकार नहीं किया। तब सुलतानने भरे दरबारमें पानका बीड़ा रखकर कहा—"जो इस लड़ाईमें सेनापति होना चाहता हो, केवल वही इस बीड़ेको उठाकर खा सकता है। उसे वीर-शिरोमणि

मानकर सत्कार किया जायगा।"

अब्दुल्ला भटियारा (रसोई पकानेवाले खानदानका) उर्फ अफजल खाँ बीजापुर राज्यका अव्वल दर्जेका उमराव था। मैसूरको जीतनेके समय और मुगलोंके साथ पिछली लड़ाईमें उसने अनेक बार बहादुरी और खैरख्वाही दिखाकर नाम कमाया था। उसने पानके बीड़ेको चटसे उठा लिया और घमण्डके साथ कहा, "मैं घोड़ेपर बैठे-बैठे ही शिवाजीको हराकर बाँध लाऊँगा।"

लेकिन गत युद्धके कारण बीजापुर-सरकारका धन और जन-बल बहुत कम हो गया था। इसीसे अफजलके साथ दस हजार घुड़सवारोंसे अधिक फौज भेजना सम्भव न था। इधर शिवाजीकी घुड़सवार सेना ही दस हजारसे अधिक थी। इसके अलावा, लोगोंका कहना था कि जावली दखल करनेके कारण साठ हजार मावले पैदल सिपाही भी उनकी सेनामें आ जुटे थे। इसके सिवा लड़ाई करनेमें दक्ष साहसी पठानोंका एक दल बीजापुर-राज्यकी नौकरीसे बरखास्त होकर उनकी अधीनतामें था, इसीलिए बीजापुरकी राज-माताने अफजलसे कहा कि दोस्तीके बहाने शिवाजीको भुलावा देकर कैद करना होगा। यह बात उस समयके अँग्रेज कोठीवालोंकी चिट्ठीमें साफ तौरपर लिखी हुई है।

अफजल खाँकी कारसाजी

अफजल खाँ बीजापुरसे सीधे उत्तरकी ओर बढ़कर महाराष्ट्रके सबसे बड़े तीर्थ तुलजापुर आ पहुँचा; उसने वहाँकी भवानीकी मूर्तिको तोड़ डाला और उसे चक्कीमें पीसकर धूल बनाकर फेंक दिया।[१] उसके बाद वह पश्चिमकी ओर मुड़ा और सतारा शहरसे बीस मील उत्तर 'वाई' नामक गाँवमें पहुँचा (अप्रैल सन् १६५९)। यह कस्बा उसकी जागीरका मुख्य स्थान था; यहाँ

१. मराठी-गाथामें लिखा है कि उसने तुलजापुरके बाद माणिकेश्वर, पण्ढरपुर और महादेव पर्वतपर भी देवता और ब्राह्मणोंके ऊपर अत्याचार किये और उनका अपमान किया। श्रीयुत विनायक लक्ष्मण भावे कहते हैं कि यह बात सच नहीं है।

वह कई महीने ठहरा हुआ इसी फेरमें पड़ा रहा कि किस प्रकार शिवाजीको पहाड़से नीचे मैदानमें लाया जाय, अथवा उसी जगहके मराठा जमींदारोंकी मददसे उन्हें कैद किया जाय। बीजापुर-सरकारने अपने अधीनस्थ सब मावले देशमुखोंको अपनी-अपनी फौज लेकर अफजलकी सहायता करनेका हुक्म भेज दिया था। इसका कुछ असर भी हुआ था। उस समय रोहिड़खेरेकी देशमुखीको लेकर खण्डोजी खोपड़े और कान्होजी जेधेके बीच झगड़ा चल रहा था। कान्होजी शिवाजीके पक्षमें था। खण्डोजीने अफजल खाँकी मदद की और यह लिखित प्रतिज्ञा भी की कि यदि उस गाँवकी देशमुखी मिले तो वह शिवाजीको पकड़कर ला देगा। अपने साथियोंके साथ खोपड़े अफजलकी सेनाके अगले हिस्सेका मुखिया बनाया गया।

वर्षाकी समाप्तिपर अक्टूबर महीनेमें फिर फौजोंके चलनेका समय आनेवाला था, इसी बीचमें शिवाजी प्रतापगढ़के किलेमें पहुँच गये।

यह किला वाईसे सिर्फ बीस मील पश्चिममें था। अफजल खाँने अपने दीवान कृष्णाजी भास्करके द्वारा शिवाजीको कहला भेजा—"तुम्हारे पिता हमारे पुराने साथी हैं, इसलिए तुम हमारे लिए कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं हो। आओ और हमसे भेंट करो। हम बीजापुरके सुलतानसे कहकर उन्हें इस बातपर राजी कर लेंगे कि तुम्हारे सब किले और कोंकण देश तुम्हारे ही अख्तियारमें रहने दें। इस दरबारसे तुमको और भी सम्मान और फौजका सरंजाम दिलायेंगे। अगर तुम खुद दरबारमें मौजूद रहना चाहो तो और भी अच्छा है। वहाँ तुम्हें बड़ी इज्जत मिलेगी। यदि तुम वहाँ न रहकर अपनी जागीरमें रहना चाहो, तो उसके लिए भी हुक्म दिलानेका बन्दोबस्त करेंगे।"

अफजलकी चढ़ाईसे शिवाजीको डर और चिन्ता

इसी बीचमें अफजल खाँके आनेके समाचारसे शिवाजी और उनके साथियोंमें भारी भय और चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। उन लोगोंने तबतक छोटी-मोटी लड़ाई और मामूली लोगोंकी धन-सम्पत्तिकी लूट-खसोट ही की थी, परन्तु इस बार एक तालीम-याफ्ता और साज-सामानसे लैस फौज एक नामी और

बहादुर सेनापतिके अधीन उनका सामना करनेके लिए आ रही थी। वह सेना बीजापुरसे वाईतक तेजीसे बिना रोक-टोकके आगे बढ़ आई थी। उसे रोकनेकी मराठोंमें बिलकुल ताकत न थी। अफजल खाँकी अदम्य शक्ति और उसकी क्रूरताकी बात देश-भरमे फैली हुई थी। कई वर्ष पहले सेरा किलेके राजा कस्तूरी-रंगने बीजापुरकी फौजके शिविरमें आकर अफजल खाँके समीप आत्म-समर्पण किया था, परन्तु अफजल खाँने उसे वहीं मार डाला था,[1] इसीलिए शिवाजीने पहले जिस दिन अपने प्रधान व्यक्तियोंको बुलाकर उनका मत जानना चाहा, तो सबने डरके मारे सन्धि करनेकी राय दी। उन लोगोंने कहा—"लड़ाई करनेसे झूठ-मूठ प्राण जायँगे और जीतना असम्भव है।"

शिवाजी बड़ी मुश्किलमें पड़े। यदि वे उस समय आदिलशाहके अधीन होना स्वीकार करें, तो भविष्यमें उन्नतिका रास्ता सदाके लिए बन्द हो जाय। उन्हें या तो बीजापुरके जेलमें जिन्दगी बितानी होगी, या पूनेमें मामूली जागीर-दारकी भाँति नौकरी करनी पड़ेगी। अगर इस समय वे बीजापुरकी सरकारी फौजके विरुद्ध तलवार उठावें तो सुलतान जन्म-भरके लिए उनका शत्रु हो जायगा और उनको अपनी बाकी जिन्दगी एकदम असहाय और बन्धुहीन दशामें मुगलों तथा और-और राजाओंके साथ निरन्तर लड़ाईमें काटनी होगी। वे दिन-भर सोचते-सोचते हैरान हो गए; रातको चिन्ताके मारे थककर तन्द्रामें पड़ गये। लोगोंका कहना है कि सपनेमें भवानीने दर्शन देकर कहा, "बच्चा, तू डर मत, मैं तेरी रक्षा करूँगी। तू अफजलपर चढ़ाई कर, तेरी ही जय होगी।"

अब उनका सन्देह जाता रहा। सबेरे फिर मंत्रणा-सभा बैठी। शिवाजीकी वीर-वाणी और देवीके आशीर्वादकी बात सुनकर समस्त प्रधान लोगोंने मारे उत्साहके लड़नेकी राय दे दी। माता जीजीबाईने भी शिवाजीको आशीर्वाद देकर, 'तेरी ही जय होगी' ऐसी भविष्य-वाणी की।

---

१. सन् १६५७ ई० में अफजलने बीजापुरके वजीर खान महम्मदकी भी नाहक हत्या की थी।

लड़ाईमें अकस्मात् यदि उनकी मृत्यु हो जाय, तो किस प्रकार राज-पाट चलाना होगा, इस विषयमें शिवाजीने उस समय अपने कर्मचारियोंको लम्बा-चौड़ा उपदेश दिया। बड़ी दूरतककी सब बातें सोच-समझकर पूरी चालाकीके साथ अफजलके ऊपर चढ़ाई करनेका बन्दोबस्त किया गया। पेशवा और सेनापति नेताजी पालकरके अधीन दो बड़ी फौजोंको प्रतापगढ़के पासके जंगलमें छिपकर रहनेका हुक्म दिया गया।

अफजलके साथ मेल और मुलाकातकी बातचीत

इसी बीचमें अफजलके दूत कृष्णाजी भास्करने आकर शिवाजीको खाँके साथ भेंट करनेको कहा। शिवाजीने इस ब्राह्मणकी खूब खातिर की और रातको अकेले कमरेमें मिलकर कहा—"आप हिन्दू और जातिके पुरोहित हैं। हम भी हिन्दू हैं। सच-सच बतलाइए कि अफजल खाँका क्या मतलब है ?" जबर-दस्ती करनेपर मजबूर होकर कृष्णाजीने जवाब दिया कि अफजलका इरादा अच्छा नहीं है।

दूसरे दिन शिवाजीने अपने दूत पन्ताजी गोपीनाथको कृष्णाजी भास्करके साथ अफजलके खेमेमें भेजा। खाँने पन्ताजीके सामने कसम खाई कि भेंट करते समय वह शिवाजीको कुछ भी हानि न पहुंचायेगा। साथ ही शिवाजीकी ओरसे पन्ताजीने भी मान लिया कि उस समय अफजलके साथ किसी प्रकारका विश्वास-घात न किया जायगा। लेकिन शिवाजीके दूतने बहुत बड़ी रिश्वत देकर वहाँपर बीजापुरके सरदारसे यह पता लगा लिया कि खाँने ऐसा बन्दोबस्त किया है कि भेंटके समय वह शिवाजीको कैद कर लेगा, क्योंकि शिवाजीके समान धूर्त व्यक्तिको लड़ाईमें जीतना मुश्किल है। इन सब बातोंको सुनकर शिवाजी इस बातके लिए तैयार हो गये कि जिस प्रकार भी हो अफजलको खतम करके अपनी रक्षा करनी चाहिए।

शिवाजीने अब यह बात जाहिर कर दी कि खाँके साथ भेंट करके सुलहकी बातें ठीक करनेके लिए वे राजी हैं, लेकिन वाई शहर जानेमें वे डरते हैं। पहले खाँ उनके मकानके पास आकर मुलाकात करें और उन्हें विश्वास दिला दें, तो बादमें वे भी खाँके तम्बूमें जायँगे।

भेंट करनेकी जगह अफजल और शिवाजीका आना

इस बातपर अफजल खाँ राजी हो गया। दोनोंकी मुलाकातके लिए प्रतापगढ़-के किलेके कुछ नीचे एक पहाड़की चोटीके ऊपर तम्बू ताना गया। अफजल खाँने फौजके साथ वाईसे कूचकर महाबलेश्वरके ऊपरकी समतल भूमिको पार करके 'पार' गाँवमें पहुँचकर छावनी डाली। यह गाँव प्रतापगढ़के दक्षिणमे एक मीलकी दूरीपर पहाड़के नीचेकी समतल भूमिपर स्थित है। उसकी फाजने कयना नदीके किनारे गहरी तराईके चारों तरफ डेरा डाला।

भेंट करनेके लिए नियत दिन (१० नवम्बर, सन् १६५९ ई०) को अफजल खाँ पहले पार गाँवके शिविरसे एक हजार बन्दूकची सिपाहियोंको साथ ले पालकीपर सवार हो प्रतापगढ़के पहाड़के ऊपर चढ़ने लगा। पन्ताजी गोपीनाथने उससे कहा कि "इतनी बड़ी फौज देखकर शिवाजी डर जायँगे और भेंट करने नहीं आयेंगे; इसलिए खाँ और सबको पीछे छोड़ केवल दो पहरेदारों-को ही साथ लेकर ऊपर चढ़ें।" वैसा ही किया गया। दो सिपाही,—प्रसिद्ध तलवार चलानेवाला वीर सैयद बन्दा आर दानों तरफके दो ब्राह्मण दूत अर्थात पन्ताजी और कृष्णाजी अफजल खाँके साथ चले।

जिस तम्बूमें दोनोंकी मुलाकात होना ठीक हुआ था, वहाँ पहुचकर वहाँकी सजावटी कीमती चीजों और बिछौनोंको देखकर अफजल बिगड़कर बोला—"एं! एक मामूली जागीरदारके लड़केकी इतनी शान!" लेकिन पन्ताजीने उसे समझाकर कहा कि ये सब चीजें मेलके चिह्न-स्वरूप बीजापुर राज्यको भेंट देनेके लिए लाई गई हैं।

शिवाजीको बुलानेके लिए एक आदमी प्रतापगढ़ भेजा गया। उन्होंने कुर्तेके नीचे लोहेका जालीदार कवच और सिरपर पगड़ीके नीचे छोटी कड़ाहीके सदृश इस्पातकी टोपी छिपाकर पहन ली। बाहरसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि उनके शरीरमें कोई हथियार छिपा हुआ है, परन्तु उनके बाएँ हाथकी अँगुलियोंमें सिकड़ीसे बँधा हुआ 'बघनखा' नामक एक इस्पातका तेज और टेढ़ा पजा मुट्ठीमें छिपा था, और दाहिने हाथकी आस्तीनके नीचे 'बिछुआ' नामक पतला छुरा था। उनके साथ दो पहरेवाले थे—जीवमहला नामका

हजाम (तलवारका खिलाड़ी) और शम्भूजी कावजी। ये दोनों बड़े बहादुर, हाथकी सफाई दिखानेमें तेज और बलवान् पुरुष थे। इन दोनोंके हाथोंमें दो तलवारें थीं। प्रतापगढ़के किलेमें उतरते समय शिवाजीने माताके चरणोंमें प्रणाम कर बिदा चाही। सफेद कपड़े पहने हुए देवीकी प्रतिमूर्ति सी जीजाबाईने आशीर्वाद दिया—"तेरी जय हो" और शिवाजीके साथियोंको खास तौरपर ताकीद की, "मेरे लड़केकी रक्षा करना।" उन लोगोंने उत्साहके साथ प्रतिज्ञा की कि वे वैसा ही करेंगे।

अफजलके साथ मार-काट

प्रतापगढ़ किलेकी चोटीसे उतरकर तम्बूकी ओर धीरे-धीरे कुछ दूर जानेपर शिवाजी एकाएक खड़े हो गये, और कहला भेजा कि भेंटकी जगहसे सैयद बन्दाको हटा देना होगा। वैसा ही किया गया। आखिर शिवाजी मुलाकात-वाले शामियानेमें गये। इस कपड़ेके घरमें दोनों दलके चार-चार आदमी थे। खुद नेता, दो-दो शरीर-रक्षक और एक-एक ब्राह्मण दूत। शिवाजी देखनेमें शस्त्रहीन थे, लेकिन अफजल खाँकी कमरसे तलवार लटक रही थी।

साथी सब नीचे ही खड़े रहे। शामियानेके बीचमें चबूतरेके ऊपर अफजल खाँ बैठा था। शिवाजी चबूतरेपर चढ़े। खाँने गद्दीसे उठकर कुछ कदम आगे आगे बढ़, शिवाजीसे गले लगनेके लिए हाथ बढ़ाये। शिवाजी नाटे और दुबले थे, वे लम्बे-चौड़े शरीरवाले अफजलके कन्धे ही तक पहुँचते थे। इस-लिए खाँके दोनों हाथोंने शिवाजीका गला घेर लिया। उसके बाद अफजल खाँने एकाएक शिवाजीका गला अपने बाएँ हाथसे बड़े जोरसे दबाया, और दाहिने हाथसे कमरसे लम्बा सीधा छुरा निकालकर शिवाजीकी बाईं बगलमें चोट की, लेकिन छिपे जिरह-बख्तरमें लगनेसे वह छुरा देहमें घुस न सका। गला दबनेसे शिवाजीका दम घुटने-सा लगा, परन्तु पलभरमें बुद्धिको ठिकाने लाकर बायाँ हाथ जोरसे घुमाकर उन्होंने अफजल खाँके पेटमें 'बघनखा' घुसेड़ दिया और उससे खाँके पेटको फाड़ डाला, जिससे खाँकी अँतड़ियाँ बाहर निकल पड़ीं। साथ ही दाहिने हाथका 'बिछुआ' खाँकी बगलमे भोंक दिया। जख्मी अफजल खाँकी हाथकी पकड़ ढीली पड़ गई। तब शिवाजी जल्दीसे अपनेको

छुड़ाकर चबूतरेपरसे नीचे कूद पड़े और अपने साथियोंकी ओर दौड़े। ये सब बातें एक पलमें खतम हो गई।

चोट लगते ही अफजल खाँ चिल्ला उठा—"मार डाला, मार डाला, मुझे धोखा देकर मार डाला!" दोनों ओरके नौकर अपने-अपने मालिककी सहायताके लिए दौड़ पड़े। सैयद बन्दाने शिवाजीका सामना किया, अपनी लम्बी सीधी तलवार (पट्टा) के एक ही वारसे शिवाजीकी पगड़ी काट डाली। शिवाजीकी पगड़ीके नीचेकी लोहेकी टोपीपर भी तलवारकी चोटसे गहरा निशान बन गया, परन्तु सिर बच गया। तब वे भी जीवमहलाके हाथसे एक तलवार लेकर सैयद बन्दाको रोकने लगे। जीवमहला दूसरी तलवार लेकर आगे बढ़ा, और उसने पहले सैयदका दाहना हाथ और पीछे सिर काटकर अलग कर दिया। इसी बीच कहार लोग घायल अफजलको पालकीमें लिटाकर उसके तम्बूमें ले जानेको रवाना हो रहे थे कि शम्भूजी कावजीने आकर कहारोंके पैरोंपर चोट की जिससे वे पालकी छोड़कर भाग गये; तब तो उन्होंने अफजल खाँका सिर काटकर विजयके गर्वके साथ उसे शिवाजीके पास हाजिर कर दिया।

अफजलकी फौज हारी और लूटी गई

अफजल खाँको मारकर शिवाजी अपने दो पहरेदारोंके साथ सीधे पहाड़ लाँघकर प्रतापगढ़के किलेमें चले गये, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने तोप छोड़ी। यह इशारा पहलेसे ही नियत था। तोपकी आवाज सुनते ही नीचे गाँवके पास झाड़ियों और पहाड़ोंमें छिपी हुई शिवाजीकी दोनों फौजें निकलकर चारों ओरसे बीजापुरकी फौजपर धावा करने लगीं। अफजलके अकस्मात् मरनेके समाचारने उसके शिविरके समस्त नौकरों, सिपाहियों और अन्य आदमियोंको एक साथ घबराहटमें डाल दिया। उन लोगोंका न कोई नेता था, न रास्ता ही जाना हुआ था और चारों ओर अनेक शत्रु घेरे हुए थे। भागनेका रास्ता बन्द देखकर वे मजबूरन लड़ने लगे, परन्तु उस दिन मराठे विजयके उल्लासमें पागल हो रहे थे; दो नामी सेनापति उनके अफसर थे और लड़ाईकी भूमिसे वे भली भाँति परिचित थे। अतः वे लोग धड़ल्लेसे शत्रुओंको मार-मारकर आगे बढ़ने लगे। तीन घण्टेमें सबका काम तमाम हो गया। बीजापुरके तीन हजार योद्धा मारे गये। मावले लोगोंके सामने जो भी कोई पड़ा उसीके ऊपर वे तलवारसे वार

करने लगे; भागते हुए हाथियोंकी पूँछें काट डालीं, दाँत तोड़ डाले और पैर घायल कर दिये, तथा ऊँटोंको काट-काटकर जमीनपर गिरा दिया। बीजापुरके जिन योद्धाओंने हार मानकर दाँतोंमें तिनका दबाकर माफी माँगी, उन लोगोंको प्राण-दान दिया गया। इस लड़ाईमें लूट-पाटसे शिवाजीको बहुत लाभ हुआ। अफजल खाँकी सब तोपें, गोला-बारूद, तम्बू, कपड़े-लत्ते, बिछौने, धन-दौलत और माल-असबाबसे लदे हुए बहुत-से पशु उनके हाथ आये। इसमें पैंसठ हाथी, चार हजार घोड़, बारह ऊँट, कपड़ेकी दो हजार गाँठें और नकद एवं गहने मिलाकर दस लाख रुपये थे। कैदियोंमें एक बड़े ओहदेका सरदार, अफजल खाँके दो लड़के और दो मददगार मराठे जमींदार थे। जो स्त्री, बच्चे, ब्राह्मण और खेमेके नौकर पकड़े गये, उन सबको शिवाजीने उसी वक्त छोड़ दिया; परन्तु अफजलकी स्त्रियाँ और उसका बड़ा लड़का फजल खाँ कयना नदी पार हो खण्डोजी खोपड़े और उनकी मावली फौजकी सहायतासे एक निरापद स्थानको भाग गये।

शिवाजीने अपनी विजयी सेनाको एकत्र कर उसका निरीक्षण कर कैदियोंको छोड़ दिया, और जब वे अपने-अपने घर जाने लगे तब उन्हें अन्न, वस्त्र और धन भी दिया। जिन मराठे सैनिकोंने लड़ाईमें प्राण दिये थे उनकी विधवाओंको पेन्शनें दी गईं और जवान पुत्रोंको उनके पिताओंकी नौकरियाँ मिलीं। घायल सिपाहियोंके घावोंकी अवस्था देखकर उन्हें एक सासे लेकर आठ सौ रुपये-तक इनाममें मिले। बड़े फौजी अफसरोंको हाथी, घोड़े, पोशाक और जवाहरात इनाममें दिये गये।

मराठोंकी यह पहली विजय इसी जगह खतम नहीं हुई। विजयी शिवाजीने दक्षिणकी ओर बढ़कर कोल्हापुर जिलेपर धावा किया और पनहाला किला (२८वीं नवम्बर) को दखलकर रुस्तम-ए-जमाँकी मातहतीकी बीजापुरकी एक और फौजको भी (२८वीं दिसम्बर) हराया। उसके बाद जनवरी महीनेमें दक्षिण कोंकणके रत्नागिरि जिलेमें घुसकर बहुत-से बन्दरों और गाँवोंको लूटा।

अफजल खाँकी मृत्युके बारेमें गीत और कथाएँ

अफजल खाँकी इस भयंकर दुर्घटनासे देश-भरमें आलोचना और कथाकी सृष्टि हुई। 'अज्ञानदास' उपनामवाले कविने मराठी भाषामें इस घटनाके

बारेमें एक बहुत ओजपूर्ण गीत(बैलेड) बनाया है, जो आज भी लोगोंको बहुत प्यारा है। औंधके राजा बाला साहब पन्त-प्रतिनिधिने हालमें ही इस घटनाको लेकर एक 'गीतिका' लिखी है। परन्तु यह 'बैलेड' ऐतिहासिक सत्यके अनुसार नहीं है। खाली मजेदार किंवदन्ती और ऐसी कल्पनाओंसे भरा है, मानों महाभारतका एक द्वन्द्व-युद्ध हो।

मराठा देशमें यह कथा प्रचलित है कि जिस समय अफजल बीजापुरसे शिवाजीके विरुद्ध रवाना हुआ, उस समय अनेक अशुभ घटनाएँ हुई थीं— उसकी झण्डी टूट गई थी, बड़ा हाथी आगे बढ़ना नहीं चाहता था, इत्यादि। और उसने मरना निश्चय जानकर रवाना होनेसे पहले ही अपनी तिरसठ औरतोंको मार डाला; उन्हे एक ही चबूतरेके नीचे बराबर फासलेपर कब्रमें दफनाकर अपने मनका सन्देह मिटा लिया था। बीजापुर शहरसे कुछ मील बाहर अफजलपुरा नामके गाँवमें खाँका मकान और उसके नौकर-चाकरोंकी बस्ती थी। वह जगह आजकल जन-हीन श्मशान-सी पड़ी है। वहाँ केवल टूटी दीवारें, खाइयाँ, जगल और दूर-दूरपर किसानोंके खेत दिखाई पड़ते हैं। उसके मरनेके केवल चौदह वर्ष बाद फ्रेंच यात्री आबे करेने इस स्थानपर जाकर देखा था कि कारीगर लोग अफजल खाँकी समाधिके पत्थर खोदते थे और एक पत्थरके ऊपर खुदा था कि खाँने अपने महलकी दो सौ औरतोंका गला काटकर फेंक दिया था। मैं सन १९१६ ई० के अक्टूबर महीनेमें वहाँ गया था। वहाँ मैंने तिरसठ कब्रें देखीं जो एक ही समय और एक ही ढाँचेकी बनी हुई मालूम होती थीं। अब भी उस जगहके किसान इस हत्याकांडका लम्बा-चौड़ा किस्सा कहते हैं, और इस घटनाके भिन्न-भिन्न स्थान भी दिखाते हैं।

चौथा अध्याय

शिवाजीका दक्षिण-महाराष्ट्रमें प्रवेश

अफजल खाँके मरने (१० नवम्बर सन् १६५९) और उसकी फौजके नष्ट होनेके बाद शिवाजी दक्षिणमें कोल्हापुर जिलेमें जाकर देश लूटने लगे। २८वीं नवम्बरको उन्होंने पनहाला नामक एक बड़े पहाड़ी किलेको ले लिया। उन्हें रोकनेके लिए उस जगहका हाकिम रुस्तम-ए-जमाँ बीजापुर-राज्यके हुक्मसे आगे बढ़ा; अफजलका लड़का फजल खाँ भी अपने बापकी मृत्युका बदला लेनेके लिए फौजके साथ रुस्तमसे जा मिला, लेकिन रुस्तमको मालूम था कि बीजापुरकी बड़ी बेगम साहबा गुप्तरूपसे उसे तबाह करनेमें लगी हैं। ऐसी हालतमें अपनेको बचानेके लिए उसके पास एकमात्र उपाय था शिवाजीके साथ दोस्ती बनाये रखना। खासकर शिवाजीके वंशके साथ उसकी दो पुश्तसे दोस्ती थी; इसलिए शिवाजीके साथ षड्यन्त्र कर केवल लोगोंको दिखानेके लिए रुस्तमने उनके विरुद्ध फौज बढ़ाई थी। कोल्हापुर शहरसे कुछ दूर दोनों दलोंकी मुठभेड़ हुई। रुस्तम ढीला पड़ गया और पीछे रह गया। इसपर गुस्सेसे बिगड़कर फजल खाँने लड़ाईकी सब जिम्मेवारी अपने हाथमें ले ली और बड़े जोरसे मराठोंके ऊपर (२९ दिसम्बरको) चढ़ाई की। उसके बहुत-से सिपाही लड़ाईमें मारे गये, दो हजार घोड़े और बारह हाथी पकड़े गये। फजल खाँ हार गया और बीजापुर लौट गया। रुस्तम पीछे हटकर दक्षिण-कानड़ेमें अपनी जागीरमें जाकर चुपचाप बैठा रहा।

इसी मौकेपर मराठा लोग सह्याद्रि पार कर पच्छिमकी ओर रत्नागिरि जिलेमें घुसे और बेरोक-टोक दक्षिणी कोंकणके शहरों और बन्दरोंको लूटने लगे। उन लोगोंका एक दूसरा दल पूरबकी ओर बढ़कर बीजापुर शहरके आस-पासतक जा पहुँचा। तब आदिलशाहको होश हुआ। वे शिवाजीको दबानेके लिए बड़ी कोशिश करने लगे। सिद्दी जौहर नामक एक हबशी उमरावको

'सलावत खाँ'की पदवी देकर फजल खाँके साथ पनहाला-किला छीन लेनेके लिए भेजा। जोहरने पन्द्रह हजार फौजके साथ आकर कोल्हापुर शहरमें अड्डा जमाया और शिवाजीको पनहालामें (२ मार्च सन् १६६० ई० को) घेर लिया, लेकिन उसके मनमें कुछ और ही बात थी। मालिकके काममें मन न लगाकर वह अपने लिए स्वाधीन राज्य स्थापित करनेके फेरमें पड़ गया। बुद्धिमान् मराठा-नरेशने बादमें मदद करनेका लोभ दिखाकर जौहरको अपने हाथमें कर लिया। लोगोंको झूट-मूठ दिखानेके बहाने वह छः महीनेतक धीरे-धीरे इस किलेपर घेरा डालनेका काम चलाता रहा, परन्तु फजल खाँ भूल जानेवाला आदमी न था। वह बापका बदला लेनेके लिए अपनी फौज ले मराठोंके ऊपर लगातार चढ़ाई करने लगा। पनहालेके नजदीक ही पवनगढ़का किला है। नजदीकके एक पहाड़की चोटीपर तोप लगाकर फजल खाँ पवनगढ़के ऊपर गोलोंकी वर्षा करने लगा।

पवनगढ़को बचाना मुश्किल हो गया और इसके एक बार बीजापुरियोंके हाथ पड़ जानेपर पनहालेका पतन भी निश्चित था। शिवाजीने देखा कि मामला टेढ़ा है। वे चारों ओरसे जकड़ गये, भागनेके रास्ते बन्द हो गये। तेरहवीं जुलाई आषाढ़ बदी प्रतिपदाकी रातको पनहालेमें कुछ सिपाहियोंको रखकर बाकी लोगोंके साथ वे चुपचाप किलेसे उतरे और पवनगढ़के सामने पड़ी हुई बीजा-पुरकी छावनीपर चढ़ाई कर दी। उसी गोलमालके मौकेपर विशालगढ़ किलेकी तरफ भागनेका भी बन्दोबस्त किया।

पनहालेसे शिवाजीका भागना

परन्तु विशालगढ़ था सत्ताईस मीलकी दूरीपर और रास्ता भी था विकट,—ऊँचा-नीचा, पथरीला और संकीर्ण। दूसरे दिन सूर्योदयके समय उन्होंने देखा कि वहाँ पहुँचनेमें तब भी आठ मील बाकी हैं। इधर रातहीको शिवाजीके भागनेकी खबर और उनके रास्तेका ठीक पता लगाकर फजल खाँ मशालें जला-कर उनके पीछे-पीछे रवाना हो गया। इस समय दिनके उजालेमें शत्रुकी सेना मराठोंको निश्चय ही पीसकर मार डालती।

इस महान् संकटमें बाजीप्रभु नामके कायस्थ जातिके एक मावले जमींदारने अपनी जान जोखिममें डालकर शिवाजीकी रक्षा की। गजपुरके नजदीकका

रास्ता बहुत पतला है और उसके दोनों तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। बाजीप्रभुने कहा, "महाराज, हम आधी फौज ले इस जगह मुँह फेर खड़े होकर दुश्मनकी फौजको रोक रखगे, तबतक आप बाकी सिपाहियोंके साथ विशालगढ़को जल्दी रवाना हो जाइए। वहाँ सही-सलामत पहुँचनेपर हमें तोपकी आवाजसे खबर दीजिएगा।"

गजपुरकी घाटी मराठोंके इतिहासकी थर्मापैली है! सवेरेसे लेकर पाँच घंटे-तक बार-बार बीजापुरकी मजबूत फौज बाढ़की तरह आकर उस सकरी पहाड़ी घाटीमें घुसनेकी कोशिश करती थी, परन्तु मुट्ठी-भर मराठे जी-जानसे लड़कर उसको हटा देते थे। सात सौ मराठे सिपाही वहाँ काम आये। बाजीप्रभु भी घायल होकर रणभूमिमें खेत रहे, मगर फिर भी लड़ाई न थमी। दोपहरके बाद आठ मीलकी दूरीसे तोपकी आवाज सुनाई दी। शिवाजीको विशालगढ़में आश्रय मिल गया। बाजीप्रभुने जान देकर अपना प्रण पूरा किया। तब बीजा-पुरी सेनाके कर्नाटकी बन्दूकचियोंने गोलियोंकी वर्षा करके इस घाटीपर कब्जा कर लिया; बाकी बचे हुए मावले बाजीप्रभुकी लाश उठाकर पहाड़ोंमें भाग गये।

सुलतान आदिलशाह जौहरके विश्वासघातको समझकर दोनों विद्रोहियोंको दबानेके लिए स्वयं राजधानीसे पनहालेकी ओर बढ़े। जौहरने देखा कि अब तो बहानेबाजीसे काम न चलेगा, तब उसने २२वीं सितम्बरको मराठोंके हाथसे पनहालाका किला छीनकर सुलतानके अधीन कर दिया।

शायस्ता खाँका पूना और चाकन जीतना

जिस समय शिवाजीके राज्यके दक्षिणकी ओर उनकी ऐसी हार और हानि हो रही थी, ठीक उसी समय उनकी उत्तरी सीमापर एक और बड़ी भारी आपत्ति आ खड़ी हुई। पन्द्रहवीं अगस्त सन् १६६० ई० को मुगलोंने उनके हाथसे चाकनका मशहूर किला छीन लिया।

सन् १६५९ ईस्वीके अन्तमें औरंगजेबका सिंहासन निष्कंटक हो गया। उसे अब भाइयोंके विरोधका कोई डर न रहा, क्योंकि सभी जगह उसकी ही जय हुई थी। अब उसे दक्षिणकी ओर नजर डालनेका मौका मिला। उसने अपने मामा शायस्ता खाँको दक्षिणका सूबेदार बनाकर शिवाजीके विरुद्ध भेजा।

शायस्ता खाँ जैसा बुद्धिमान् था, वैसा ही वीर भी था। नेतृत्व और देश-शासनमें वह एक-सा दक्ष था। उसे बहुत-सी लड़ाइयोंका अनुभव था। धन, मान और प्रभावमें मीर जुमलाको छोड़कर दूसरा कोई अमीर उसकी बराबरीका न था। उसने बड़ी चालाकीसे अहमदनगरसे (२५ फरवरी सन् १६६० ई० को) कूच किया और पूना जिलेके पूर्व तथा दक्षिणकी ओर घूमता हुआ, अपने सामनेसे मराठोंको बराबर भगाता और अपने पीछेके रास्तेको निरापद रखनेके लिए जगह-जगह थाने स्थापित करता हुआ अन्तमें वह पूना जा पहुँचा। यह कहा जा सकता है कि रास्तेमें उसका एक सिपाही भी नहीं मरा। मराठे मारे डरके स्वयं ही पीछे हट गये और यदि लड़े भी तो ऐसी बुद्धिमानीसे सचालित और सुसंगठित फौजके सामने वे टिक न सके।

पूनासे अठारह मील उत्तरमें चाकन किला है। इसपर कब्जा कर लेनेसे मुगल-प्रदेशसे दक्षिणके रास्ते पूनामें रसद लाना सम्भव था। शायस्ता खाँने २१ जूनको चाकनके बाहर पहुँचकर किलेको घेर लिया। किलेके मालिक फिरंगजी नरसाला जी-जानसे लड़े, लेकिन मुगल फौज उस दिन अजेय थी। वह पानी-कीचड़को कुछ न समझकर किलेके चारों ओर खाई खोदकर मोरचा बाँधने लगी। उसने (चौदहवीं अगस्तको) जमीनके नीचे-नीचे किलेकी दीवारकी सतह तक सुरंग खोदकर, उसमें बारूद भरकर आग लगा दी। बड़े जोरके धड़ाकेके साथ चाकन किलेके उत्तर-पूर्व कोनेका बुर्ज फटकर उड़ गया। उसी मौकेपर मुगल-सेना किलेकी दीवालपर चढ़ गई और दो दिनकी मार-काटके बाद पूरे किलेपर अख्तियार जमा लिया। शायस्ता खाँ खुद बहादुर था, इसीसे वह बहादुरकी कदर करना जानता था। वह फिरंगजीके गुणोंपर मुग्ध होकर उसे बादशाही फौजमें एक बड़ी नौकरी देने लगा, परन्तु स्वामिभक्त मराठाने नमकहराम होना अस्वीकार कर दिया। तब इज्जतके साथ फौजसहित शिवाजीके पास लौट जानेकी उसे इजाजत दे दी गई।

दक्षिण कोंकणमें शिवाजीका राज्य फैलाना

करीब दो महीनेतक लगातार मेहनतके बाद चाकनपर दखल जमानेमें मुगलोंके २६८ सिपाही मरे और छः सौ आदमी घायल हुए, इसीलिए उसके

बाद वे मराठोंके अन्य किलोंपर चढ़ाई करनेसे बाज आये। शायस्ता खाँ शीघ्र ही पूना लौट गया और वहाँ जाकर उसने अपना डेरा डाल दिया।

सन् १६६१ ई० के शुरूमें उसने उत्तर-कोंकण जीतनेके लिए एक दल सेना भेजी। इस सेना का नायक चारहजारी मनसबदार कारेतलब खाँ उजबक जब उम्बरखिण्ड नामक स्थानमें एक मार्गहीन पहाड़ी जंगलके बीचोंबीच तोपें, बन्दूक और रसद आदि लेकर कष्टमें फँसा था, तब शिवाजीने जल्दीसे छिपे रास्तेसे आकर उसे घेर लिया और पानी लानेवाले रास्तेको रोक दिया। खाँने तब शिविर और सब सम्पत्ति शिवाजीको समर्पण की और प्राणोंकी भिक्षा लेकर ३ फरवरी सन् १६६१ ई० को लौट आया।

पनहाला और चाकनके छीने जानेसे जो कुछ नुकसान हुआ था, उसको पूरा करनेके लिए विजयी शिवाजी दक्षिण-कोंकणमें घुसे। सेनापति नेताजी पालकरके अधीन मराठोंका एक दल मुगलोंके विरुद्ध उत्तरकी तरफ तैनात था। दूसरा दल लेकर शिवाजीने खुद बीजापुरके अधीन दक्षिण-कोंकण (वर्तमान रत्नागिरी जिले) पर अधिकार कर लिया। वहाँ केवल छोटे-छोटे राज्य थे; कोई ऐसा बलवान् प्रतापी राजा नहीं था जो शिवाजीकी गतिको रोक देता। शिवाजी इतनी तेजीसे आगे बढ़े कि उस जगहके बहुत-से राजा और जमींदारोंको अपनी जान बचानेतकका अवसर नहीं मिला, वे जल्दीमें सब छोड़-छाड़कर जान लेकर भागे और कर देना स्वीकार कर उनके अधीन हो गये।

इस प्रकार जंजीरासे खारेपटनतक पश्चिम समुद्रके किनारेका सब प्रदेश उनके हाथ आ गया। सब जगह उनकी तरफसे लूट-पाट या चौथ वसूल होने लगी। इस प्रदेशमें बहुत-से तीर्थ भी हैं जिनमें परशुराम-क्षेत्र बहुत प्रसिद्ध है और भारतके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंसे यात्रीगण इस स्थानपर तीर्थयात्राके लिए आते हैं। यहाँ ब्राह्मण-पण्डित ही अधिक बसते है। शिवाजीकी फौजकी सरपट चाल, उसके बल, लूट-पाट और उत्पीड़नके समाचारोंसे ब्राह्मणोंके कुटुम्ब, गरीब गृहस्थ और सब प्रजागण देश छोड़-छोड़कर भागने लगे। खेती-बारी, व्यापार आदि प्रायः बन्द-सा हो गया। शिवाजीने तीर्थोंमें जाकर बहुत पूजा की। ब्राह्मणोंको दान दिया और प्रजाको दम-दिला-सा देकर अपने-अपने घर लौटकर काम-काजमें लगाया। इस नये राज-काजमें सहायता मिलनेकी आशासे शिवाजीने

शृंगारपुरपर अधिकार करके वहाँके चलते-पुर्जे और बुद्धिमान् भूतपूर्व मन्त्री पिलाजी शिकको मन्त्रीका पद (यथार्थमें वही वहाँका कर्ता-धर्ता था), धन और अख्तियार देकर अपने पक्षमें कर लिया, यहाँतक कि उसके साथ विवाह-सम्बन्ध भी जोड़ लिया। इस प्रकार पल्लीवन और शृंगारपुरका राज्य तथा दाभोल, संगमेश्वर, राजापुर इत्यादिके बड़े-चढ़े शहर और बन्दर स्थायी रूपसे शिवाजीके हाथ लग गये। इस प्रदेशके कई अन्य शहरोंसे भी चौथ वसूल की जाने लगी।

लेकिन मई महीनेमें मुगलोंने उत्तर-कोंकणमें कल्याण शहर (राजधानी) पर अधिकार कर लिया और वह नौ वर्षतक उनके कब्जेमें रहा। इसके बाद करीब दो वर्षतक (मई सन् १६६१ ई० से मार्च सन् १६६३ ई० तक) मुगल-मराठा युद्ध धीरे-धीरे चलता रहा, किसी पक्षकी विशेष रूपसे जीत या हार नहीं हुई। यद्यपि फुर्तीले मराठे घुड़सवार बीच-बीचमें मुगल-राज्यपर छापा मारकर लूट-पाट किया करते थे, परन्तु साधारण तौरसे देखा जाय तो मुगल अपना कब्जा कायम रखने और कभी-कभी उलटे मराठा गाँवोंके ऊपर धावा बोलनेमें समर्थ हुए।

रातको शायस्ता खाँपर धावा

इसके बाद ही शिवाजीने एक ऐसा काण्ड कर डाला जिससे मुगल राज्य-दरबारमें खलबली मच गई और सारे भारतमें शिवाजीकी जादूगरीकी प्रसिद्धि और दैवी-चमत्कारका भय फैल गया। वे अगणित मुगल-सेनासे घिरे हुए शायस्ता खाँके तम्बूमें रातको गये और मार-काटकर सही-सलामत ५ अप्रैल १६६३ ई० को वापस लौट आये।

चाकनका किला जीतनेके बाद शायस्ता खाँ पूना लौट आया। वह वहाँ शिवाजीके बचपनके निवास-स्थान 'लालमहल' में ठहरा। उसके चारों ओर तम्बू कनातें खड़ी करके स्त्रियों और नौकर-चाकरोंको रहनेके लिए जगह बनाई गई। पहरेदारोंके रहनेका स्थान उसके पास ही था। फौजके सामन्तोंने पूना नगरमें इधर-उधर आश्रय ले लिया। कुछ दूर दक्षिण, सिंहगढ़के रास्तेके किनारेपर शायस्ता खाँके बड़े अफसर महाराजा जसवन्तसिंह दस हजार फौजके साथ डेरा डाले पड़े थे।

ऐसे सुरक्षित और सदा तैयार रहनेवाले वैरीका गढ़ तोड़नेके लिए अत्यन्त

साहस, बुद्धि और तेजकी जरूरत है। शिवाजीमें ये सब गुण पूर्ण मात्रामें मौजूद थे, यह बात उनके पक्के बन्दोबस्तसे अच्छी तरह प्रकट होती है। उन्होंने एक हजार बहादुर सिपाहियोंको अपने साथ लिया और सिपाहियोंको सेनापतिके अधीन एक-एक हजार मावलोंकी पैदल-सेना और घुड़सवारोंके दो दल बनाकर मुगल-शिविरकी दाहिनी और बाईं ओर आध-आध कोसकी दूरीपर छिपा दिया।

इस प्रकार बन्दोबस्त करके शिवाजी सिंहगढ़से बाहर हो शामको पूनाके नजदीक पहुँचे। अपने दलके छः सौ सिपाहियोंको बाहर छोड़कर तथा पेशवा मोरोपन्त और सेनापति नेताजीको दो तरफ तैनात कर बाकी चार सौ वीरोंके साथ वे मुगलोंके खेमोंके बीचमें घुस गये। मुसलमान पहरेवालोंने पूछा, "तुम लोग कौन हो?" शिवाजीने उत्तर दिया, "हम लोग बादशाहकी दक्षिणी फौजके आदमी हैं, अपने स्थानमें ठहरनेके लिए जाते हैं।" पहरेदार यह सुनकर चुप हो गये। उसके बाद पूनाके एक कोनेमें कई घण्टे चुप-चाप बिताकर शिवाजी रातको शायस्ता खाँके रहनेके मकानके पास आ खड़े हुए। बचपनहीसे वहाँकी अंगुल-अंगुल भूमि उनकी जानी हुई थी।

उन दिनों रमजानका महीना था। इस महीनेमें मुसलमान दिनमें भूखे रहकर रातको खाते है। दिन-भर भूखे रहनेके बाद शामको ही खूब खाकर नवाबके मकानमें सब लोग गहरी नींद सो रहे थे। केवल दो-चार बावर्चियोंने रातसे ही उठकर,—सूर्योदयके पहले खानेकी चीजें पकानी शुरु कर दी थीं। इसके पूर्व कि वे लोग कुछ हल्ला-गुल्ला मचा सकें, मराठोंने पहुँचते ही उन्हें मारकर शान्त कर दिया। यह रसोईघर बाहरकी ओर था और इसीसे लगा हुआ अन्दर महलके नौकरोंके रहनेका स्थान था, बीचमें केवल एक दीवार खड़ी थी। पहले इस दीवारमें एक छोटा-सा दरवाजा था, शायस्ता खाँने उस दरवाजेको ईंटोंसे चुनवाकर बन्द करा दिया था। शिवाजीके साथी साबलसे दरवाजेकी ईंटें निकालने लगे। उसी आवाजसे उस तरफके यानी अन्दर-महलके नौकर जाग उठे और खाँको खबर दी कि शायद चोर सेंध काट रहे हैं। इस मामूली-सी बातपर नींदमें विघ्न पड़नेके कारण खाँने गुस्सेमें आकर उन लोगोंको भगा दिया।

ईंटें हटाकर धीरे-धीरे दीवारमें आदमीके घुसनेके लायक छेद कर दिया गया। सबसे पहले स्वयं शिवाजी अपने रक्षक चिमनाजी बापूजीको साथ लेकर अन्दर-महलमें घुस पड़े। उनके पीछे-पीछे उनकी दो सौ फौज घुसी। बाकी दो सौ वीर सैनिक बाबाजी बापूजीके अधीन छेदके बाहर खड़े रहे। तलवारों और छुरोंसे कनात काटकर रास्ता बनाया और दलबलके साथ शिवाजी तम्बूके बाद तम्बू पार करके अन्तमें शायस्ता खाँके सोनेकी जगहपर जा पहुँचे। उन लोगोंको देखकर भीतरकी औरतोंने मारे डरके खाँको जगाया। लेकिन खाँके तलवार पकड़नेके पहले ही शिवाजी उसके ऊपर टूट पड़े और एक ही चोटमें उसके हाथकी अँगुलियाँ काट डालीं। इस समय महलकी एक होशियार दासीने बुद्धिमानी करके वहाँका दिआ बुझा दिया; इससे दो मराठे अन्धेरेमें रास्ता न पाकर पानीके छोटेसे हौजमें गिर पड़े। इसी बीच दासियोंने खाँको एक सुरक्षित जगहमें पहुँचाया, लेकिन महलमें शिवाजीके आदमी भरसक मार-काट करने लगे। छः दासियाँ मारी गईं और आठ आदमी घायल हुए।

इधर शिवाजीके और दो सौ साथियोंने बाहरके पहरेवालोंके मकानोंमें घुसकर सोते अथवा ऊँघते हुए पहरेदारोंको मार डाला और दिल्लगी करने लगे कि मालूम होता है, तुम सब इसी तरह सोए-सोए पहरा देते हो! उसके बाद वे नौबतखानेमें घुसकर बोले, "खाँ साहबका हुक्म है कि खूब जोरसे नौबत बजाओ।" फिर क्या था, नगाड़ा, तुरही, भेरी और करतालकी आवाजके साथ मराठोंकी चिल्लाहटने मिलकर एक विचित्र ताण्डव शुरू कर दिया! भीतरसे करुण-क्रन्दन और मराठोंकी हुंकार सुनकर मुगलोंकी फौजने समझ लिया कि उनके सेनापतिको शत्रुने घेर लिया है। बस तुरत ही चारों ओरसे 'चलो चलो' का शब्द उठने लगा।

शायस्ताखाँ का पुत्र अबुल फतह सबसे पहले पिताको बचानेके लिए दौड़ा, लेकिन वह अकेला क्या कर सकता था? वह भी शत्रुके हाथसे मारा गया। एक मुगल अफसरका डेरा महलकी बगलमें ही था। मराठे भीतरका दरवाजा बन्द देखकर, रस्सीके बल भीतरके आँगनमें कूद पड़े और फौरन ही भीतरवालों-को भी खतम कर दिया। इस प्रकार शायस्ता खाँका एक पुत्र, छः बाँदियाँ

और चालीस पहरेदार मारे गये और वह स्वयं, उसके दो लड़के और आठ बाँदियाँ घायल हुईं। मराठोंकी तरफ केवल छः आदमी मारे गये और चालीस जखमी हुए।

यह सब कांड बहुत थोड़े ही समयमें हो गया। इधर शिवाजीने देखा कि शत्रु जब जीता ही भाग निकला, तब देर करना ठीक नहीं है। वे अपने अनुचरोंको इकट्ठाकर शिविरसे तुरत बाहर आ गये और महाराजा जसवन्तसिंहके तम्बूकी बगलसे सीधे दक्षिणकी ओर सिंहगढ़को चल दिये। मुगल उनको पकड़नेके लिए अँधेरेमें सारे शिविरमें इधर-उधर व्यर्थ ही ढूँढ़ने लगे। उन लोगोंने सचमुच यह समझ लिया था कि मराठे कमसे कम दस-बीस हजार होंगे!

शायस्ता खाँका दुःख और सजा

सन् १६६३ ई० की ५वीं अप्रैलको यह घटना घटी। दूसरे दिन सबेरे सब मुगल अफसर शोकमें सहानुभृति प्रकट करनेके लिए सेनापतिके दरबारमें हाजिर हुए। इनमें जसवन्तसिंह भी थे। उनके अधीन दस हजार फौज थी और उनकी छावनी शिवाजीके रास्तेके ऊपर थी, तो भी उन्होंने वैरीके आने-जानेमें किसी तरहकी बाधा न दी और पीछे भी न हटे। उनकी कपट-पूर्ण दुःखकी बातें सुनकर शायस्ता खाँने कहा—"जी हाँ, देखता हूँ कि आप अभीतक जिन्दा ही हैं! कल रातको जब दुश्मन हमको घेरे हुए थे, तब हमने यह समझा था कि आप उनको रोकने गये होंगे और वहीं आप काम आये, तभी तो वे हमारे पासतक पहुँच सके!"

नतीजा यह हुआ कि देशमें सब जगह लोग यह कहने लगे कि शिवाजीने जसवन्तसिंहसे मिलकर यह काम किया है। अँग्रेज व्यापारियोंने भी बदनामीभरी यह बात लिखी है, परन्तु शिवाजी अपने अनुचरोंसे कहते थे कि "हमने जसवन्तके कहनेसे यह बात नहीं की, बल्कि हमारे परमेश्वरने यह बात हमसे करवाई है।"

महाराष्ट्रमें रहना बिलकुल सुरक्षित न देखकर तथा लज्जा और खेदके कारण शायस्ता खाँ औरंगाबाद चला आया। उसकी असावधानी और अकर्मण्यताके

ही कारण यह घटना घटी, यह विचार कर बादशाहने मामा शायस्ता खाँकी बदली बंगालमें कर दी, क्योंकि उस समय बंगालका नाम था 'रोटी-पूर्ण नरक।' बंगाल जाते समय रास्तेमें बादशाहसे मुलाकाततक करनेकी शायस्ता खाँको मुमानियत कर दी गई। सन् १६६४ ई० की जनवरीके शुरूमें शाहजादा मुअज्जम (शाह आलम) दक्षिणका सूबेदार होकर वहाँकी राजधानी औरंगाबाद पहुँचा और शायस्ता खाँ बंगालकी तरफ चल दिया। इस तबदीलीके मौकेपर शिवाजीने बिना रोक-टोक सूरतका बन्दर (६ से १० जनवरीतक) मनमाने तौरपर लूटा।

सूरतका बन्दरगाह

भारतके पश्चिमी समुद्र-तटसे बारह मीलकी दूरीपर ताप्ती नदीके किनारे सूरत शहर बसा है। बहुत दिन पहले यहाँ बड़े-बड़े जहाज आया-जाता करते थे, परन्तु अब नदी इस शहरसे छ-सात कोस पश्चिमकी ओर हट गई है, इसीसे आजकल समुद्रमें आने-जानेवाले सब जहाज उस मुँहके पास, सुहाइली (Swally Hole) नामक स्थानमें लंगर डालकर रहते हैं तथा छोटे-छोटे जहाज और किश्तियाँ नदीसे सूरत आती-जाती हैं। परन्तु उस समय यह मुगल-भारतका सर्वप्रधान बन्दर था। व्यापारके महसूलकी आमदनी और धन-दौलतमें केवल दिल्लीको छोड़कर और कोई शहर इसके मुकाबलेका नहीं था। पुराने हिन्दुओंके जमानेमें इसके कुछ उत्तरमें नर्मदाके मुहानेके पास भरुकच्छ (वर्तमान भड़ौच, पुराना ग्रीक नाम बारगजा) श्रेष्ठ बन्दरके नामसे प्रसिद्ध था, परन्तु अब उसका जमाना बीत चुका था। इसके सिवा सूरतसे ही मक्का-मदीना जानेवाले हज-यात्रियोंको लेकर जहाज छूटते थे, इसीलिए इसका नाम था 'इसलामके पुण्य-तीर्थका द्वार'। भारतके मुसलमान अरब देशकी तीर्थयात्राके लिए यहींसे जाते थे।

सूरतके दो हिस्से थे; एक किला, दूसरा शहर। किला छोटा और सुरक्षित था, लेकिन शहर चार वर्गमीलमे फैला हुआ धन-जनसे पूर्ण था। जन-संख्या दो लाख थी। व्यापारकी चीजोंके महसूलसे राज कोषमें बारह लाख रुपये वार्षिककी आमदनी थी और यों आमदनीकी चीजोंका दाम करीब पाँच करोड़ होता था। उस समय शहरके चारों ओर खाईका अभाव था। केवल जगह-

जगहपर बाहरसे आनेवाले रास्तोंके नाकोंपर मामूली ढंगके फाटक लगे थे और कहीं-कहीं छोटी दीवारें भी थीं, पर ये सहज ही पार की जा सकती थीं।

सूरत शहरके समान धन-दौलत भारतके और किसी स्थानमें मिलना कठिन था। इस शहरके एक बहरजी बोहरेकी हैसियत अस्सी लाख रुपयेकी थी। उसके बाद हाजी सैयद, सईदबेग तथा अन्यान्य बनियोंकी तो बात ही नहीं थी। यह सब होते हुए भी शहरकी रक्षाका कुछ भी बन्दोबस्त नहीं था। शहरके फौजदार राजदरबारसे पाँच सौ सिपाहियोंकी तनख्वाह अवश्य पाते थे, लेकिन एक भी सिपाही नहीं रखते थे,—सारे रुपये अपने ऐश-आराममें खर्च कर देते थे। शहरवाले भी शान्ति-प्रिय, दुबले-पतले, डरपोक, अहिंसाका दम भरनेवाले जैन, पवित्रता-प्रेमी और अग्नि-उपासक पारसी, धनके लालची दूकानदार और बेचारे गुजराती कारीगर थे। भला, ये सब अपनी रक्षाके लिए क्या लड़ते? भारतके बड़े-बड़े महाजनोंने भी अपनी सम्पत्तिका हजारवाँ हिस्सा भी खर्च करके चौकीदार और सिपाही रखनेकी जरूरत नहीं समझी। सन् १६६४ ई० में बादशाहकी ओरसे इनायत खाँ सूरतका हाकिम था। वह जैसा ही द्रव्य-पिशाच था वैसा ही बुझदिल और बेकार भी। उधर किला एक ऐसे फौजी अफसरके हाथमें था जो इनायतकी अधीनतामें न था।

अँग्रेजी कोठीकी विलक्षण आत्म-रक्षा

मंगलवार (५वीं जनवरी) को सबेरे सूरतवासियोंने भयपूर्वक सुना कि दो दिन पहले शिवाजी फौजके साथ दक्षिणमें २८ मीलकी दूरीतक आ पहुँचे हैं और बड़ी तेजीके साथ सूरतकी ओर बढ़ रहे हैं। बस, शहरभरमें खलबली मच गई, डरके मारे लोग भागने लगे। जिनसे बन पड़ा, वे औरत-बच्चोंको ले नदी पारकर दूर-दूरके गाँवोंमें जा छिपे। धनी लोग किलेके अफसरको घूस देकर सपरिवार वहाँ जा पहुँचे और ऐसे व्यक्तियोंमें शहरका रक्षक इनायत खाँ सर्वप्रथम था।

परन्तु मुट्ठीभर युरोपियन दूकानदार इस समय गजबका साहस दिखाकर अपना धन, प्राण और मानकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए। सूरतके अँग्रेज और डच बनियोंने अपनी-अपनी कोठियोंमें हथियार ले शिवाजीकी फौजका

सामना किया और उसे भगा दिया। उनकी कोठियाँ साधारण खुले हुए मकानोंमें थीं,—वहाँ न कोई किला था और न चारों ओर चहारदीवारी ही। अँग्रेजी कोठीके मुख्य अफसर थे सर जार्ज आक्सिण्डेन। यदि वे चाहते तो मजेसे सुहाइली भाग कर जान बचा सकते थे, लेकिन वैसा न करके वे खुद सूरतमें रहे और लड़ाईमें मुखिया बने। जल्दीसे छोटी छोटी तोपें इकट्ठी की गईं और सुहाइलीसे जहाजी गोरे बुलाये गये। कुल मिलाकर एक सौ पचास अँग्रेज और साठ चपरासी सूरतकी कोठीकी रक्षाके लिए नियत किये गये, चार तोपें छतके ऊपर चढ़ा दी गईं, उनके गोले बगलके दोनों रास्तों और नजदीकके हाजी सईदबेगके मकानके ऊपर पड़ सकते थे। बाकी दो तोपें सदर दरवाजेके पीछे रख दी गईं। दरवाजेमें दो छेद इस प्रकार बनाये गये कि उनमें होकर तोपका मुँह बाहर निकल सके और सड़कसे कोठीमें आनेवालोंको सड़कपर आते ही उड़ाया जा सके। जल्दी कुछ दिनके लिए रसद-पानी लाकर रख लिया गया। अँग्रेजोंमेंसे कुछ तो शीशा ढालकर गोलियाँ बनाने लगे, कुछ कोठीकी दीवारोंकी मरम्मत करके उन्हें और भी मजबूत करने लगे। हर एक आदमीको उसकी जगह बता दी गई और उन लोगोंकी देख-भालके लिए बहुतसे कप्तान नियुक्त कर दिये गये। सब काम सिलसिलेवार, अच्छी तरहसे और पहलेहीसे विचार करके तय कर दिया गया। बुधवारको सबेरे आक्सिण्डेन अपने दो सौ नौकरोंको लेकर डुगडुगी और तुरही बजाते हुए शहरके बीचसे निकले, और खुल्लमखुल्ला कहने लगे—इतने ही आदमी लेकर हम शिवाजीको रोक देंगे। डच लोग भी अपनी कोठियोंकी रक्षाके लिए तैयार हो गये। यह सब बन्दोबस्त देखकर और भी कितने ही तुर्क और आरमेनियन बनियोंने अपनी-अपनी सम्पत्ति एक सरायमें ले जाकर उसे किला-सा बना लिया। केवल भारतीय ही सोते रहे।

शिवाजीका पहली बार सूरत लूटना

चुने हुए चार हजार घुड़सवारोंके साथ शिवाजी बम्बई होते हुए छिपते-छिपते शीघ्रतासे आगे बढ़कर सूरतके पास पहुंच गये। रास्तेमें दो कोल राजा लूटमें हिस्सेके लोभसे छ हजार फौज लेकर उनके साथ शामिल हो गये। बुधवार (छठी जनवरी १६६४ ई०) को दोपहरके समय शिवाजी सूरत शहरके

सामने आ पहुँचे और उन्होंने 'बुर्हानपुर दरवाजे' से सवा मीलकी दूरीपर एक बगीचेमें डेरा डाला। मराठे घुड़सवार इस बेपहरे-चौकीके अर्ध-जनहीन शहर में घुसकर घर-बार लूटने और उनमें आग लगाने लगे। एक दल शहरके बीचसे किलेकी दीवारपर ताक-ताककर बन्दूकें छोड़ने लगा। मारे डरके किलेके पहरेदारोंमेंसे किसीने भी सिर ऊँचा न किया और न शहरकी लूटमें ही कोई बाधा दी!

बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि,—चार दिनतक मराठोंने शहरको बेरोक-टोक लूटा। वे रोज नये-नये मुहल्लोंमें जा-जाकर घर जलाने लगे। उस समय सूरतमें पक्के मकान दस-बीससे अधिक न थे, बाकी हजारों मकान काठकी खूँटीके सहारे बाँसकी दीवारें खड़ी करके उसपर खपरैल डालकर बनाये गये थे। ऐसी जगहपर मराठोंके अग्निकाण्डने सहज ही रातमें भी दिनके समान उजेला कर दिया और धूएँने सूर्यको ढककर दिनको रातके समान अंधकारमय बना दिया था।

एक अँग्रेज पादरीका विवरण

डच कोठीके पास सूरत ही नहीं, सारे एशियाखण्डके सबसे बड़े धनी बहरजी बोहरेकी कोठीमें कोई पहरेदारतक न देखकर और उसको जनशून्य पाकर मराठोंने तीन दिन, तीन रात लगातार लूटा और उसके फर्शतकको खोद डाला। अन्तमें सब धन-रत्न और अट्ठाईस सेर मोतियोंका बोझा लेकर उस घरको फूँककर वे चलते बने। अँग्रेजी कोठीके पास एक और महाजन सईद-बेगके घरमें भी मराठे घुस गये और दरवाजे तथा सन्दूक तोड़कर जितना मिला उतना रुपया लेकर चम्पत हुए। उन्होंने गोदाममें घुसकर पारेका पीपा फोड़कर सब पारा जमीनपर छितरा दिया। बृहस्पतिके दिन दोपहरको जब पचीस मराठे सिपाही अँग्रेजी कोठीके पास एक मकानमें आग लगानेको तैयार थे; उस समय अँग्रेजोंने कोठीसे बाहर निकलकर उन लोगोंको मारकर भगा दिया। इसपर सईदबेगके मकानके मराठे भी मारे डरके खिसक गये। दूसरे दिन अँग्रेज लोगोंने अपने कुछ आदमी भेजकर इस महाजनके भी मकानकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार एक धनकी खान हाथसे निकल जानेसे शिवाजी बिगड़े और अंग्रेजी कोठीमें कहला भेजा—"या तो हमें तीन लाख रुपये दो, अथवा हाजी सईदके मकानको लूटने दो। नहीं तो हम खुद आकर तुम सबका गला काटेंगे और तुम्हारी कोठी धूलमें मिला देंगे।"

चालाक अँग्रेज नेताने जवाब देनेके लिए कुछ समय माँगकर शनिवारके सवेरे (चौथे दिन) तक तो टाला, और उसके बाद शिवाजीको कहला भेजा— "हम लोग दोनों शर्तोंमेंसे किसीपर भी राजी नहीं हैं। आप जो कर सकते हों, करें, हम लोग तैयार हैं, भागेंगे नहीं। जिस समय इच्छा हो, इस कोठीपर चढ़ाई कीजिए। हम लोगोंने इस कोठीकी रक्षा करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया है। यदि आपकी आनेकी ही इच्छा है, तो एक पहर जल्दी ही आइएगा।" परन्तु शिवाजीने और कुछ नहीं किया, क्योंकि उनको सूरतसे बिना विघ्न-बाधाके एक करोड़से अधिक रुपये मिल गये थे। उन्होंने सोचा कि दो-एक लाखके लिए दृढ़संकल्प अँग्रेजोंकी तोपोंके मुँहमें अपनी फौजको क्यों झोंकें!

सूरतमें मराठोंके अत्याचार और खूनखराबी

मराठोंको सूरतकी लूटसे बेशुमार दौलत मिली। उस समयके समान धन-रत्न आदि सूरतमें बहुत वर्षोंमें जमा न हुआ था। मराठोंने सोना, चाँदी, मोती, हीरा और जवाहरातके सिवा और कुछ नहीं लिया।

अपना छिपा धन बतानेके लिए लोगोंपर जोर-जुल्म करनेमें मराठोंने कोई कसर न रखी थी। उन्हें चाबुकसे मारा गया, जानसे मार डाले जानेका डर दिखाया गया, किसीका एक हाथ और किसीके दोनों हाथ काट डाले गये और कितने ही लोगोंके प्राणतक ले लिये गये। मिस्टर एण्टनी स्मिथ नामक एक अँग्रेज महाजनने अपनी आँखोंसे देखा था कि शिवाजीके खेमेमें एक दिन छब्बीस आदमियोंका सिर और तीस आदमियोंके हाथ काटकर फेंक दिये गये थे। कैदियोंमेंसे जो यथेष्ट रुपये नहीं दे सका, उसका कोई न कोई अंग भंग करनेकी अथवा उसे जानसे मार डालनेकी आज्ञा हुई। शिवाजीकी लूटकी पद्धति यह थी कि प्रत्येक घरवालेसे जितना हो सका ले लिया, और फिर उससे कहा कि यदि घर बचाना चाहो तो उसके लिए और कुछ दो; फिर जब उसने कुछ और भी दिया तब उसी दम प्रतिज्ञा भंग करके आग लगा दी गई! (सूरत-कोठीकी चिट्ठीसे)

एक बूढ़ा बनिया आगरेसे चालीस बैलोंपर लादकर कपड़े लाया करता था, परन्तु उनके न बिकनेसे वह शिवाजीको नकद रुपया न दे सका। इसलिए

उसने शिवाजीको अपना सब माल सुपुर्द करना चाहा; फिर भी उसका दाहिना हाथ काट डाला गया और उसके कपड़े जलाकर उसको भगा दिया गया। परन्तु एक यहूदी जौहरी बड़े मजेसे बचा। वह 'हमारे पास कुछ नहीं' कहकर रोने लगा, मगर मराठे भला कब छोड़नेवाले थे; उसको मार डालनेका हुक्म हुआ। तीन बार तलवार उसके सिरके चारों ओर घुमाई गई, गर्दनपर भी छुआई गई; मगर उसने बहाना किया, मानो वह मरनेकी बाट जोह रहा हो। अन्तमें कुछ आशा न देखकर शिवाजीने उसे छोड़ दिया। अँग्रेजी कोठीका कर्मचारी एण्टनो स्मिथ डच-घाटमें नाम-मात्रके लिए कैद कर लिया गया। वह तीन दिनतक शिवाजीके कैम्पमें बन्द रखा गया। अन्य कैदियोंके साथ उसका भी दाहिना हाथ काटनेका हुक्म हुआ, लेकिन उसने उर्दूमें चिल्लाकर शिवाजीसे कहा—"काटना हो तो हमारा सिर काटो, हाथ मत काटो।" मराठोंने उसके सिरकी टोपी उतारकर देखा, तो वह अँग्रेज निकला और उसकी सजाका हुक्म रद कर दिया गया। अन्तमें तीन सौ पचास रुपये देकर वह छूटा। स्मिथने शिवाजीके सम्बन्धमें अपनी आँखों देखी घटनाका वर्णन लिखा है।

शिवाजीकी हत्याका षड्यंत्र

किलेमें छिपे हुए डरपाक इनायत खाँने शिवाजीकी हत्या करनेका एक षड्यंत्र रचा। बृहस्पति वारको सन्धिके प्रस्तावके बहाने उसने एक मजबूत नौजवानको शिवाजीके पास भेजा। उसने जो देना चाहा, वह इतना कम था कि उसे स्वीकार करना असम्भव था। इसपर शिवाजीने घृणाके साथ कहा—"तुम्हारा मालिक औरतकी तरह घरके भीतर छिपा हुआ है। क्या वह समझता है कि हम भी औरत हैं जो उसकी इस मजाकिया सलाहको मान लेंगे?" नौजवानने जवाब दिया—"हम लोग भी औरत नहीं हैं। आपको और भी कुछ कहना है?" इतना कहते ही वह कपड़ेमें छिपाये हुए छुरेको निकालकर बड़े वेगसे शिवाजीके ऊपर टूट पड़ा, परन्तु एक मराठे शरीर-रक्षकने तलवारके एक ही वारसे उसका एक हाथ काट डाला, फिर भी नौजवान अपनी गतिको रोक न सका। उसी खूनसे भरे हुए ठूँठे हाथसे उसने शिवाजीपर चोट की और दोनों जमीनपर लोट गये। शिवाजीके शरीरमें खून देखकर मराठे चिल्ला उठे—"सब कैदियोंको जानसे मार

डालो।" तुरन्त ही खूनी नौजवानका सिर काट डाला गया। शिवाजी भी उठ खड़े हुए और कैदियोंको अपने सामने लानेका हुक्म दिया; उनमेंसे चारको मार डाला और छब्बीस आदमियोंके हाथ काट डाले, तब कहीं जाकर वे शान्त हुए।

अँग्रेजोंकी तारीफ और इनाम

रविवार १० जनवरीके सवेरे दस बजेके बाद मराठे अकस्मात् सूरतसे चल दिये और सन्ध्यासे पहले ही बारह मील कूच कर गये, क्योंकि शिवाजीको खबर मिली थी कि मुगल सिपाहियोंका एक दल सूरतकी ओर आ रहा है। यह दल १७वीं तारीखको पहुँचा, तब जाकर कहीं इनायत खाँको किलेसे बाहर निकलनेकी हिम्मत हुई। शहरकी प्रजा उसे देखकर थूकने लगी, कोई-कोई तो उसपर कीचड़तक फेंकने लगे। इसपर इनायतके लड़केने गुस्सेमें आकर एक निर्दोष हिन्दू बनियेको मार डाला।

मुगल सेनाके पहुँचनेके बाद अँग्रेज व्यापारियोंने उसके नेतासे मुलाकात की। शहरके लोगोंके मुँहसे उनकी तारीफ-ही-तारीफ सुननेमें आई, वे चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि इन साहबोंने अपनी कोठियोंके आसपासके हम लोगोंके बहुतसे मकानोंकी रक्षा की है। बादशाह इन लोगोंको इनाम दें। नये आये हुए सेनापतिने भी अँग्रेजोंको खूब बधाई दी। आक्सिण्डेन साहबके हाथमें एक पिस्तौल था; उन्होंने उसको तुरन्त ही सेनापतिके सामने रखकर कहा—हम लोग अब हथियार छोड़ते हैं, क्योंकि आगेसे आप ही शहरकी रखवाली कीजिएगा। सेनापति यह सुनकर खुश होकर बोले—"अच्छा, मैं इसको लिये लेता हूँ, लेकिन आपको एक खिलअत, घोड़ा और तलवार भेंट करूँगा।" चालाक वणिक गोरेने जवाब दिया—"जी नहीं। वह सब चीजें तो जंगी लोगोंके कामकी हैं। हम लोग तो बनियें हैं, रोजगारकी सुविधाके सिवा हम और कोई इनाम नहीं चाहते।"

सूरतकी दुर्दशाकी बात सुनकर बादशाह बड़े दुःखी हुए और उन्होंने एक वर्षके लिए सूरतवालोंको सब मालगुजारी माफ कर दी। साथ ही डच और अँग्रेज व्यापारियोंको इनामके तौरपर भारतमें आनेवाले उनके मालपरकी चुंगीमें भी एक प्रति सैकड़ेकी सुविधा दी गई। यह मेहरबानी नवम्बर सन् १६७९ ई० तक चलती रही।

पाँचवाँ अध्याय

जयसिंह और शिवाजी : संघर्ष तथा सन्धि

सन् १६६४ ई० की लड़ाई

सूरतकी लूटके बाद एक वर्षतक मुगलोंकी फौजसे कुछ न हो सका। दक्षिणका सूबेदार शाहजादा मुअज्जम (शाह आलम) औरंगाबादमें ही रहकर भोग-विलास और आनन्दमें अपने दिन काटने लगा। महाराजा जसवन्तसिंह राठौरने, जो शाहजादेके दाहिने हाथ थे, सिंहगढ़ किलेपर घेरा डाला, परन्तु अन्तमें असफल होकर २८ मई सन् १६६४ ई० को वे लौट आये। शिवाजीका दल अनेक स्थानोंमें लूट-खसोट करने लगा। यदि आज वह महाराष्ट्रमें दिखलाई दिया, तो कल कर्णाटकमें और परसों पश्चिमी समुद्र-तटके प्रदेशोंमें। लोग डर और आश्चर्यसे कहने लगे कि शिवाजी आदमी नहीं हैं, उनका शरीर हवाका बना है, तभी तो वे एक समयमें दूर-दूरके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें जा सकते हैं! अँग्रेजी वणिकोंकी कोठीकी एक चिट्ठीमें शिवाजीके लिए लिखा है—"वे सदा कठोर कष्ट सहन कर जल्दी-जल्दी कूच करते हैं और अपने कर्मचारियोंको भी उसी प्रकार चलाये जाते हैं। सारे देशके राजा उनके डरसे काँपते हैं। दिनपर दिन उनकी शक्ति बढ़ रही है।"

इसी समय २३ जनवरी सन् १६६४ ई० को घोड़से गिरकर शाहजीकी मृत्यु हो गई। उनकी जितनी अस्थावर सम्पत्ति और मैसूर तथा पूर्वीय कर्णाटककी जागीर थी, सबपर शिवाजीके सौतेले भाई व्यंकोजी (यानी एकोजी) कब्जा कर बैठे।

बार-बार ऐसे नुकसान उठाकर और लज्जाजनक हार खाकर औरंगजेबने इस बार बहुत सोच-विचारके बाद शिवाजीको दबानेके लिए मिर्जा राजा जयसिंह कछवाहा (आमेर अर्थात् मौजूदा जयपुर राज्यके मालिक) को ३० सितम्बर १६६४ ई० के दिन नियुक्त किया। उनके साथ नामी पठान वीर

दिलेर खाँ, अरब सेनानी दाऊद खाँ, सुजानसिंह बुन्देला तथा अन्य अनेक सेनापति और चौदह हजार फौज भेजी गई।

राजा जयसिंहका चरित्र

मिर्जा राजा जयसिंह मध्यकालीन भारतीय इतिहासकी एक अद्वितीय विभूति थे। 'राजपूत' शब्दसे हम साधारणतः कोई बड़े साहसी, मानी, धन और स्वार्थकी परवाह न करनेवाले हठी वीर तथा त्यागी पुरुषका अनुमान करते हैं। जयसिंह लड़ाईमें चतुर, निडर और तेजस्वी पुरुष थे, परन्तु उसके साथ ही साथ कूट-नीतिमें और रोब-दाबसे लोगोंको हाथमें करके काम निकालनेमें भी वे कुछ कम चालाक न थे। इसीसे इज्जतदार राजपूतों और मुगलों,—दोनों ही जातियोंके सब गुण उनमें पाये जाते थे। वे बारह वर्षकी उम्रमें ही पितृहीन होकर मुगलोंकी सेनामें (सन् १६२२ ई० में) भर्ती हो गये। उसके बाद जहाँगीरकी अन्तिम अमलदारी और शाहजहाँके सम्पूर्ण शासनका इतिहास इनकी कीर्तिसे उज्ज्वल है। इधर पश्चिममें अफगानिस्तानके कन्धारसे लेकर उधर पूरबकी ओर मुंगेर और उत्तरमें आक्सू नदीके किनारेसे दक्षिणमें बीजापुरतक सब स्थानोंमें मुगल फौजको संग लेकर वे लड़े थे और सभी जगह उन्होंने नाम कमाया था। वे राजनीतिक चालें चलनेमे भी कुछ कम चालाक न थे। सब विपत्ति-जनक और कठिनसे कठिन कामोंमें बादशाह जयसिंहके ऊपर भरोसा करते थे।

ये छप्पन वर्षके प्रवीण सेनापति जब दक्षिणके एक जागीरदारके लड़केको दबानेके लिए आये, तब उनकी चिन्ताओंका अन्त न था। क्या मुगल और क्या बीजापुरी सरदार,—कोई भी शिवाजीको अभीतक हरा न सका था। शायस्ता खाँ और जसवन्तसिंहतक हार गये थे। उत्तरभारतसे प्रबल सैन्य-दल आनेपर बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतान भी मुगलोंके डरसे शिवाजीका साथ दे सकते थे, इसलिए जयसिंहको उस तरफ भी दृष्टि रखनी पड़ती थी। उन्होंने बादशाहको यह सच ही लिखा था—"हम रात-दिनके बीच एक पल भी विश्राम नहीं लेते। जिस कामको हमने अपने हाथमें लिया है, उसके विषयमें विचार किये बिना हम नहीं रहते।"

लड़ाईके लिए जयसिंहका बन्दोबस्त और चाल

विपत्ति ही मनुष्यत्वकी कसौटी है। जयसिंहने बड़ी चालाकी और फुर्तीसे भावी लड़ाईका सब बन्दोबस्त किया। पहले तो वे जितने बन पड़े उतने लोगोंको अपनी ओर खींचने और शिवाजीके वैरियोंको उभाड़नेमें लगे। पूना पहुँचनेके पहले ही जनवरी महीनेमें उन्होंने मुगल-राज्यमें रहनेवाले दो पुर्तगाली कप्तानों, फ्रान्सिस्को और डिओगो डिमेलोको गोआमें पुर्तगालके राज-प्रतिनिधिके पास भेजकर शिवाजीकी जलसेनाके ऊपर चढ़ाई करनेमें मदद माँगी।

जंजीराके हबशी सरदार सिद्दिको भी उसी मजमूनकी चिट्ठी भेजी गई। बिजनौर, वासवपटन, मैसूर इत्यादि स्थानोंके राजाओंके पास जयसिंहके ब्राह्मण दूतोंने जाकर अनुरोध किया कि वे इस मौकेपर अपने पुराने दुश्मन बीजापुर-राज्यकी दक्षिणी सीमापर चढ़ाई करें। कोंकणके उत्तरमें कोली देशके छोटे-छोटे रजवाड़ोंको मुगलोंकी ओर करनेके लिए जयसिंहके तोपखानेका फिरंगी अफसर निकोलो मनुची भेजा गया।

जिन-जिनके साथ शिवाजीकी कभीकी भी दुश्मनी थी, उन सबको जयसिंहने बुला-बुलाकर अपनी फौजमें नौकरी दी। मृत अफजल खाँके लड़के फजल खाँ और चन्द्रराव मोरेके लड़के बाजी चन्द्ररावने भी पितृ-हत्याका बदला लेनेका यह मौका न छोड़ा। साथ ही नकद रुपये और मुगल-राज्यमें ऊँची नौकरीका लालच दिखाकर शिवाजीके किसी-किसी कर्मचारीको बहकानेका काम भी शुरू किया गया। फिर बीजापुरके सुल्तानको लोभ और डर दिखाया गया। उन्हें इस बातका भरोसा दिया गया कि अगर वे सचमुच मुगलोंकी मदद करेंगे तो बादशाह उनपर छिपे रूपसे शिवाजीको मदद देनेका सन्देह नहीं करेंगे और सालाना पेशकशमेंसे भी कुछ रुपये माफ किये जा सकेंगे।

जयसिंहकी बुद्धिमानीका सबसे बढ़कर उदाहरण तो उनके लड़ाईके तरीकेमें मिलता है जो उन्होंने बादशाहकी मरजीके विरुद्ध ग्रहण किया था। वे जब पूना पहुँचे तब मार्चका महीना आरम्भ हो गया था। जुलाईमें बरसात शुरू हो जानेसे लड़ाई लड़ना असम्भव था और शिवाजीको हराना भी आवश्यक था। इस कामको इन्हीं तीन महीनोंके भीतर ही खतम करनेकी आवश्यकता थी,

नहीं तो आगे आठ महीने और बैठे रहना पड़ेगा। इसीसे जयसिंहने निश्चय किया कि सब फौज इकट्ठी कर वे धड़ल्लेसे मराठोंके राज्य-केन्द्रपर बड़े जोरका धावा मारेंगे और किसी दूसरी जगह नहीं जायँगे जिससे फौज चारों तरफ बिखर कर बलहीन हो जाए। बादशाह उन्हें धनपूर्ण और उपजाऊ कोंकण-प्रदेशपर चढ़ाई करनेका बार-बार आदेश देते लेकिन जयसिंह दृढ़तापूर्वक उस बातको न मानकर यही कहते रहे कि पूना प्रदेश ही महाराष्ट्रका कलेजा है, उसको हाथमें कर लेनेसे कोंकण इत्यादि दूरके सब भाग आपसे आप अधिकारमें आ जायँगे।

अन्तमें जयसिंहने कहा कि लड़ाईमें दो-तीन नेताओंके हाथमें अधिकार बाँटे बिना और सबसे बड़े एक सेनापतिके ही अधीन सबको रखे बिना लड़ाई जीतना बिलकुल मुश्किल होगा। बादशाहने इस भली सलाहको मान लिया और उन्होंने हुक्म दे दिया कि फौजी कामका सब भार,—कामका बनाना-बिगाड़ना, उन्नति-अवनति, रसद और तोप, मेल करना, घूँस देना, आदि कामोंमे,—केवल एक जयसिंहपर ही रहेगा; औरंगाबादके सूबेदार शाहजादा मुअज्जमसे किसी बातकी मंजूरी या पूछताछ करनेकी कोई जरूरत नहीं होगी।

पुरन्दरके किलेका घेरा

जयसिंह दिल्लीसे बिदा हो फौजके साथ तेजीसे कूचकर रास्तेमें एक दिन भी कहीं आराम किये बिना ३ मार्च सन् १६६५ ई० को पूना पहुँचे। उन्होंने पहले पुरन्दरपर चढ़ाई करना निश्चित किया।

पुरन्दरका किला पूना शहरसे चौबीस मील दक्षिणमें है। उसको किला न कहकर एक महान् सुरक्षित पहाड़का ढेर कहना ही ठीक होगा। पुरन्दरकी चोटी समतल भूमिसे दो हजार पाँच सौ फुट ऊँची है। चारों तरफ खड़े कटे हुए पत्थरोंसे घिरा हुआ यह किला है। इसके तीन सौ फुट नीचे पहाड़से लगा हुआ नीचेका किला है जिसे मराठीमें 'माची' कहते हैं। इसी माचीमें फौजके रहनेके मकान और कारखाना हैं। कारण यह है कि यहाँ जमीन खूब फैली हुई है। पूरबकी ओर माचीके कोनेसे एक मील लम्बा एक पहाड़ है, उसके सिरेपर दीवालसे घिरा हुआ रुद्रमाल अथवा वज्रगढ़ नामका एक दूसरा किला

है। इस वज्रगढ़से माचीके ऊपर गोला बरसाकर सहजमें ही वहाँसे शत्रुओंको भगा दिया जा सकता है।

पूनामें रहकर जयसिंहने बहुत-से जरूरी स्थानोंमें थोड़ी-थोड़ी फौजकी चौकियाँ बिठा दीं और स्वयं भी बाट-घाटकी रक्षा करने लगे। उसके बाद २३वीं मार्चको रवाना होकर वे ३० मार्चको पुरन्दरके सामने जा पहुँचे। दूसरे दिनसे किला घेरनेका काम कायदेके साथ शुरू हुआ। बादशाही सेनाके भिन्न-भिन्न सेनापतियोंने अपने दल-बल सहित पुरन्दरके प्रत्येक ओर अड्डा डालकर मोर्चे बनाये और किलेके ऊपर तोप दागनेकी चेष्टा की। दस दिनतक फौजकी लगातार कोशिश और जयसिंहकी कड़ी देख-रेख तथा उत्साह-प्रदानसे तीन बड़ी-बड़ी तोपें एक ऊँचे पहाड़के ऊपर चढ़ा दी गईं। अब रुद्रमालके बुर्जपर भयंकर गोलाबारी शुरू हो गई। नतीजा यह हुआ कि बुर्जके सामनेकी दीवार टूट गई और घुसने लायक मार्ग दिखाई देने लगा।

रुद्रमालका बुर्ज जीत लिया गया

१३ अप्रैलको दो पहरके समय दिलेर खाँने अकस्मात् आक्रमण करके रुद्र-मालके बुर्जपर कब्जा कर लिया। मराठोंने हटकर बीचमें दीवारोंसे घिरी हुई एक जगहमें शरण ली, परन्तु दूसरे दिन सन्ध्याके समय मुगलों और राजपूतोंकी बन्दूकोंकी मारके आगे मराठे न टिक सके, इसलिए उन्होंने रुद्रमाल छोड़ दिया। जयसिंहने उनको प्राण-दान दिया और उनके नेताओंको सम्मान-सूचक पोशाकें देकर अपने-अपने घर लौट जानेकी अनुमति भी दे दी।

उसके बाद २५ अप्रैलको दाऊद खाँके अधीन छः हजार फौज महाराष्ट्रके चारों ओरके गाँवोंको लूटनेके लिए भेजी गई। साथ ही कुतुबुद्दीन खाँ और लोदी खाँको भी अपने-अपने थानोंसे निकलकर नजदीकके गाँवोंको लूटने और गाय-बछड़े तथा किसानोंको कैद करनेका हुक्म दिया गया कि उसके फलस्वरूप शिवाजीकी प्रजाका नाश और उनके देशका स्थायी अनिष्ट हो।

अपने सामने चारों ओरसे इस तरहका संकट देखकर मराठोंने पुरन्दरके घेरेवालोंके भगा देनेकी बहुत कोशिश की। उन्होंने मुगलप्रदेशके अनेक स्थानों-

पर छापे मारे, किन्तु जयसिंह पुरन्दरसे टससे मस नहीं हुए। मराठोंने दूर-दूरके जिन स्थानोंपर चढ़ाई की थी, उनकी रक्षाके लिए जयसिंहने केवल थोड़े-थोड़े घुड़सवार भेज दिये। निःसन्देह मुगलोंका बहुत नुकसान हुआ, लेकिन उससे उनके असली काम—पुरन्दरके घेरे—में कोई बाधा न पड़ी। वहाँ रसद बराबर पहुँचती रही और वहाँके खेमे और फौजें सुरक्षित रहीं।

वज्रगढ़ जीतनेके बाद ही दिलेर खाँ वहाँसे लम्बे पहाड़को लाँघकर, पश्चिमकी ओर आकर पुरन्दरके उत्तर-पूर्वके कोनेके ऊँचे बुर्ज 'खड़कला'के पास पहुँच नीचेके किले (माची) पर गोलाबारी करने लगा। मराठोंने दो बार रातको बाहर निकलकर दिलेरके इस मोर्चेपर आक्रमण किया, लेकिन उन्हें हारकर लौटना पड़ा।

धीरे-धीरे मुगलोंका मोर्चा पुरन्दरके दोनों 'सफेद बुर्जों' के नीचे आ पहुँचा, लेकिन तब भी दीवार ज्योंकी त्यों खड़ी थी। उसके ऊपरसे मराठोंने जलता हुआ अलकतरा, बारूद, बमके गोले और पत्थर फेंककर घेरा डालनेवालोंको और आगे नहीं बढ़ने दिया। तब जयसिंहने एक ऊँचा काठका रथ 'कठघरा' बनवाकर सफेद बुर्जके सामने खड़ा करवाया। उनकी मंशा यह थी कि उसके ऊपरसे तोपें और बन्दूकें दागकर दीवारके रक्षकोंको मार भगाया जाय। साथ ही शत्रुओंकी गोलियाँ रोकनेके लिए कठघरेके सामनेका भाग ढालका काम दे।

परन्तु इस कठघरेके तैयार होनेके पहले ही, जब कि सन्ध्या होनेमें केवल दो घण्टे बाकी थे, दिलेर खाँको खबर दिये बिना ही रोहिला फौजने 'सफेद बुर्ज' पर आक्रमण कर दिया। शत्रु उसे मारने लगे, परन्तु शीघ्र ही मुगलोंकी ओरसे और बहुत-से लोगोंके आ जानेसे बड़ी गहरी लड़ाईके बाद मुगलोंकी जीत हुई। उन्होंने सफेद बुर्जपर कब्जा कर लिया। मराठे 'काले बुर्जपर'से पीछे हटकर बम, पत्थर इत्यादि बरसाने लगे, लेकिन मुगल डटे रहे। उसके दो दिन बाद मुगलोंकी तोपोंकी मार सहन न कर सकनेके कारण मराठोंने काला बुर्ज भी छोड़ दिया। इस प्रकार क्रमसे पाँच बुर्ज और नीचेके किलेका एक कठघरा बादशाही फौजके हाथ लगे।

६२
पुरन्दरके मराठोंकी हानि और उनकी बिपदा

अब तो पुरन्दरको बचाना असम्भव था। इसके पहले ही एक दिन मराठा किलेपर मुरार बाजीप्रभु अपने मावले पैदल सिपाहियोंको लेकर दिलेर खाँके पठानोंके ऊपर जी-जानसे टूट पड़े थे। दोनों ओरके बहुत-से सिपाही हताहत हुए, मुरार बाजीप्रभुकी तलवारके सामने कोई भी खड़ा न रह सका, अन्तमें साठ आदमी लेकर उन्होंने दिलेर खाँपर हमला कर दिया। दिलेर उनकी वीरतापर मुग्ध होकर कहने लगा—"सिपाहियो, कोई इसे मारना मत; और मुरार, तुम हथियार रख दो, तुमको ऊँचा पद दिया जायगा।" परन्तु मुरार नहीं थमे तब दिलेरने उनके ऊपर बाण चलाया। मुरारके साथ तीन सौ मावले मारे गये; पठानोंकी ओरके पाँच सौ आदमी काम आये, लेकिन तब भी मराठोंका साहस बना ही रहा, वे कहने लगे—"एक मुरार बाजीप्रभु मर गये तो क्या हुआ? हम लोग भी उनकी बराबरीके हैं; देहमें दम रहनेतक लड़ाई जारी रखेंगे।"

लेकिन जयसिंहके लगातार उद्योग और दो महीनोंकी निरन्तर लड़ाईके कारण पुरन्दरके रक्षकोंका बल क्षीण हो गया। जब रुद्रमाल, पाँच बुर्ज और एक कठघरा हाथसे निकल गये, तब समूचा किला हाथसे निकल जानेका दिन नजदीक आ गया। शिवाजीने देखा कि अब सन्धि न करनेसे मुगल जबरदस्ती पुरन्दर छीन लेंगे और वहाँ आश्रय लेनेवाली तमाम मराठा-स्त्रियोंका धर्म नाश करेंगे। इधर बाहर दाऊद खाँ भी रोज उनके गाँव ध्वस कर रहा था।

जयसिंहके पूना पहुँचनेके पहलेसे ही शिवाजी उनके पास बराबर अपना ब्राह्मण दूत और चिट्ठियाँ भेजते रहे, लेकिन जयसिंहने उनका कोई जवाब नहीं दिया; क्योंकि वे जानते थे कि जबतक शिवाजीको बाहुबलसे न हरा दिया जाय, तबतक वे सचमुच काबूमें नहीं आयेंगे। फिर २० मईको शिवाजीके पण्डित-राव (अर्थात् दानाध्यक्ष) रघुनाथ बल्लालने आकर एकान्तमें जयसिंहसे पूछा—"आप क्या मिलनेपर सन्धि करनेको तैयार हैं?" मुगल प्रतिनिधिने जवाब दिया—"शिवाजी खुद आकर बिना किसी शर्तके आत्मसमर्पण करें, तो उनके ऊपर बादशाहकी कृपा दिखाई जायगी।"

शिवाजी और जयसिंहकी भेंट

यह बात सुनकर शिवाजीने पुछवा भेजा कि "क्या मेरे पुत्र शम्भूजीके वश्यता स्वीकार करनेसे काम नहीं चलेगा ?" जयसिंहने उत्तर दिया—"नहीं, शिवाजीको खुद आना होगा।" अन्तमें शिवाजीने यह चाहा कि जयसिंह धर्मकी शपथ खाकर इस बातका वादा करें कि भेंटके लिए आनेके बाद मेल हो या न हो, परन्तु उन्हें सही-सलामत तो लौट जाने दिया जायगा। जयसिंहने वैसा ही किया और कहला भेजा कि "शिवाजी खूब छिपकर आवें, क्योंकि बादशाहने गुस्सेसे यह हुक्म दिया है कि उनके साथ मेलकी बातचीत बिलकुल ही न करके कठोरतासे लड़ाई जारी रखी जाय।"

यह बन्दोबस्त करके ८ जूनको रघुनाथ पण्डित अपने मालिकके पास लौटे। ११ तारीखको पहर-भर दिन चढ़नेपर जब जयसिंह अपने शिविरमें कचहरी कर रहे थे, उसी समय रघुनाथने आकर खबर दी कि शिवाजी केवल छः ब्राह्मणोंको साथ लिये, पालकीमें सवार बहुत नजदीक आ पहुँचे है। जयसिंहने तुरन्त अपने मुन्शी उदयराज और नातेदार उग्रसेन कछवाहेको शिवाजीके पास भेजकर खबर दी—"अगर आप अपने सब किलोंको देनेमें राजी हों तो आइए, नहीं तो यहींसे लौट जाइए।" शिवाजी—"अच्छा, अच्छा" कहकर उनके संग आये। शिविरके दरवाजेपर पहुँचकर बख्शीने उनका स्वागत किया और भीतर ले गये। जयसिंहने स्वयं भी आगे बढ़कर शिवाजीको गले लगा लिया और उनका हाथ पकड़कर गद्दीके ऊपर बिठाया। जयसिंहके राजपूत रक्षक तलवार और भाला हाथमें लेकर चारों ओर होशियारीके साथ खड़े हो गये। उन्हें शंका थी कि कौन जाने कहीं फिर अफजल खाँका-सा मामला न हो !

चालाक जयसिंहने शिवाजीपर रोब गाँठनेके लिए एक खेलका बन्दोबस्त ठीक कर रखा था। पहले रोज उन्होंने दिलेर खाँ और कीरतसिंहको हुक्म दे दिया था कि इशारा पाते ही वे दोनों मोर्चेसे निकल आगे बढ़कर पुरन्दरके 'खड़काला' नामक हिस्सेपर कब्जा कर लेंगे। शिवाजीके पहुँचते ही जयसिंहने इशारा कर दिया। देखते ही देखते मुगल लोग भिड़ गये और उस जगहपर कब्जा कर लिया। इस युद्धमें अस्सी मराठे मरे और कितने ही जखमी हुए। यह लड़ाई जयसिंहके तम्बूके भीतरसे साफ दिखाई देती थी। शिवाजीने

पूछा कि माजरा क्या है ? सब हाल मालूम होनेपर बोले—"नाहक ही हमारे आदमियोंकी और अधिक हत्या न कीजिए। लड़ाई बन्द कीजिए। हम अभी पुरन्दर छोड़ देते हैं।" तब जयसिंहने अपने मीर तुजुक गाजी बेगको भेजकर दिलेरखाँ को लड़ाई बन्द करनेका हुक्म दिया। साथ ही साथ शिवाजीने भी अपने कर्मचारीको भेजकर किलेके मराठा हाकिमको पुरन्दर दे देनेको कह दिया। किलेके निवासियोंने अपनी चीज-बस्त उठानेके लिए एक दिनकी मुहलत माँगी।

पुरन्दरकी सन्धिकी शर्तें

शिवाजी कुछ असबाब, बिछौना आदि न लेकर एकदम खाली हाथ आये थे, इसलिए जयसिंहने उनको मेहमान मानकर अपने दरबारके तम्बूमें ही रखा। आधी राततक दोनों पक्षके बीच सन्धिकी शर्तोंके बारेमें चर्चा होती रही। पहले तो जयसिंह कुछ भी छोड़नेके लिए राजी नहीं थे, परन्तु आखिरमें बहुत वाद-विवादके बाद निश्चय हुआ कि शिवाजीके तेईस किले और उनके आस-पासकी सब जमीन (जिसकी सालाना आमदनी चार लाख होण अर्थात् बीस लाख रुपये थी) बादशाहको मिलेगी और बारह किले (और उनके पासकी एक लाख होणकी आमदनीकी जमीन) शिवाजीके रहेंगे, लेकिन शिवाजी बादशाहकी प्रजा कहलायँगे और उनके अधीन होकर काम करेंगे।

हाँ, एक बातमें शिवाजीको अपमानसे बचाया गया। उनको खुद मन-सबदार बन फौज लेकर बादशाहके अथवा दक्षिणके राजप्रतिनिधिके दरबारमें हाजिर न होना पड़ेगा। शिवाजीके बजाय उनके लड़के पाँचहजारी जागीरके उपयुक्त (कमसे कम दो हजार) फौज लेकर हाजिर रहेंगे। बादशाहने उदय-पुरके महाराणापर भी यही अनुग्रह दिखाया था। जयसिंहको मालूम था कि अधिक कड़ाई करनेसे शिवाजी हताश हो बीजापुरके साथ जा मिलेंगे।

पुरन्दरकी सन्धिमें इनके सिवाय एक गुप्त शर्त भी थी। कोंकण अर्थात् पश्चिमी घाट और समुद्रके बीचका बहुत लम्बा पतला लेकिन धनजनपूर्ण प्रदेश बीजापुरके अधीन था। शीघ्र ही बादशाह बीजापुर राज्यके ऊपर धावा करने-वाले थे, अतः यह गुप्त रूपसे तय हुआ कि उस समय शिवाजी बीजापुरके हाथसे चार लाख होणकी आमदनीकी यह तल-भूमि (तल-कोंकण या बीजापुरी

पट्टन-घाट) और पाँच लाख होण आमदनीकी अधित्यका (अर्थात् बीजापुरी बालाघाट) अपनी फौजके द्वारा छीन लेंगे और उसपर बादशाह उनका अधिकार मान लेंगे; लेकिन उसके लिए शिवाजी बादशाहको चालीस लाख होण (अर्थात् दो करोड़ रुपये) तेरह किश्तोंमें नजरानेके रूपमें देंगे। इस प्रकार जयसिंहकी कूट-नीतिका फल यह हुआ कि शिवाजी और आदिलशाहके बीच सदाके लिए झगड़ेका बीजारोपण हो गया।

मुगल-राजका अनुग्रह स्वीकार करना

उधर तो दिलेर खाँ जी-जानसे मेहनत करके और खून बहाकर पुरन्दरके बहुत-से हिस्सोंपर कब्जा कर रहा था; परन्तु इधर शिवाजीने चुपचाप जाकर किला जयसिंहके सुपुर्द कर दिया और इस प्रकार दिलेरको वाहवाही न लेने दी। दिलेरने इससे बिगड़कर जयसिंहसे कहला भेजा कि "सन्धि करनेपर राजी न होइएगा, आखिरतक मराठोंका ध्वंस कीजिए।" इसपर जयसिंहने दूसरे दिन (१२ जूनको) शिवाजीको हाथीपर चढ़ाकर, अपने कर्मचारी राजा रायसिंह सीसोदियाके साथ दिलेर खाँके पास भेज दिया। इस नम्रतासे दिलेर खाँ बहुत खुश हुआ। वह शिवाजीको अनेक भेंट दे, अपने साथ जयसिंहके तम्बूमें लौटा लाया और वहाँ उसने शिवाजीका हाथ पकड़कर राजपूत राजाके हाथमें सौंप दिया। मुगल फौजने शिवाजीको हाथीके ऊपर देखकर समझ लिया कि सचमुच उन लोगोंकी पूरी जीत हुई है।

उसके बाद जयसिंहने खिलअत पहनाकर खुद उनकी कमरमें तलवार बाँध दी, क्योंकि शिवाजी सन्धिके लिए बिना हथियारके आते थे। उन्होंने भी भलमनसाहतके विचारसे कुछ देरतक तलवार लटकाए रखी, बादमें उसे खोलकर जयसिंहके सामने रख दी और कहा—"हम बादशाहके अनुगृहीत हैं, लेकिन उनका काम हथियारके बिना ही अनुचर रहकर करेंगे।"

इसी दिन मराठोंने पुरन्दरका किला छोड़ दिया। उनकी चार हजार फौज, तीन हजार औरतें, बच्चे और नौकर किला छोड़कर बाहर निकल गये।

वहाँके सब हथियार, गोला-बारूद और जायदाद बादशाहने जब्त कर ली; अन्यान्य किले सुपुर्द करनेके लिए शिवाजीने मुगल कर्मचारियोंके साथ अपने नौकर भेज दिये। १४ जूनको जयसिंहके पाससे एक हाथी और घोड़ा भेंटमें

लेकर शिवाजी विदा हुए। १८ तारीखको उनके लड़के शम्भूजी रायगढ़से आकर जयसिंहके शिविरमें पहुँचे। इस प्रकार जयसिंहने आश्चर्यजनक विजय पाई।

बीजापुरकी चढ़ाईमें शिवाजीकी सहायता और कीर्ति

पुरन्दरकी सन्धिकी शर्तोंको सुनकर और यह जानकर कि शिवाजीने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण रूपसे पालन की है, बादशाह बहुत खुश हुए। उन्होंने शिवाजीकी सब प्रार्थनाएँ मंजूर कीं और अपनी, पंजेकी छाप लगा हुआ, एक फर्मान (यानी सिन्दूरमें डूबी हुई अँगुलियोंकी छापवाला शाही पत्र) और एक जोड़ा खिल-अत शिवाजीके लिए भेजी। ये सब चीजें ३० सितम्बरको जयसिंहके शिविरमें पहुँचीं। जयसिंहके बुलानेपर शिवाजीने कुछ दूर पैदल चलकर बादशाही फर्मानकी रास्तेमें अभ्यर्थना की और शाही चिट्ठीको सिरसे लगाया; उस जमानेमें यही दस्तूर था। सन्धिके बाद इन साढ़े तीन महीनोंमें शिवाजीने कोई भी हथियार धारण नहीं किया था, क्योंकि वे बादशाहके विरुद्ध बगावत करनेके अपराधी हुए थे। जबतक बादशाहसे माफी न मिले, तबतक उनको जेलखाने-के कैदोकी तरह बिना हथियारके रहना होगा। अब फर्मान पाते ही जयसिंहने उनको जबरदस्ती अपनी एक मणिजड़ित तलवार और छुरा पहना दिया, मानो शिवाजीके विद्रोहका प्रायश्चित्त पूरा हो गया।

इसके बाद जयसिंह अपनी विजयी सेना लेकर बीजापुर राज्यपर आक्रमण करनेवाले थे। यह तै हुआ था कि शिवाजी अपने लड़केके मनसबके दो हजार घुड़सवार और उसके अतिरिक्त और सात हजार मावले पैदल सिपाही लेकर खुद जयसिंहकी सहायता करेंगे। उसके लिए उनको दो लाख रुपये पेशगी भी दिये गये थे। अन्तमें २० नवम्बर सन् १६६५ को जयसिंह बीजापुरकी चढ़ाईके लिए रवाना हुए। शिवाजी और उनके सेनापति नेताजी पालकरके अधीन नौ हजार मराठी फौजने मुगल सेनाके मध्य-विभागमे बाईं ओर जगह पाई।

जाते-जाते शिवाजीके सिर्फ कहनेसे ही बीजापुरके अधीन कितने ही किले—फल्टन, थाथवड़ा, खाटाव और मंगलवेढे – जयसिंहको बिना लड़ाईके ही मिल गये। इस मंगलवेढ़ेसे बीजापुर शहर बावन मील दक्षिणकी ओर है। मुगलसेनाके आधी दूर पहुँचते-पहुँचते बीजापुरी फौज मुगलोंका रास्ता रोकनेके लिए तैयार मिली। कई बार घोर संग्राम हुआ। शिवाजी और नेताजी जी-जानसे मुगलोंकी

ओरसे लड़े। उधर शत्रु-पक्षमें शिवाजीके सौतेले भाई व्यंकोजीने बहादुही दिखाई। एक दिन शिवाजी और जयसिंहके लड़के कीरतसिंह एक हाथीके ऊपर सवार हो मुगलोंकी सबसे आगेकी फौज लेकर बीजापुरी दलको भेद उस ओरतक चले गये थे। उधर एक दिन नेताजीने भी अदम्य साहसके साथ मुगल फौजके लौटते समय उसके पिछले हिस्सेको शत्रुके आक्रमणसे बचाया था।

इस प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते २९ दिसम्बरको जयसिंह बीजापुरके किलेसे दस मील उत्तरकी ओर जा पहुँचे, लेकिन यहाँ उनका बढ़ना रुक गया और सात दिनके बाद उनको मजबूर होकर लौटना पड़ा। बात यह थी कि बीजापुरी दरबारके झगड़ेके समय जयसिंहने वहाँके बहुत-से उमरावोंको घूस देकर मिला लिया था, इसलिए वे समझते थे कि राजधानीपर एकाएक चढ़ाई कर देनेसे नौजवान शराबी सुलतानके किये-धरे कुछ न हो सकेगा और बिना घेरा डाले ही बीजापुरपर दखल हो जायगा। इसी भरोसे वे बड़ी बड़ी तोपें और किले जीतनेके अन्यान्य साज-सामान साथ नहीं लाये थे, लेकिन बीजापुरके पास पहुँचकर उन्होंने सुना कि आदिलशाहके बहादुर सेनापतिने किला बचानेके लिए सब बन्दोबस्त ठीक कर रखा है। उन्होंने बीजापुरके चारों ओर सात मील-तकके पेड़ काटकर, पानीके सब तालाब सुखाकर, गाँवोंके खेत उजाड़कर मुगलोंके आगे बढ़नेका रास्ता पूरी तरह रोक दिया था। साथ ही बीजापुरी फौजका एक दल उनके पीछे जाकर बादशाही इलाकेमें लूट-पाट कर रहा था। फलतः जयसिंह हताश होकर ५ जनवरी सन् १६६६ ई० को पीछे मुड़े और धीरे धीरे अपनी सर-हदपर परेण्डा किलेके पास लौट आये। बीजापुरकी चढ़ाई बिलकुल बेकार हुई।

शिवाजीपर मुसलमान फौजका गुस्सा

इस आशाके भंग होनेसे मुगल फौजमें भारी खलबली मची। इस हार और हानिके लिए सभी जयसिंहको दोष देने लगे। दिलेर खाँ पहलेसे ही जयसिंहको नहीं मानता था, अब वह कहने लगा—"शिवाजीके विश्वासघातसे बीजापुर जीता न जा सका। शिवाजीको मार डालना चाहिए। शिवाजो विश्वास दिलाकर कहते थे कि जल्दी कूचकर आगे बढ़नेसे दस दिनके भीतर ही यह किला मुगलोंके हाथ आ जायगा, वह क्यों नहीं हुआ?" इसके पहले भी पुरन्दरकी सन्धिके बाद दिलेर खाँने बहुत बार जयसिंहको सलाह दी थी—

"इस मौकेपर शिवाजीको खतम कर डालिए। कमसे कम हमको यह काम करनेकी इजाजत दे दीजिए। हम इस पापका सब भार अपने ऊपर लेंगे, आपको कोई भी दोष न देगा।"

जयसिंहने देखा कि उन्मत्त मुसलमान सेनापतियोंके हाथसे शिवाजीकी प्राणरक्षा करना कठिन है। इसलिए उन्होंने ११ जनवरीको रास्तेसेही शिवाजीको अपनी फौजके साथ बीजापुर राज्यके दक्षिण-पश्चिमकी ओरके प्रदेशपर आक्रमण करनेके लिए भेज दिया। उन्होंने प्रकट किया कि अब इस तरह शत्रुकी फौजका बँटवारा हो जायगा और मुगलोंके ऊपर उनकी चढ़ाईका सब भार न पड़ेगा। जयसिंहसे बिदा लेकर रवाना होनेके पाँच दिन बाद ही शिवाजी पनहाला किलेके पास जा पहुँचे। एक पहर रात रहते ही उन्होंने अकस्मात् किलेके ऊपर धावा कर दिया, लेकिन किलेके सिपाही पहलेसे ही तैयार बैठे थे, उन लोगोंने बड़ी बहादुरीके साथ शिवाजीका सामना किया। शिवाजीके एक हजार मराठे सैनिक मारे गये। उसके बाद सूर्योदय हुआ; पहाड़से होकर जो मराठे किलेपर चढ़ रहे थे, वे स्पष्ट दिखाई देने लगे और उनके ऊपर बन्दूककी गोलियाँ और पत्थर आ-आकर गिरने लगे (१६ जनवरी)। तब शिवाजी हार मानकर चौदह कोस दूर अपने खेलनाके किलेमें लौट गये। इस प्रान्तमें शिवाजीके आदमियोंको लूट-पाट करनेसे रोकनेके लिए छः हजार बीजापुरी फौज और दो बड़े सेनापति मुकर्रर थे।

मराठा फौजमें शिवाजीके बाद नेताजी पालकर ही सबसे प्रधान सरदार थे। लोग उनको 'दूसरा शिवाजी' कहते थे। उनकी पदवी 'सेनापति' की थी, और उन्होंने शिवाजीके ही वंशकी एक कन्यासे विवाह किया था। बीजापुरसे चार लाख होंण बख्शिश मिलनेपर वे इस समय एकाएक मुगलोंके गाँवों और शहरोंको लूटने लगे। जयसिंह अब क्या करें? उन्होंने पाँच हजारकी मनसबदारी, बड़ी भारी जागीर और नकद अड़तीस हजार रुपये देकर नेताजीको फिर अपने पक्षमें (२० मार्च १६६६ को) कर लिया। चारों ओरसे विकट आपत्ति आती देखकर जयसिंहने बादशाहको लिखा कि वे इस समय शिवाजीको भेंट करनेके लिए मुगल राजधानीमें बुला लें, इससे मैं दक्षिणमें बहुत कुछ निश्चिन्त रह सकूँगा। बादशाह इस बातपर राजी हो गया।

छठा अध्याय

औरंगजेबके साथ शिवाजीकी मुलाकात और आगरेसे उनका निकल भागना

शिवाजीका आगरा जानेका कारण

पुरन्दरकी सन्धि (जून १६६५ ई०) में शिवाजीने एक शर्त यह की थी कि अन्यान्य कर देनेवाले राजाओंकी तरह उनको खुद जाकर बादशाहके दरबारमें हाजिर न रहना पड़ेगा, लेकिन दक्षिणमें ही कोई लड़ाई छिड़नेपर उनको अपनी फौजके साथ बादशाहकी सहायता करनी होगी। परन्तु बीजापुरके आक्रमणके बाद (जनवरी १६६६ ई० मे) जयसिंहने शिवाजीको अनेक भाँति समझाया कि बादशाहके साथ मुलाकात करनेसे उनको अनेक प्रकारके लाभ होंगे। चालबाज राजपूत राजाने शिवाजीकी खूब तारीफ की और कहा कि आपके समान चालाक और योग्य वीरके साथ बातचीत करनेपर सम्भव है कि बादशाह आपके गुणोंपर रीझकर बीजापुर और गोलकुंडा जीतनेके लिए शाही फौज और धन लगानेके लिए तैयार हो जायँ। उस मौकेपर आप निजामशाही यानी अहमदनगरके लुप्त राज्यके बाकी सब प्रदेशोंपर कब्जा करके अपना निष्कंटक और स्थायी अधिकार स्थापित कर सकेंगे। अबतक कोई भी मुगल सेनापति बीजापुरको अधीन नहीं कर सका है; यहाँतक कि जब शाहजादे थे तब खुद औरंगजेब भी इस प्रयत्नमें विफल हुए थे; यह काम केवल आप ही कर सकते हैं।

शिवाजीकी भी कई एक प्रार्थनाएँ थीं। बादशाहके साथ मुलाकात कर उन्हें अपने चंगुलमें लाये बिना वे पूर्ण होनेवाली न थीं;—जैसे जंजीराका पानीसे घिरा हुआ किला हाथमें आये बिना शिवाजीका कोंकण राज्य पूरा और सुरक्षित नहीं हो सकता था। उस समय वह किला मलिक सिद्दी नामक

हब्शीके हाथमें था जो उसे शिवाजीको देनेके लिए किसी प्रकार भी राजी नहीं था। शिवाजीने उसपर अधिकार जमानेकी बार बार कोशिश की, परन्तु उन्हें हर बार हारकर लौटना पड़ा था। सिद्दी अब बादशाहके अधीन हो गया था। उसे अब बादशाहका ही भय और भरोसा था, इसलिए बादशाह यदि हुक्म दें, तो उसे मजबूर होकर वह किला शिवाजीके हवाले कर देना पड़ेगा। शिवाजीनेइस बातके लिए दिल्ली दरख्व स्त भी भेजी थी, परन्तु कुछ परिणाम न निकला था। स्वयं जाकर मुलाकात करनेसे काममें सफल होनेकी आशा थी।

दिल्लो जानेकी बातपर शिवाजी और उनके साथियोंके मनमें पहले बड़े-बड़े संशय और विचार उत्पन्न हुए। एक तो उनका जीवन वन-जंगलों और गांवोंमें बीता था और उन्होंने कभी राजधानी और बादशाही दरबारका मुहँ नही देखा था; फिर उनकी दृष्टिमें यवन बादशाह रावणका अवतार था। शिवाजीको हाथमें आया देखकर अगर औरंगजेब विश्वासघात करे और शिवाजीको कैद करने या मार डालनेका हुक्म दे दे, तो क्या होगा? लेकिन जयसिंहने बड़ी कड़ी कसमें खाकर कहा कि बादशाह सत्यवादी हैं और साथ ही यह भी विश्वास दिलाया कि उनके बड़े लड़के, कुमार रामसिंह बादशाहके दरबारमें उपस्थित रहकर शिवाजीकी देख-भाल करेंगे। शिवाजीको दिल्ली जानेमें खतरेकी अपेक्षा लाभ अधिक दिखाई दिया, अतः वे दिल्ली जानेके लिए राजी हो गये।

शिवाजीकी आगरा-यात्रा

देशका बन्दोबस्त और रास्तेकी बातें

परन्तु मुगलोंकी राजधानी दिल्लीमें जानेके बाद न मालूम कैसी आपत्ति आ पड़े, इस आशंकासे शिवाजी अपने राज्यकी रक्षा और उसके शासन-कार्यका ऐसा सुन्दर बन्दोबस्त कर गये कि जिससे उनकी अनुपस्थितिके समय भी देशमें मराठोंका किसी प्रकार कोई नुकसान न होने पावे। सब जगह उनके कर्मचारीगण उनके बताये हुए कायदेके अनुसार काम चलायेंगे, प्रचलित नियमानुसार राज्यकी रक्षा करेंगे और किसी विषयके सम्बन्धमें नई आज्ञाकी प्रतीक्षामें उन्हें अपने मालिकका मुँह ताककर असहाय अवस्थामें बैठे रहना न पड़ेगा। शिवाजीकी माँ जीजाबाई राज-प्रतिनिधिके रूपमें सबके ऊपर रहीं।

उनकी सहायताके लिए तीन व्यक्ति नियुक्त किये गये—मोरेश्वर त्र्यम्बक पिंगळे पेशवा यानी प्रधान मंत्री बने, नीला सोनदेव मजमृयादार यानी हिसाब-किताबकी जाँच करनेवाले, और नेताजी पालकर सेनापति बनाये गये। राज्य-भरमें सब जगह घूम-घूमकर हर एक किलेकी जाँच करके, बचावका पक्का बन्दोबस्त किया गया, कामदारोंको रात-दिन होशियार और तैयार रहने तथा अपनी नियमावलीका पूरी तौरपर पालन करनेकी पूरी-पूरी ताकीद की गई। यह सब प्रबन्ध करके शिवाजी सन् १६६६ ई० की पाँचवी मार्चको माता और परिवार-वर्गसे विदा हो रायगढ़से रवाना हुए। उनके पुत्र शम्भूजी, कई एक विश्वासपात्र मन्त्री और एक हजार शरीर-रक्षक फौज शिवाजीके साथ चली। शिवाजीके राह-खर्चके लिए दक्षिणके खजानेसे एक लाख रुपये पेशगी दिये गये। इसके पहले ही शिवाजीके दूत बनकर रघुनाथ बल्लाल कोर्डे और सोनाजी पन्त दबीर बादशाहके दरबारको रवाना हो चुके थे।

उत्तरभारतको जाते हुए शिवाजी पहले औरंगाबाद शहरमें पहुँचे। उनका नाम और उनकी फौजकी चमक-दमक और साज-बाजकी बातें सुनकर शहरके लोग आगे बढ़कर उनके दर्शनकी बाट जोह रहे थे, लेकिन उस स्थानके मुगल अफसर सफशिकन खाँने विचार किया कि शिवाजी एक मामूली जमादार और जंगली मराठा है, इसलिए वह खुद उनके स्वागतके लिए नहीं गया, उसने अपने भाईके लड़केको भेज दिया और कहला दिया कि शिवाजी उसकी कचहरीमें आकर उससे भेंट करें। इस अपमान-जनक बातसे शिवाजी बहुत बिगड़ और सफशिकन खाँकी बातें एकदम अनसुनी करके सीधे शहरके बीचमें अपने लिए ठीक किये मकानमें चले गये। उन्होंने ऐसा दिखाया, मानो इस शहरका शासनकर्ता आदमी कहलानेके भी योग्य नहीं है। सफशिकन खाँ समझ गया कि बड़े बेढबसे पाला पड़ा है, इसलिए वह नरम हो गया और उसने सरकारी कर्मचारियोंके साथ जाकर स्वयं शिवाजीसे भेंट की। इस प्रकार सबके सामने अपनी मान-रक्षा हो जानेपर शिवाजीका भी गुस्सा उतर गया। उन्होंने भी दूसरे दिन जाकर सफशिकनसे वापसी मुलाकात की, और मुगल अफसरोंको अपनी भलमनसीसे सन्तुष्ट किया।

कुछ दिन वहाँ रहकर शिवाजी फिर उत्तरकी ओर आगे बढ़े। बादशाहके

हुक्मके अनुसार रास्तेके स्थानोंमें स्थानीय अफसर लोग उनको रसद पहुँचाते और भेंट देते थे। इस प्रकार वे १३वीं मईको आगरे पहुँचे। बादशाह उस समय आगरा शहरमें रहते थे। आठ वर्षतक,—जबतक शाहजहाँ आगरेके किलेमें कैद रहे, औरंगजेबने कभी आगरेमें अपना मुँह नहीं दिखाया; तबतक वह दिल्लीमें ही रहा। सन् १६६६ की २२वीं जनवरीको शाहजहाँकी मृत्युके बाद ही उसने आगरेके राज-भवनमें पहली बार प्रवेश कर वहाँ धूमधामसे अपने अभिषेकका उत्सव मनाया।

आगरेमें शिवाजीकी बादशाहके साथ मुलाकात और वहाँ शाही कैदसे शिवाजीके निकल भागनेका सबसे अधिक सच्चा और पूरा-पूरा वृत्तान्त सन् १९३९ ई० में जयपुर राज्यके पुराने दफ्तरमेंसे निकला है। आमेरके मिर्जा राजा जयसिंहका पुत्र कुमार रामसिंह कछवाहा उस समय मुगल दरबारमें हाजिर था और आगरेमें शिवाजीकी मेहमानदारी और रक्षाका प्रबन्ध करनेके लिए औरंगजेबने उसे ही नियुक्त किया था। हर रोज बादशाही दरबारमें जो-जो घटनाएँ और बातचीत होती थीं, शामको अपने डेरेपर लौटकर रामसिंह वह सब अपने कर्मचारियोंको कह देता था, जो उन सारी बातोंको लिखकर आमेर दीवानके पास भिजवा देते थे। उस समयके लिखे हुए वे सब कागज अभीतक जयपुर राज्यके महाफिजखानेमें मौजूद हैं। ऐसी समकालीन और विश्वासयोग्य ऐतिहासिक सामग्री फारसी या अन्य किसी भाषामें लिखित ग्रन्थोंसे प्राप्त नहीं हो सकती है। जयपुरसे प्राप्त इन कागजोंसे बहुत-सी प्रचलित गप्पें एवं दन्त-कथाएँ बिलकुल झूठ साबित हो गई हैं।

औरंगजेबके साथ शिवाजीकी भेंट

चाँद-तिथिके अनुसार बादशाह औरंगजेबका ४९वाँ जन्मदिन १२ मई १६६६ ई० को पड़ता था। बादशाहने हुक्म दिया कि उसी शुभ दिनको शिवाजी बादशाहका दर्शन करेंगे। मामूली अदब-कायदा ऐसा था कि जब कोई बड़ा आदमी राज-दर्शनके वास्ते आता था, तो उसके दरजेके मुताबिक एक या दो बड़े उमरा राजधानीसे एक दिनकी मंजिल आगे बढ़कर उससे मिलते थे, उसको साथ ले आते और फिर दरबारमें राज-दर्शनके लिए ले जाते। इस प्रकार आगे बढ़कर स्वागत करनेको इस्तिकबाल या पेशवाई कहते हैं।



शिवाजी

ओर्मकी पुस्तक 'हिस्टॉरिकल फ्रेगमेंट्' में प्रकाशित तसवीर



शिवाजी और भवानी

(करमरकरकी बनाई हुई मूर्ति)

लेकिन शिवाजीको आगरा पहुँचनेमें एक दिनकी देरी हो गई। ११ मईको शिवाजी आगरेसे एक मंजिलकी दूरीपर सराय-मलूकचंदतक ही आ पाये थे और वहीं उन्होंने मुकाम किया था। पर वह दिन बादशाहकी सालगिरहके दरबारका था और किलेके सामने पहरा देनेकी बारी कुमार रामसिंहकी थी, इस कारण रामसिंह स्वयं शिवाजीकी पेशवाईके लिए नहीं जा सके और उन्होंने अपने वकील मुंशी गिरधरलालको शिवाजीके पास भेज दिया कि राह बताकर शिवाजीको आगरेमें लिवा लावें। १२वीं मईको सुबह जब रामसिंहको फ़ुरसत मिली तबतक शिवाजी आगरा शहरमें आ पहुँचे थे। उधर गिरधरलाल भी ठीक रास्ता भूलकर दूसरे ही रास्तेसे शिवाजीको ले आया! अन्तमें बाजार और ख्वाजा फिरोजके बागके बीचमें, नूरगंज बागमें शिवाजी और रामसिंहकी भेंट हुई। इस सारे गोलमालसे जैसी चाहिए वैसी शिवाजीकी पेशवाई नहीं हुई। यह हुआ शिवाजीका पहिला अपमान।

आम रास्तेमें घोड़ेपर बैठे रामसिंह और शिवाजी बगलगीर हुए और जहाँ शिवाजीके ठहरनेके लिए डेरे लगाए गए थे वहाँ ले जाकर उन्होंने उनका विधिवत् स्वागत किया। कुछ देर वहाँ ठहरकर बादमें रामसिंह शिवाजीको लेकर दरबारके लिए रवाना हुए।

इधर देरी बहुत हो चुकी थी और बादशाह दीवान आमका दरबार खतम कर किलेमें भीतरी दीवान खासमें चले गए थे। कुमार रामसिंह शिवाजीको वहीं ले गये। सफेद पत्थरका बना हुआ यह दीवान खास जन्म-दिनके उत्सवमें बाकायदा सजाया गया था और जमीनपर बहुत बढ़िया गलीचा बिछाया गया था। यहाँ भी ऊँचे दर्जेके अमीर-उमरा और राजा लोग खूब चमकीली पोशाकें पहनकर अपने-अपने दर्जेके अनुसार खड़े थे। हिन्दी कवि भूषणने ठीक ही कहा है कि इस जन्म-दिवसके उत्सवके दरबारमें औरंगजेब स्वर्गमें तेजपूर्ण देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी तरह बैठा था।

राजसभा लोगोंसे खचाखच भरी थी। सभासदोंकी भाँति-भाँतिकी रंग-बिरंगी पोशाकें, रंगीन गलीचे और चमकदार किमखाब देखनेसे ऐसा भ्रम होता था मानों जमीन एक रंगीन फूलोंका बगीचा है। चारों ओर दरबारियों

और कर देनेवाले छोटे-छोटे राजाओंके शरीरके आभूषणोंसे हीरा, मोती और नाना प्रकारके रत्नोंकी ज्योति फैल रही थी। बादशाह राजगद्दीपर बैठा था।

कुमार रामसिंहने उसी समय दरबारमें शिवाजी और उनके दस कर्मचारियोंको उपस्थित किया। बादशाहके हुक्मके मुताबिक बख्शी असद खाँने शिवाजीको औरंगजेबके सामने हाजिर किया। मराठा राजाकी ओरसे एक थालमें एक हजार मोहरें और दो हजार रुपये रखकर बादशाहके पैरोंके निकट नजरके रूपमें रखे गये। शिवाजीने पाँच हजार रुपये न्यौछावरके[1] रूपमें भेंट किये। लेकिन बादशाहने शिवाजीकी सलामके जवाबमें एक बात भी नहीं कही। तब मन्त्रीने शिवाजीको तख्तके सामनेसे ले जाकर उन्हें पाँचहजारी मनसबदारोंकी कतारमें खड़ा कर दिया। दरबारका काम चलने लगा, मानो सब कोई शिवाजीकी बात ही भूल गए। यह हुआ शिवाजीका दूसरा अपमान।

कितना आदर और सत्कार पानेकी आशासे शिवाजी आगरे आए थे और उन सब आशाओंका यह अन्त एवं परिणाम था! दरबारमें आनेके पहलेसे ही उनके मनमें दुःख और संदेह होने लग गया था। पहली बात तो यही थी कि आगरेके बाहर आकर किसी बड़े उमरावने उनका स्वागत नहीं किया। सिर्फ कुमार रामसिंह (ढाई हजारी मनसबदार) और मुखलिस खाँ (डेढ़ हजारी मनसबदार) ये दो मध्यम श्रेणीके उमरा कुछ ही दूर आगे बढ़कर शिवाजीको अपने साथ ले आए थे। दरबारमें भी उन्हें पाँचहजारी मनसबदारोंमें खड़ा किया गया।

उसके बाद सालगिरहके उत्सवके पान सब उमराओंको दिए गए, शिवाजीको भी पान मिला। तब इस जलसेकी खिलअतें और सिरोपाव सिर्फ शाहजादों, वजीर जाफर खाँ और महाराजा यशवन्तसिंह (जोधपुर) को दिए गए;

---

१. बादशाहके शरीरपरसे अशुभ दृष्टिका प्रभाव दूर करनेके लिए जो रुपये, रत्न आदि थालीमें रखकर या यों ही उनके सिरके चारों ओर घुमानेके बाद लोगोंमें बाँट दिए जाते थे उसको न्योछावर कहते हैं।

शिवाजीको खिलअत नहीं मिली। इधर घण्टे-भरसे दरबारमें खड़े रहनेके कारण शिवाजी थक गए और अब इस तीसरे अपमानको वे बरदाश्त नहीं कर सके। वे शोकाकुल होकर गुस्सेसे लाल हो गए, उनकी आँखें डबडबा आईं। यह औरंगजेबकी नजरसे छिपा न रहा; उसने रामसिंहसे कहा—"शिवाजीको पूछो कि उसकी तबीयत कैसी है?" कुमार शिवाजीके पास आए तब शिवाजी कहने लगे—"तुमने देखा है, तुम्हारे बापने देखा है, तुम्हारे बादशाहने देखा है; कहो क्या मैं ऐसा आदमी हूँ कि मुझे जान-बूझकर खड़ा रखा जाय? मैं तुम्हारा मनसब छोड़ता हूँ। यदि खड़ा ही रखना था तो मुझे ठीक स्थानपर खड़ा करते।" तब वहींसे मुड़कर बादशाहकी तरफ पीठकर शिवाजी चल पड़े। रामसिंहने शिवाजीका हाथ पकड़ा, पर वे वह हाथ भी छुड़ाकर चले और एक ओर जाकर बैठ गए। रामसिंहने वहाँ जाकर उन्हें फिर समझाया परन्तु शिवाजीने एक न सुनी; वे कहने लगे, "मेरी मौत आई है, या तो तुम मुझे मारोगे या मैं आत्म-घात कर लूँगा। मेरा सिर काट कर ले जाना चाहो तो तुम ले जाओ, मैं तो बादशाहकी सेवामें नहीं आता।" जब शिवाजीने एक न मानी तो रामसिंहने आकर बादशाहकी सेवामें सब हाल अर्ज किया। तब बादशाहने मुल्तफित खाँ, आकिल खाँ और मुखलिस खाँको हुक्म दिया कि "तुम जाकर शिवाको दिलासा दो, उसे सिरोपाव दो और सन्तुष्ट कर उसे ले आओ।" वे उमराव शिवाजीके पास पहुँचे और बोले—"सिरोपाव पहनो।" शिवाजीने जवाब दिया—"बादशाहने मुझे जान-बूझकर यशवन्तसिंहसे नीचे खड़ा किया है, इसलिए मैं सिरोपाव नहीं पहिनता। मै बादशाहका मनसब नहीं लेता; बादशाहका सेवक नहीं बनता। मुझे मारना चाहो तो मारो, कैद करना चाहो तो कैद करो, परन्तु मैं सिरोपाव नहीं पहनूँगा।" तब उन उमराओंने जाकर बादशाहसे यह बात अर्ज की। बादशाहने हुक्म दिया—"कुमार, अभी तो तुम उसको अपने साथ ले जाओ और डेरेपर ले जाकर शान्त करो।" रामसिंह शिवाजीको लेकर डेरे आये और बहुत-कुछ समझाया, परन्तु उन्होंने फिर भी एक न माना। एकाध घड़ी अपने पास रखकर रामसिंहने उन्हें उनके डेरेपर भेज दिया।

उधर बादशाहकी सेवामें कितने ही उमराव ऐसे थे जो शिवाजीको चाहते न थे। उन्होंने बादशाहसे अर्ज की—"शिवाने बेअदबी की और हुजूर उसे

दर-गुजर करते हैं !" सय्यद मुर्तजा खाँने कहा—"वह तो हैवान है, सिरोपाव आज नहीं पहना तो कल पहिनेगा। केवल मिर्जा राजाका ही खयाल है, इसकी तो कोई चिन्ता नहीं।"

सालगिरहके दरबारके बाद दो-एक दिनतक सबको उम्मीद थी कि शिवाजी शान्त होकर फिर दरबारमें आवेंगे, अपनी बेअदबीके लिए क्षमा मागेंगे और खिलअत पहिनकर देशको लौट जानेके लिए रुखसतके लिए अर्ज करेंगे। लेकिन शिवाजीने दरबारमें जानेसे बिलकुल इनकार कर दिया, सिर्फ अपने पुत्र शंभाजी-को रामसिंहके साथ भेज दिया।

दूसरी तरफ बेगम साहिबा, जयसिंहके प्रतिद्वन्द्वी यशवन्तसिंह और दो-एक उमराओंने बादशाहकी सेवामें अर्ज की कि—"शिवाजी केवल एक छोटा भूमिया, गँवार आदमी है। उसने खुले दरबारमें हुजूरके सामने इतनी गुस्ताखी की। आप क्यों यह सब बरदाश्त करते हैं ? अगर उसको सजा नहीं दी जावेगी तो और भूमिया भी ऐसी ही बेअदबी करेंगे।" यह सब सुनते-सुनते अन्तमें बादशाहको भी यही ठीक जान पड़ा कि या तो शिवाजीको मरवा डाले या कैद कर दे। शिवाजीको मारनेका हुक्म देनेसे पहले बादशाहने जयसिंहको लिखवा कर यह पुछवाया कि आगरा भेजते समय क्या-क्या सौगन्धें खाकर उसने शिवाजीको तसल्ली दी थी।

मिर्जा राजा जयसिंह उस समय दक्षिणमें थे और उनका उत्तर आनेमें काफी समय लगेगा यह खयाल कर औरंगजेबने हुक्म दिया कि तबतकके लिए शिवाजीको आगरेके किलेके किलेदार राद-अन्दाज खाँको सौंप दिया जावे। यह रामसिंहको मंजूर न था, उन्होंने जाकर मंत्री आमिन खाँसे कहा—"मेरे पिताके कौलपर शिवाजी आगरा आए हैं। मैं उनकी जानका जिम्मेदार हूँ। बादशाहको अर्ज कीजिएगा कि पहले हमको मार डालें; मेरे मरनेके बाद जो आप चाहें शिवाजीके साथ करें।" यह सब सुनकर औरंगजेबने शिवाजीको रामसिंहके ही सिपुर्द कर दिया, और रामसिंहने मुचलका लिखकर बादशाहकी सेवामें पेश कर दिया कि यदि शिवाजी भाग जायँ या आत्मघात कर डालें तो उसके लिए रामसिंह जवाब देंगे। परन्तु इतनेसे ही बादशाहको सन्तोष न हुआ।

७७

शिवाजीका आगरेमें नजर-बन्द होना

आगरा शहरके कोतवाल सिद्दी फौलाद खाँने शाही हुक्मसे शिवाजीके डेरेके चारों तरफ तोपें रखवा कर सरकारी फौजें बिठा दीं। डेरेके अन्दर भी आमेरी सेनाके तीन-चार अफसरों और कछवाही फौजका पहरा लगता था। मराठा राजा सचमुच कैद हो गया; अब उसका घरसे निकलना भी बन्द हो गया।

बन्दी शिवाजीकी शाही दरबारमें कोशिश

पहले तो शिवाजीको उम्मीद थी कि वे वजीर जाफर खाँ और दूसरे बड़े दरबारियोंको रुपया देकर अपना कुसूर माफ करवा लेंगे और इसी कारण बादशाहसे सिफारिश करनेके लिए शिवाजीने उनकी मिन्नतें भी कीं। परन्तु अबतक शिवाजीका सूरत बन्दर लूटना और अपने मामा शायस्ता खाँका शिवाजीके हाथों घायल होना औरंगजेब भूला न था; उसने किसीकी भी कोई बात न सुनी।

शिवाजीने यह भी अर्ज करवाई कि "अगर बादशाह मुझको छोड़ दें तो मैं देश पहुचकर अपने अधिकारके सारे किले बादशाही अफसरोंको सौंप दूँगा। मेरा दक्षिण जाना जरूरी है, क्योंकि मेरे किलेदार सिर्फ मेरे खतको पढ़कर ही मेरा हुक्म न मानेंगे।" लेकिन औरंगजेब ऐसी बातोंसे भुलावेमें आनेवाला न था। बादशाही दरबारमें एक बार यह भी निश्चय हुआ कि शिवाजीको रामसिंहकी अधीनतामें नियुक्त कर काबुल भेज दें, परन्तु बादमें यह निश्चय भी रद ही रहा।

अन्तमें हताश होकर शिवाजीने औरंगजेबकी सेवामें एक अर्जी पेश की कि "यदि आज्ञा मिले तो फकीर होकर मैं किसी तीर्थमें अपना बाकी जीवन बिता दूँ।" औरंगजेबने कुटिल हँसी हँसकर जवाब दिया—"बहुत अच्छा! फकीर होकर प्रयागके किलेमें रहो, तुम्हे वहाँ भेज देंगे; वह बहुत बड़ा पुण्यतीर्थ है। वहाँ मेरा सूबेदार बहादुर खाँ तुमको बहुत हिफाजतसे रखेगा!"

शिवाजीने भागनेका एक अजीब रास्ता ढूँढ़ निकाला

चारों ओरसे निराश होकर शिवाजी एक दिन अपने लड़केको छातीसे लगा-कर रोने लगे। लेकिन यह दशा बहुत दिनोंतक न रही। शिवाजीकी प्रखर बुद्धि

और उनके अदम्य साहसने शीघ्र ही उद्धारका मार्ग ढूँढ़ निकाला। पहले तो उन्होंने रामसिंहसे कहकर अपनी जिम्मेवारीका मुचलका रद करवाया। फिर उन्होने अपनी रक्षक-सेनाके देश लौट जानेकी परवानगी चाही। बादशाहने भी सोचा कि अच्छा ही है, आगरेमें जितने भी दुश्मन कम हों उतना ही भला। ७ जूनको यह फौज महाराष्ट्रके लिए रवाना हो गई। उसीके साथ शिवाजीके बहुत-से मित्र और साथी भी लौट गए और अब आगरेमें शिवाजी अकेले ही रह गए। १३ जुलाईको शिवाजीने कुमार रामसिंहसे ६६,०००) रुपये लेकर उसकी हुंडी दक्षिणमें जयसिंहके पास भिजवा दी और दक्षिणमें शिवाजीके वकीलने स्वयं जाकर इस हुंडीका रुपया जयसिंहको चुकाया। शिवाजीने अपना एक हाथी, एक हथिनी, कीमती कपड़ोंसे भरी हुई दो बहली* वगैरह सामान अपने सभा-कवि कवीन्द्र परमानन्दके साथ आमेरकी राह भेज दिया। अन्तमें दक्षिण ले जानेके लिए शिवाजीने मूलचद साहूकारके हलकारोंको भी गुप्त रूपसे कुछ मोती और मोहरें सौंपकर रवाना किया।

अब शिवाजीने अपने भागनेका उपाय भी सोच निकाला। बीमारीका बहाना करके वे पलंगपर लेट गये। घरसे बाहर निकलते ही नहीं थे। बीमारी दूर करनेके लिए वे ब्राह्मणों, साधुओं, सज्जनों और सभासदोंके यहाँ बड़ी-बड़ी टोकरियाँ भर-भरके फल और मिठाइयाँ भेजने लगे। हर एक टोकरीको बाँसके डंडेमें लटका कंधेपर रखकर दो कहार शामके समय बाहर ले जाते थे। कोतवालीके पहरेदारोंने पहले कुछ दिनोंतक तो टोकरियोंको जाँच कर देखा। उसके बाद बिना देख-भाल किये ही टोकरियोंको ले जाने देने लगे।

शिवाजी इसी मौक़ेकी ताकमें थे। १९वीं अगस्तको दोपहरके समय उन्होंने पहरेदारोंसे कहला भेजा कि उनकी बीमारी बढ़ गई है, अतः वे उन्हें तंग न करें। इधर घरके भीतर उनके सौतेले भाई (शाहजीके दासीपुत्र) हीराजी फर्जन्द,—जो देखनेमें कुछ शिवाजी जैसे ही थे, शिवाजीकी खाटपर चद्दरसे शरीर और मुँह ढककर लेट रहे। केवल उनका दाहिना हाथ चद्दरके बाहर निकला हुआ था। इस हाथमें उन्होंने शिवाजीका सोनेका कड़ा पहन लिया जो दूरसे दिखाई देता था। शामको शिवाजी और शम्भूजी दो टोकरियोंमें

* बहली = रथके आकारकी छतरीदार या मंडपदार बैलगाड़ी।

मुर्दकी तरह लेट गये। उनके ऊपर अच्छी तरह पत्ते ढक दिये गये। उन टोकरियोंमें सचमुच फल और मिठाइयाँ भरकर, एक लाइन बाँधकर कहार लोग डेरेसे बाहर निकले। बादशाहके पहरेदारोंने कुछ भी चूँ-चरा नहीं की, क्योंकि यह तो रोजमर्राकी बात थी। भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीकी घनी अँधियारी रात थी।

आगरा शहरके बाहर पहुँचकर एक निर्जन स्थानमें टोकरियाँ रखवा दी गईं। कहार मजूरी ले लेकर चल दिये। उसके बाद शिवाजी और शम्भूजी टोकरीसे बाहर निकलकर, साथमें जो दो मराठे नौकर आये थे, उनकी मददसे तीन कोस पैदल चलकर एक छोटेसे गाँवमें जा पहुँचे। वहाँ उनके जज नीराजी रावजी पहलेसेही घोड़े लेकर उनकी बाट जोह रहे थे। यहाँ मराठोंका दल दो हिस्सोंमें विभक्त हुआ। बालक शम्भूजी, नीराजी, दत्ताजी त्र्यम्बक और राघव मित्र,—इन सबको अपने साथ ले, शिवाजीने सारे शरीरमें राख पोतकर संन्यासीका भेष बनाया और मथुराकी तरफ प्रस्थान किया। बाकी सबने दक्षिणका रास्ता लिया।

आगरेमें शिवाजीके भागनेका पता लगना

इधर आगरेमें १९वीं अगस्तकी रात-भर और दूसरे दिन एक पहरतक हीराजी शिवाजीके बिछौनेपर सोते रहे। सबेरे पहरेदारोंने आकर खिड़कीसे झाँककर देखा कि सोनेका कड़ा पहने हुए कैदी सोया हुआ है, नौकर उसके पैर दाब रहे हैं। थोड़ी देर बाद हीराजीने उठकर अपने कपड़े पहने और नौकरको साथ ले वे बाहर निकल गये। फाटकपर उन्होंने पहरेवालोंसे कह दिया— "शिवाजीके सिरमें दर्द है, किसीको उनके कमरेमें मत जाने देना, हम दवा लेने जाते हैं।" इस तरह और एक घंटा बीत गया। उसके बाद पहरेवालोंको घर खाली-सा मालूम होने लगा। भीतरसे किसी प्रकारकी कोई आवाज नहीं आती थी; किसीके चलने-फिरनेतककी आहट नहीं मिलती थी। और दिनोंकी तरह बाहरसे भी लोग मुलाकात करने नहीं आते थे। धीरे-धीरे उनका शक बढ़ने लगा। वे सब कमरेमें घुस गये। घुसते ही वे सन्न हो गये—चिड़िया उड़ गई थी, पिंजड़ा सूना पड़ा था। चार घड़ी दिन बीत चुका था।

उन लोगोंने दौड़कर कोतवालको खबर दी। फौलाद खाँने कैदीके घरकी

तलाशी लेकर बादशाहको इत्तला की—"जहाँपनाह ! शिवाजी भाग गया, लेकिन इसमें हम लोगोंका कोई कसूर नहीं है। राजा कोठरीके भीतर ही था। हम लोग बराबर जा-जाकर सावधानीसे देखते थे, तिसपर भी वह गायब हो गया। खुदा जाने जमीन निगल गई, या आसमानमें उड़ गया, या पैदल भागा,—कुछ मालूम नहीं। हम लोग पासमेंही मौजूद थे। इतनी चौकसी रखनेपर भी गायब हो गया। किस जादूगरीसे ऐसा हुआ, यह नहीं बता सकते।"

परन्तु औरंगजेब इन सब फिजूल बातोंके फेरमें पड़नेवाला आदमी नहीं था। फौरन चारों ओरसे 'पकड़ो-पकड़ो' की आवाज उठ खड़ी हुई। राज्य-भरके रास्तोंकी चौकियों, घाटों और पहाड़ोंकी घाटियोंमें हुक्म भेजा गया कि दक्षिणके सब मुसाफिरोंको पकड़कर देखो कि उनमें शिवाजी तो नहीं है। इस परवानेको लेकर बहुत-से सवार दक्षिणकी ओर दौड़ पड़े। आगरा और उसके आसपास शिवाजीके जितने अनुचर थे (जैसे त्र्यम्बक, सोनदेव, दबीर और रघुनाथ बल्लाल कोर्डे), उन सबको पकड़कर कैद कर दिया गया। मार मारकर उन लोगोंसे यह कबूल कराया गया कि शिवाजी कुमार रामसिंहकी मददसे भागे है! बादशाहने नाराज होकर कुमार रामसिंहका दरबारमें आना बन्द कर दिया और उनकी मनसबदारी और दरमाही छीन ली।

शिवाजीके भागनेकी अनोखी बातें

होशियारोंके सरदार शिवाजीने देखा कि आगरेसे महाराष्ट्र देशका रास्ता दक्षिण-पश्चिमकी ओरसे धौलपुर, नरवर होकर गया है, इसलिए उस ओर सभी जगह शत्रुगण खबरदारीसे पहरा देते होंगे, लेकिन उत्तर-पूरबकी ओर किसी मुसाफिरके ऊपर शक करनेकी गुंजाइश न थी, इसीलिए वे आगरेसे निकलकर पहले उत्तर और तब पूरबकी ओर,—यानी धीरे-धीरे महाराष्ट्रसे दूर निकल जानेका प्रयत्न करने लगे। पहली रातको घोड़ा दौड़ाकर वे जल्दी-जल्दी मथुरा पहुँचे, लेकिन उन्होंने देखा कि शम्भूजी इस दौड़ा-दौड़में शिथिल होकर बेकार-से हो रहे हैं। वे बिलकुल ही चल नहीं सकते। इधर आगरेके इतने नजदीक रहना शिवाजीके लिए जोखिमकी बात थी। तब नीराजी पंडितने मथुरानिवासी

तीन मराठा ब्राह्मणोंको, जो पेशवाके साले थे, शिवाजीके आनेकी खबर दी, और उनकी आपत्तिकी बातें कहकर मदद माँगी। उन लोगोंने देश और धर्मके नामपर बादशाही दण्डके भयको भी तुच्छ समझकर शम्भूजीको अपने यहाँ आश्रय देना स्वीकार किया। उनमेंसे एक भाई शिवाजीके साथ कुछ दूरतक उन्हें रास्ता दिखानेके लिए भी गया।

इस लम्बे रास्तेके खर्चके लिए भी शिवाजीने प्रबन्ध किया। संन्यासीकी लाठीको खोखला करके उसमें मोहरें और जवाहरात भरकर उसका मुँह बन्द कर दिया। जूतोंके भीतर भी कुछ रुपये रख लिये, और एक दामी हीरा और बहुत-सी पद्मराग मणियोंको मोममें रखकर अपने नौकरोंके कपड़ोंके भीतर सी दिया। उन लोगोंने कुछ रत्न मुँहमें भी भर-रखकर साथ ले लिये।

मथुरा पहुँचकर दाढ़ी-मूँछ मुड़वाकर, शरीरमें भस्म लगा, शिवाजी संन्यासीके भेषमें यात्रा करने लगे। नीराजी हिन्दी अच्छी तरह बोल लेते थे। वे महन्त बनकर दलके आगे-आगे चलने लगे। वे ही रास्तेमें लोगोंको जवाब देते थे। शिवाजी मामूली चेले बनकर उनके पीछे-पीछे चलते थे। वे अकसर रातको ही राह चलते और दिनको कहीं एकान्तमें आराम करते थे। रोज एक भेष बदलकर दूसरा नया भेष धारण करते थे।

चलते-चलते शिवाजी गंगा-यमुनाके संगम प्रयागके पुण्य-क्षेत्रमें जा पहुँचे और वहाँ स्नानकर उन्होंने दक्षिणकी ओर रुख किया। आगरेसे रवाना होनेके २५ दिन बाद शिवाजी घर पहुँचे थे। यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि वे काशी, गये और जगन्नाथ होते हुए महाराष्ट्रको लौटे हों। प्रयागसे उन्होंने बिलकुल अनजान जंगलका रास्ता पकड़ा होगा और बहुत करके बुन्देलखंड, गोंडवाना और गोलकुण्डाके राज्यमें होते हुए वे महाराष्ट्रकी ओर चले होंगे।

शिवाजीका देश जा पहुँचना

चलते-चलते दक्षिणमें गोदावरीके तीर खानदेश प्रदेशको पारकर संन्यासियोंका यह दल महाराष्ट्रकी सीमाके पास शामको एक गाँवमें पहुँचा। उन लोगोंने गाँवके मण्डलकी स्त्री (पटेलिन) के घरमें रातको रहनेके लिए आश्रय माँगा। इसके कुछ दिन पहले ही आनन्द रावके अधीन शिवाजीके सिपाहियोंने आकर इस गाँवका सब अन्न-धन लूट लिया था। पटेलिनने जवाब दिया—

"घर खाली पड़ा है। शिवाजीके सवार आकर सब अन्न ले गये। शिवाजी कैद है। अच्छा हो कि वहीं सड़कर मर जाय।" यह कहकर उनके नामसे वह बहुत-कुछ रोने लगी। शिवाजीने हँसकर नीराजीको इस गाँव और पटेलिनका नाम लिख लेनेको कहा। अपनी राजधानीमें पहुँचनेके बाद उन्होंने पटेलिनको बुलवाकर उसकी जितनी सम्पत्ति लूटी गई थी, उससे अधिक उसे दे दी।

इस प्रकार भीमा नदी पार करके आगरा छोड़नेके पचीस दिन बाद वे अपनी राजधानी रायगढ़ (१३ सितम्बरको) पहुँचे। किलेके फाटकके अन्दर जाकर जीजाबाईको समाचार भिजवाया कि उत्तर देशसे वैरागियोंका एक दल आया है, वह उनसे भेंट करना चाहता है। जीजाबाईने कहा—'अच्छा।' आगे चलनेवाले महन्त (नीराजी) ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया, लेकिन पीछे-वाले वैरागी चेलेने एकाएक जीजाबाईके पैरोंपर सिर रख दिया। उनको इस बातका बड़ा अचम्भा हुआ कि संन्यासी क्यों उनके पैरोंपर सिर रख रहा है। उसी समय छद्मवेशी शिवाजीने टोपी उतारकर अपना सर माताकी गोदमें रख दिया। इतने दिनके खोए हुए पुत्र-रत्नको एकाएक माँने पहचाना; चारों ओर आनन्द छा गया। बाजे बजने लगे। किलेसे तोपोंकी सलामियाँ दगने लगीं।

इस प्रकार १३ सितम्बर १६६६ ई० को शिवाजी रायगढ़ पहुँच गए। पचीस दिनतक लगातार हर रोज लम्बी-लम्बी मंजिलोंकी दौड़-धूप करते रहने, और जंगली देशमें खाने-पीनेतककी तकलीफ उठानेके कारण ज्यों ही शिवाजी घर पहुँचे, बीमार पड़ गये और कई दिनतक सख्त बीमार रहे। इस बीमारीसे मुक्त हो जानेके बाद वे दूसरी बार फिर बीमार हो गये। बादशाही जासूसोंने अक्टूबर महीनेमें इसकी सूचना दिल्ली लिखकर भेज दी थी। घर लौटनेके कोई तीन महीने बाद जनवरी १६६७ ई० में फिर शिवाजीकी सेनाने महाराष्ट्रमें मुगल थानोंको लूटना शुरू कर दिया।

शिवाजी तो देश लौट आए, लेकिन बालक शम्भूजी उनके साथ न थे। शिवाजीने यह बात फैला दी थी कि शम्भूजी रास्तेमें ही मर गये। इस प्रकार दक्षिणके रास्तेके सब मुगल पहरेदार उधरसे निश्चिन्त हो गये। तब शिवाजीने

चुपचाप मथुराके उन्हीं तीन ब्राह्मणोंको पत्र लिखा; और वे अपने परिवारको साथ ले दक्षिणको चले। उन्होंने शम्भूजीको भी ब्राह्मणका भेष कराया और अपना बालक बताते हुए उसे लेकर वे महाराष्ट्र आ पहुँचे। रास्तेमें एक मुगल कर्मचारीने उन लोगोंको गिरफ्तार किया, परन्तु उसके शकको दूर करनेके लिए ब्राह्मणोंने शम्भूजीके साथ एक पंक्तिमें बैठ भोजन किया,—मानो शम्भूजी शूद्र नहीं थे, उनकी अपनी श्रेणीके ही ब्राह्मण थे! कृष्णाजी और शिवाजी—इन तीनों भाइयोंको शिवाजीने 'विश्वासराव' की उपाधि, एक लाख मोहरें और पचास हजार रुपये वार्षिककी जागीर इनाममें दी।

शिवाजीके भागनेका औरंगजेबको जीवन-भर खेद रहा। उसने इक्यानवे वर्षकी उम्रमें मरते समय अपने वसीयतनामेमें लिखा था—"राज-काजकी प्रधान भित्ति है, राज्यमें जो कुछ भी हो उसकी पूरी-पूरी खबर रखना। एक मुहूर्तकी बेपरवाहीसे बहुत दिनोंतक शर्ममें पड़ना पड़ता है। वह देखो, अभागा शिवाजी हमारे नौकरोंकी बेखबरीसे भाग गया और उसके लिए हमको जीवनके अन्ततक इन सब कष्टदायक लड़ाइयोंमें उलझे रहना पड़ा।"

शिवाजीके विषयमें औरंगजेब और जयसिंहका इरादा

शिवाजीकी कैदकी हालतमें मुगलोंकी राजनीतिके हेर-फेरका पता जयसिंहकी चिट्ठियोंसे भली-भाँति लगता है। आरम्भमें बादशाहका इरादा यह था कि पहले दिनकी मुलाकातके बाद वे शिवाजीको एक हाथी, खिलअत और कुछ मणि-मुक्ता भेंट देंगे; लेकिन दरबारमें शिवाजीकी उद्दण्डता देखकर वे बिगड़ गये और यह भेंट रोक दी गई। इधर शिवाजी डेरेपर लौटते समय यह कहते हुए चले कि मुगल-सरकारने उनके सम्बन्धमें की हुई प्रतिज्ञाओंकी रक्षा नहीं की। उस समय औरंगजेबने जयसिंहको पुछवा भेजा कि उन्होंने बादशाहकी ओरसे शिवाजीके साथ कौन-सी प्रतिज्ञाएँ की थीं। उसके जवाबमें जयसिंहने पुरन्दरकी सन्धिकी सब शर्तें भेज दीं, और कहा कि शिवाजीसे इसके सिवा और कोई वादा नही किया गया था।

इधर आगरेमें जब शिवाजी कड़े पहरेमें नजरबन्द कर दिये गये, तब जयसिंह बड़े संकटमें पड़े। एक ओर तो दक्षिणकी आफतको हलकी करनेके लिए उन्होंने

शिवाजीको उत्तर-भारत भेज दिया था, दूसरी ओर उन्होंने धर्मकी कसम खाई थी कि आगरे जानेसे शिवाजीका कोई अनिष्ट या उनकी स्वाधीनताका अपहरण नहीं होगा। वे औरंगजेबकी भीतरी चालाकी नहीं समझ सके थे। वे बार-बार बादशाहको लिखते रहे कि शिवाजीको कैद करने या उन्हें मार डालनेसे कोई लाभ न होगा। कारण यह था कि शिवाजी अपने देशमें ऐसा अच्छा बन्दोबस्त कर गये थे कि उनके न रहनेपर भी मराठा लोग पहलेकी ही तरह राजकाज चलाते रहते। पुनः अगर शिवाजी कुशलपूर्वक देश न लौट सके, तो भविष्यमें कोई भी व्यक्ति बादशाहके उमराओंकी बातपर विश्वास न करेगा। जयसिंह उसीके साथ-साथ अपने पुत्र रामसिंहको भी बार-बार लिखते रहे, "देखना, शिवाजीकी रक्षाके लिए तुम्हारी और हमारी प्रतिज्ञा झूठी न होने पावे। हम लोगोंपर किसी प्रकारसे भी विश्वासघातका कलंक न लगने पाये।"

इधर औरंगजेबकी समझमें यह बात अच्छी तरहसे न आई कि शिवाजीके विषयमें क्या किया जाय। वह कोई भी एक नीति स्थिर नहीं कर सका था। पहले सोचा था कि अगर जयसिंह बीजापुर राज्यको पूरी तौरसे परास्त कर दे, तो वह दक्षिणसे निश्चिन्त होकर शिवाजीको छोड़ देंगे। लेकिन जब धीरे-धीरे जीत होनेकी आशा बिलकुल नहीं रही, तब औरंगजेबने एक बार यह कहा कि रामसिंह शिवाजीकी जिम्मेवारी अपने ऊपर लेकर आगरेमें रहे और वह खुद दक्षिणको जायगा। फिर उसने यह सोचा कि शिवाजीको अफगानिस्तानमें मुगल सेनाके साथ काम करनेको भेज देंगे। उसने नेताजीको और बादमें महाराज यशवन्तसिंहको भी इसी तरह अफगानिस्तान भेजा था। यह था एक प्रकारसे काले पानी भेजना; लेकिन इन दोनोंमेंसे किसी भी प्रस्तावपर अमल न हुआ।

उसी हालतमें शिवाजी भाग गये। उनके भागनेके बाद और देश लौटनेतक जयसिंहके भय और दुश्चिन्ताका पारावार न था। उनको चारों ओर अँधेरा दिखाई देने लगा। उनकी बीजापुरकी चढ़ाई व्यर्थ हुई, उसमें बादशाहका और अपना बहुत-सा द्रव्य मिट्टीमें मिल गया जिसकी पूर्तिकी कोई सम्भावना न थी। उसके ऊपर यह आशंका भी बनी हुई थी कि बिगड़े हुए

शिवाजी अपने देश लौटकर मुगलोंसे न मालूम किस प्रकार बदला ले बैठें। इन सब बातोंसे बढ़कर चिंता उन्हें अपने वंशकी आशा कुमार रामसिंहके बादशाहके संदेहके कारण अपमानित और दंडित होनेकी थी। जयसिंह द्वारा पहलेकी अनेकों लड़ाइयाँ जीतना, सरकारी काममें अपने लाखों रुपये बरबाद करना, जिन्दगी-भर राजसेवामें खून बहाना, इत्यादि सब बातें बेकार हुईं। उनकी दक्षिणकी यात्रा और शासन अत्यन्त अपमान-जनक प्रमाणित हुआ। बादशाहने उन्हें अपने पदसे हटाकर बुलवा भेजा। मेहनत, नुकसान, फिक्र और अपमानका मारा हुआ वह बूढ़ा राजपूत वीर रास्तेमें बुर्हानपुर शहरमें शरीर त्याग २८ अगस्त सन् १६६६ ई० को संसारकी सब तकलीफोंसे मुक्त हो गया।

बादशाहको भागे हुए शिवाजीको सजा देनेका मौका न मिला। सन् १६६६ के सितम्बर मासके पहले ही फारसके राजाकी चढ़ाईके डरसे मुगल-सेनाका एक जबरदस्त दल पंजाबको भेजा गया। और उसके दूसरे साल मार्चके महीनेमें पेशावर प्रान्तमें युसुफजाई-जातिका बलवा हुआ जिससे बादशाहकी सारी फौज बहुत दिनोंतक वहीं अटकी रही।

बादशाह और शिवाजीके बीच फिर सन्धि क्यों हुई ?

देश लौटकर शिवाजीने भी मुगलोंके साथ झगड़ा करना न चाहा। तीन बरसतक वे चुपचाप बैठे रहे। वे अपने राज्यके शासन-संगठन और जमीनके सुप्रबन्ध करनेमें ही लगे रहे। साथ ही कोंकण प्रदेशकी ओर अपना अधिकार भी फैलाते रहे।

इस दशामें बादशाहके साथ मेल रखनेमें ही उनको लाभ था। उन्होंने महाराजा यशवंतसिंहको लिखा—“बादशाहने मुझे त्याग दिया, नहीं तो मेरी इच्छा थी कि उनकी अनुमति ले अपने बाहुबलसे कंदहारका किला छीनकर उनकी भेंट करता। मैं केवल जान बचानेके लिए ही आगरेसे भागा हूँ। मिर्जा राजा जयसिंह मेरे मुरब्बी थे। वे अब नहीं हैं। अब आप बीचमें पड़कर अगर बादशाहसे माफी दिला दें, तो मैं अपने पुत्रके साथ अपनी फौजको दक्षिणके हाकिम कुमार मुअज्जमकी मातहतीमें काम करनेके लिए भेज सकता हूँ।”

युवराज और यशवंत, दोनोंने ही इस प्रस्तावका विशेष रूपसे समर्थन करके

बादशाहको लिखा । औरंगजेब राजी हो गया और उसने शिवाजीको 'राजा' की उपाधि देना मंजूर किया । सन् १६६७ ई० की चौथी नवम्बरको शंभूजीने औरंगाबाद जाकर शाहजादे मुअज्जमके साथ मुलाकत की । आगामी अगस्त महीनेमें प्रतापराव (नये सेनापति) और नीराजीके अधीन शिवाजीकी सेनाका एक दल जाकर शाही अधीनतामें काम करने लगा । उसके लिए शंभूजीको पाँचहजारी मनसबके लायक जागीर बरार-प्रदेशमें दी गई । इसी प्रकार—"दो बरसतक मराठी सेनाने मुगल राज्यकी जमीनसे पेट भरा और शाहजादाको अपना लिया" (सभासद) ।

सन् १६६७-६८-६९ ई० के तीन वर्ष शिवाजीके लिए शान्तिसे बीते । उन्होंने बीजापुर अथवा मुगल-राज्यमें किसी प्रकारका कोई उपद्रव नहीं मचाया । उसके बाद सन् १६७० ई० के शुरूमें ही उनकी बादशाहसे फिर लड़ाई छिड़ गई । इसके कई एक अलग-अलग कारण बताये जाते हैं । एक ग्रंथमें लिखा है कि चुगलखोरोंने औरंगजेबको खबर दी कि शाहजादा मुअज्जम शिवाजीके साथ गहरी दोस्ती करके उनकी सहायतासे स्वाधीन होनेकी कोशिशमें हैं । यह बात सुनकर बादशाहने शिवाजीके लड़के और सेनापतियोंको कैद करनेके लिए मुअज्जमको हुक्म भेजा, लेकिन शाहजादेने विश्वासघात न करके मराठोंको चुपचाप ऐसा इशारा कर दिया जिससे वे औरंगाबादसे अपना दल-बल लेकर रातको भाग गये ।

दूसरा ब्यौरा यह है कि सन् १६६६ ई० में आगरा जानेके लिए शिवाजीको बादशाहने एक लाख रुपये पेशगी दिये थे; अब उसने आदमी बढ़ानेकी कोशिशमें बरारमें दी गई शिवाजीकी नई जागीरको जब्त करके उससे उन रुपयोंको वसूल करनेका हुक्म दिया जिससे बिगड़कर शिवाजी फिर बागी हो गये ।

असली बात यह थी कि इन तीन वर्षोंमें शिवाजीने अपना बल और संगठन दृढ़ कर लिया था तथा राज-काजका अच्छासे अच्छा और पूरा-पूरा बन्दोबस्त कर लिया था । अब उन्होंने देखना चाहा कि लड़ाई छेड़नेसे क्या लाभ होगा ।

सातवाँ अध्याय

शिवाजीकी स्वाधीन राज्य-स्थापना

मुगलोंके हाथसे किला छुड़ाना

औरंगजेबके दरबारसे भागनेके तीन वर्ष बाद (१६६७-१६६९ ई०) तक शिवाजी चुपचाप रहे। परन्तु सन् १६७० ई० के जनवरी महीनेके शुरूमें ही उन्होंने फिर लड़ाई छेड़ दी। दक्षिणके मुगल अफसर लड़ाईके लिए बिलकुल ही तैयार न थे। शिवाजीने चारों ओर बड़े वेगसे आनन-फानन चढ़ाई कर ऐसी गड़बड़ मचाई कि वे एकदम घबरा गये। उनकी मातहतीके कितने ही गाँव लूट लिये गये। पुरन्दरकी सन्धिमें बादशाहको जो तेइस किले मिले थे, उनमेंसे बहुत-से बादशाहके हाथसे निकल गये। मुगल अफसरोंमेंसे बहुतेरे तो अपने-अपने किलों या थानोंमें लड़कर काम आये और जो बाकी बचे, वे हताश हो स्थान छोड़कर भाग गये।

इनमेंसे कोंडाना जीतनेकी कहानी आज भी महाराष्ट्र देशके लोग कहा करते हैं। शिवाजीने अपने बड़े मावले सेनापति और लंगोटिया यार तानाजी मालसरेको इस किलेके ऊपर चढ़ाई करनेको भेजा। ४ फरवरी (माघ कृष्ण नवमी) को तीन सौ चुने हुए मावले सिपाहियोंको लेकर तानाजी अँधेरी रातमें रस्सीकी सीढ़ी लगाकर उत्तर-पश्चिमकी ओरसे पहाड़पर चढ़ गये। वहाँकी जंगली कोली-जातिके लोगोंने उनको गुप्त राह दिखा दी। किलेमें पहुँचकर बादशाही पहरेदारोंको मारकर वे लोग भीतर घुसे। उदयभान और उसके राजपूत-सिपाही किलेकी रखवाली करते थे। 'दुश्मन आया है', यह हल्ला सुनते ही वे उस तरफ आगे बढ़े, लेकिन जाड़ेकी रातमें अफीमखोर राजपूत-सिपाही बिछौना जल्दी नहीं छोड़ सके। इसी बीच मराठोंने किलेके एक हिस्सेपर अच्छी तरह कब्जा कर लिया। जैसे ही राजपूत सैनिकगण उनके सामने पहुँचे वैसे ही मराठे 'हर-हर महादेव' कहते हुए उनके ऊपर टूट पड़े। उदयभानने तानाजीको अकेले द्वन्द्व-युद्धके लिए ललकारा। तानाजीने ललकार स्वीकार कर

ली। दोनों वीर तलवारें लेकर एक-दूसरेपर पिल पड़े, और दोनों ही एक-दूसरेकी तलवारसे मारे गये; लेकिन तानाजीके भाई सूर्याजी सामने आकर बोले—"सैनिको, भाई मर गये लेकिन कुछ डर नहीं है। हम तुम्हारे नेता होंगे।" दूसरी ओर राजपूत सैनिकगण नेताके मर जानेसे कुछ देरके लिए घबरा-से गये। उसी वक्त मराठोंने उनके ऊपर हल्ला बोल दिया। इसी बीचमें किलेका दरवाजा खोल देनेसे मराठे सिपाही सुगम रास्तेसे किलेमें घुस आये। इस लड़ाईमें कोई बारह सौ राजपूत खेत रहे। बहुत-से तो पहाड़के ऊपरसे भागते हुए नीचे गिर पड़े और मर गये।

विजयी मराठोंने किलेके भीतर अस्तबलमें घासके ढेरमें आग लगा दी। पाँच कोसके फासलेपर राजगढ़के किलेसे उस उजालेको देखकर शिवाजी समझ गये कि उनकी जीत हुई। दूसरे दिन जब किला जीतने और तानाजीके मरनेका समाचार मिला, तब वे दुःखके साथ बोले, 'किला तो मिल गया पर सिंह खो गया।' उन्होंने कोंडानेका नाम बदलकर 'सिंहगढ़' रखा और तानाजी-के परिवारको बहुत-कुछ इनाम दिया।

इस प्रकार कोंडाना, पुरन्दर, कल्याण-भिवंडी और माहुली वगैरह बहुत-से किले शिवाजीके हाथ लगे। मुगल सेनापतियोंमेंसे केवल दाऊद खाँ कुरेशीने लड़ाई छेड़कर मराठोंको रोकनेकी कुछ कोशिश की, लेकिन वह अकेला किस-किस तरफ सम्हालता ?

दक्षिणमें मुगलोंका घरेलू झगड़ा

औरंगजेबने शिवाजीकी इस बगावतकी बात सुनते ही और भी बहुत-सी सेना और कई सेनापति महाराष्ट्रको रवाना किये, लेकिन उससे भी कुछ फायदा न हुआ। आपसके घरेलू झगड़ोंके कारण उनकी सब चेष्टाएँ विफल हुईं। दक्षिणके सूबेदार शाहजादा मुअज्जम थे और उनके प्रियपात्र थे यशवन्तसिंह। इन दोनोंके साथ दक्षिणके सबसे बड़े मुगल सेनापति वीर दिलेर खाँकी जानी दुश्मनी थी। उसके ऊपर चुगलखोरोंने बादशाहसे चुगली खाई कि शाहजादा खुद मुख्तार होनेकी कोशिशमें है। एक दल दूसरे दलकी शिकायत बादशाहसे करता था। दिलेरको डर लगा कि अगर वह सूबेदारके साथ भेंट करने जाय तो

कहीं शाहजादा उसे कैद न कर ले। अन्तमें एक दिन (अगस्त, १६७० ई०) गहरी वर्षाके बीच दिलेर खाँ महाराष्ट्र देश छोड़ जान लेकर उत्तरभारतकी ओर भागा। मुअज्जम और यशवन्तने फौज लेकर ताप्ती नदीतक उसका पीछा किया। साथ ही ऐसे नमकहराम अफसरको दबानेके लिए शिवाजीसे भी मदद माँगी।

इसका फल यह हुआ कि चारों ओर शिवाजीकी जयजयकार सुनाई देने लगी। कहीं भी उनको बाधा देनेवाला कोई न था। अँगरेजी कोठीके साहबने लिखा है कि "पहले शिवाजी चोरकी तरह चुपचाप जल्दी-जल्दी चलते थे। अब उनकी वह अवस्था नहीं है। अब वे एक शक्तिशाली फौज ले तीन हजार लड़ाकोंके साथ देश जीतते हुए आगे बढ़ रहे हैं। शाहजादेके इतने नजदीक रहते हुए भी वे उसकी कुछ भी परवाह नहीं करते।"

शिवाजीका दूसरी बार सूरत लूटना

सन् १६७० ई० की तीसरी अक्टूबरको शिवाजीने फिर सूरत बन्दर लूटा। एक महीने पहलेहीसे चारों ओर यह बात सुनाई पड़ती थी कि वे कल्याण शहरमें बहुत-से घुड़सवार इकट्ठा कर रहे हैं और पहले पहल सूरतपर ही चढ़ाई करेंगे। अँग्रेज लोगोंको इस लूटके बारेमें यहाँतक निश्चय था कि उन्होंने पहलेसे ही अपनी सूरतकी कोठीका सब रुपया-पैसा, माल-असबाब और यहाँतक कि काम चलानेवाली सभाके सदस्योंतकको सुहायली भेज दिया था। सूरतके मुगल हाकिम इतने आलसी और अन्धे थे कि इतने बड़े धनी शहरकी रक्षाके लिए उन्होंने सिर्फ तीन सौ निकम्मे निर्बल आदमियोंकी फौज रख छोड़ी थी!

तीसरी अक्टूबरके सबेरे शिवाजी पन्द्रह हजार सेनाके साथ सूरतमें घुसे। उस एक दिन और एक रातमें ही तमाम हिन्दुस्तानी वणिक् और सरकारी अफसर शहर छोड़कर भाग गये। सन् १६६४ ई० की पहली लूटके बाद बादशाहके हुक्मसे सूरतके चारों ओर ईंटकी एक दीवार खड़ी की गई थी, लेकिन वह इतनी रद्दी और मामूली थी कि शिवाजीके पन्द्रह हजार सैनिकोंके सामने इने-गिने तीन सौ मुगल चौकीदार उसकी आड़में खड़े भी नहीं हो सके, और वे किलेके भीतर भाग गये।

दो दिनतक मराठोंने उस सूने शहरको खूब लूटा। डच कोठीमें खबर भेजी—"अगर तुम लोग चुपचाप रहोगे, तो तुम लोगोंका कुछ नुकसान न होगा।" उन लोगोंने वैसा ही किया। फ्रेंच कोठीके साहबोंने कीमती चीजें भेंट देकर मराठोंको खुश किया। सुहायलीसे आये हुए पचास जहाजी गोरोंने, जो प्रसिद्ध स्ट्रेन्सह्याम मास्टरकी मातहतीमें थे, अँग्रेजी कोठीकी रक्षा की। मराठोंका एक दल उसे लूटने गया था, परन्तु अँग्रेजोंकी बन्दूकोंकी अचूक गोलियोंसे उस दलके इतने आदमी शिकार हुए कि फिर उस तरफ आगे बढ़नेकी किसीकी हिम्मत न पड़ी। पारसी और तुर्की बनियोंकी किलोंकी तरह बनी हुई 'नई सराय' भी बच गई।

फ्रेंच कोठीके सामने 'तातार सराय' में काशगरके निकाले हुए सुल्तान अब्दुल्ला खाँ मक्कासे लौटकर कुछ दिन पहलेसे ठहरे हुए आराम करते थे। नजदीकके कुछ पेड़ोंकी आड़से मराठे पहले दिन इस सरायके ऊपर गोली छोड़ने लगे। इससे सरायके भीतर बैठना नामुमकिन हो गया। फल यह हुआ कि सरायके लोग रातको भीतरसे निकलकर भाग गये। मराठोंने सुलतानकी धन-सम्पत्ति, औरंगजेबका दिया हुआ सोनेका पलंग और बहुत-सी कीमती भेंटकी चीजें लूट लीं।

अब मराठोंने बेरोक-टोक बड़े-बड़े मकान लूटे, और सूरतसे ६६ लाख रुपयोंका मालमत्ता लेकर पाँचवीं अक्टूबरकी दोपहरको वे उस शहरसे चल दिए। लूटके बाद उन लोगोंने बहुत-सी जगहोंमें आग भी लगा दी थी जिससे करीब-करीब आधा शहर जलकर खाक हो गया। पहले दिनके धावेमें अँग्रेजोंकी गोलीसे मराठे सैनिक मारे गये थे; इसलिए बदला लेनेके लिए शिवाजीके सिपाही तीसरे दिन अँग्रेजी कोठीके सामने आकर 'कोठी जला देंगे' कहकर चिल्लाने लगे; लेकिन मराठे नेताओंको मालूम था कि फिर आक्रमण करनेसे और भी लोग मारे जायँगे। अन्तमें मराठों और अँग्रेजोंके बीच एक समझौता-सा हुआ। दो अँग्रेज बनियोंने शहरके बाहर शिवाजीके शिविरमें जाकर लाल बनात, तलवारें और अस्त्र उपहारमें दिये। शिवाजी उन लोगोंसे अच्छी तरह पेश आये और उनका हाथ पकड़कर बोले, "अँग्रेज हमारे दोस्त हैं, हम उन लोगोंको किसी तरहकी हानि न पहुँचावेंगे।"

९१
सूरतकी दुर्दशा

सूरत छोड़ते समय शिवाजीने शहरके हाकिम और खास-खास व्यापारियोंके नाम इस मजमूनकी एक चिट्ठी भेजी कि अगर वे उनको हर साल बारह लाख रुपये कर न देंगे तो वे अगले वर्ष शहरके बाकी मकान भी जलाकर खाक कर डालेंगे।

मराठोंके शहरसे बाहर निकलते ही शहरके गरीब, जो भागे नहीं थे, मकानोंमें घुस पड़े और जो कुछ बाकी था, लूटने लगे। अंग्रेजा कोठीके जहाजी गोरोंने भी इस लूट-पाटमें पूरा पूरा भाग लिया।

तीन दिनतक जिस समय सूरतमें लूट हो रही थी उस समय सूरत कोठीके साहब लोग नगरके शाह-इ-बन्दर (जहाजी मालके दारोगा), मुख्य काजी और बड़े-बड़े हिन्दू, मुसलमान तथा आरमेनियन व्यापारियोंने पाँच-छः कोस पश्चिम सुहायली बन्दरमें अँग्रेजोंके गोदाम और कोठीमें पनाह ली। वहाँ भी मराठोंके आनेका दो-एक दिनतक हल्ला उड़ा था, जिससे सब लोग बहुत डरे और घबरा गये, परन्तु अँग्रेजोंने जेटीके किनारे आठ तोपें लगाकर बन्दरको बचानेका बहुत बढ़िया बन्दोबस्त किया था और सौभाग्यवश कोई आपद भी न आई।

इस प्रकार इने-गिने विदेशी दूकानदारोंने तो मराठोंको तुच्छ समझकर अपना बल दिखाया पर 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'के हाकिम और फौजके लोग डरके मारे भाग गए! यह दृश्य देख देशके लोग चकरा गये। सूरतके सबसे बड़े महाजन हाजी सैयद बेगके लड़केने सुहायलीमें शरण मिलनेपर कहा था कि हम बाल-बच्चोंके साथ बम्बई चले जायँगे, अब बादशाही राज्यमें न रहेंगे।

एक कहावत है : बाघ जिसको घायल करके छोड़ देता है वह आदमी यदि बादमें बच भी जाय, तो भी मुर्देके समान हो जाता है। शिवाजीकी दो-दो बारकी लूटके बाद सूरतकी भी वही हालत हुई। शिवाजी इधर आ रहे हैं, मराठी सेना सूरतसे पचास कोस दक्षिणकी ओर कोली-देशमें घुस गई है,—ऐसी अफवाहें आये दिन सूरत पहुँचने लगीं। लोग शहर छोड़कर भागने लगे। देखते-देखते वह बड़ा बन्दर रेतीले मैदानकी तरह सुनसान जन-विहीन हो

गया। अँग्रेज और दूसरे यूरोपियन व्यापारी अपनी कोठी खाली कर रुपये और असबाब जल्दी-जल्दी सुहायली भेजने लगे।

हर साल ऐसा ही होने लगा। इसका नतीजा यह हुआ कि भारतके सबसे बड़े बन्दरका व्यापार और वैभव, दोनों हमेशाके लिए लुप्त हो गए।

डिंडोरीकी लड़ाई

५वीं अक्टूबरको सूरत छोड़कर शिवाजीने दक्षिण-पूर्व बगलाना प्रदेशमें प्रवेश किया और मुल्हेर किलेके नीचेके सब गाँव लूट लिये। इसी बीचमें शाहजादा मुअज्जम दिलेर खाँका पीछा करता हुआ बुर्हानपुरके पासतक जा पहुँचा। वहाँसे उसे बादशाहके हुक्मसे औरंगाबाद लौटना पड़ा। औरंगाबाद लौटनेपर उसे दूसरी बारकी सूरतकी लूटका पता लगा। उसने उसी दम दाऊद खाँको मराठोंके विरुद्ध भेजा। दाऊद खाँने चन्दौर किलेके पास पहुँचकर सुना कि वहाँसे पाँच कोस पश्चिमकी ओर, लम्बे पहाड़के बीच, एक छोटे रास्तेसे शिवाजी बगलानासे उतरकर उत्तर-महाराष्ट्रमें (नासिक जिलेमें) घुसेंगे। आधी रातको मुगलोंके चरोंने पक्की खबर दी कि शिवाजी इस घाटीको पारकर आधी फौजके साथ नासिककी ओर बढ़ रहे हैं, और उनकी बाकी आधी फौज असबाब और पृष्ठ-रक्षाके लिए इसी पहाड़की घाटीमें खड़ी है।

दाऊद खाँ उसी समय आगे बढ़े। वह कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीका दिन था। तीसरे पहर रातको चाँद डूबा। अँधेरेमें मुगल फौज पहाड़ पारकर इधर-उधर छितरा गई। अग्रभागके नेता थे प्रसिद्ध बहादुर पठान इखलास खाँ मियाना। सबेरा होते ही (१७ अक्टूबरको) उन्होंने एक छोटे पहाड़के ऊपरसे देखा कि नीचेकी भूमिमें मराठा सैनिक लड़ाईके लिए तैयार उनकी ओर मुँह फेरे खड़े हैं। मुगल सिपाही ऊँटोंसे उतरकर हथियार उतारकर साज-समान ठीक करने लगे, लेकिन इखलास खाँको यह देर बिलकुल अच्छी न लगी। वे थोड़े-से आदमियोंको साथ ले शत्रुओंपर जा टूटे, परन्तु मराठे आठ हजार थे और उनके बड़े-बड़े नेता प्रतापराव (सेनापति), आनन्दराव इत्यादि भी मौजूद थे। इखलास खाँ शीघ्र ही घायल हो घोड़ेसे गिर पड़े। कुछ देर बाद दाऊद खाँ भी आ पहुँचा और साथ ही बहुत-से सैनिक भी आ गए।

सबेरेसे लेकर छः-सात घण्टेतक बड़े जोरकी मार-काट होती रही। मराठे योद्धा मुगलोंके चारों ओर घोड़ा दौड़ा इस प्रकार घूमने लगे, मानों इनके सब रास्ते ही रोक देंगे। दाऊद खाँके दलके बहुत-से सैनिक मारे गये और बहुत-से घायल हुए, लेकिन बुन्देला राजपूतोंकी बन्दूकोंके डरके मारे मराठे नजदीक नहीं आये। अन्तमें दाऊद खाँने खुद रणभूमिमें आकर तोपोंके बलसे शत्रुओंको भगाकर अपने पक्षके घायलोंको बचाया।

दोपहरके समय दोनों ओरके सैनिकगण थक गये और लड़ाई बन्द कर भोजन करने चले गये। परन्तु सन्ध्याके पहले ही मराठे फिर चढ़ाई कर बैठे। मराठे थे आठ हजार और दाऊद खाँके साथ थे केवल दो हजार आदमी, फिर भी तोपोंके जोरसे शाही दलकी रक्षा हुई। रातको मराठी सेना कोंकणकी ओर चली गई। अबतक मराठोंका काम समाप्त हो गया था, एक दिन और एक राततक मुगलोंको वहाँ रोककर उन्होंने सूरत और बगलानाकी लूटकी चीजें मजेमें अपने देश पहुँचा दी थीं।

डिण्डोरीकी लड़ाईका फल यह हुआ कि एक महीनेसे भी अधिक कालतक मुगल कुछ कर-धर न सके। दाऊद खाँ घायल लोगोंको लेकर नासिक, औरंगाबाद और अहमदनगरमें जाकर आराम करने लगा, लेकिन इस साल (सन् १६७० ई०) के अन्तमें उन्हें फिर उसी जगह आना पड़ा।

बरार और बगलानाकी पहली लूट

सूरतकी लूटके बाद मराठे डेढ़ महीनेतक चुपचाप रहे, लेकिन सन् १६७० ई० के दिसम्बरके शुरूमें शिवाजी फिर फौजके साथ बाहर निकले। रास्तेमें चन्दौरगिरिकी चोटियोंमें अहिवन्त और कई एक ऊँचे पहाड़ी किले जीतकर वे बगलाना होते हुए तेजीसे खानदेश प्रदेशमें जा घुसे, और उसकी राजधान बुर्हानपुर शहरके बाहरके सब गाँव लूट लिये। फिर शीघ्र ही पूर्वकी ओर घूमकर बरारके उपजाऊ और धनी प्रदेशपर चढ़ाई कर दी। आजतक मराठे इतनी दूर कभी नहीं आये थे, इसीलिए बरारका कोई भी व्यक्ति इस आकस्मिक विपत्तिके लिए तैयार नहीं था। शिवाजीने बिना रोक-टोक मनमाने ढंगपर कारंजा नामके

बड़े धनी शहरसे एक करोड़ रुपयेकी धन-सम्पत्ति, गहने और कीमती कपड़े वसूल किये। लूटका माल चार हजार बैलों और गधोंपर लादा गया और शहरके प्रायः सभी धनिकोंको रुपये वसूल करनेके लिए* कैद कर शिवाजी बरारके दूसरे शहरोंको लूटनेके लिए चले गये। वहाँ भी उन्होंने खूब धन लूटा। अन्तमें सब जगहके लोगोंने मारे डरके शिवाजीको लिखा कि "हम लोग प्रति वर्ष आपको चौथ (शाही माल-गुजारीका चौथा हिस्सा) दिया करेंगे।"

जैसी चाहिए वैसी बाधा मुगल नहीं दे सके। बरारके बादशाही सूबेदार आलसी और नवाबी चालसे धीरे-धीरे चलनेवाले थे। दूसरी ओर खानदेशके सूबेदार और शाहजादे मुअज्जमके बीच ऐसी अनबन थी कि दोनोंमें मुठभेड़ होनेतककी सम्भावना थी।

शिवाजी जिस समय स्वयं बरार गये, उस समय उनकी मराठी फौजका एक दल पेशवा मोरो त्र्यम्बकके अधीन पच्छिम खानदेश लूट रहा था। बरारसे लौटकर शिवाजी फिर बगलाना आये, उस समय उस दलने उनके साथ मिलकर साल्हेर नामक किलेको (५ जनवरी १६७१ ई०) जीता और मुल्हेर, धोड़प इत्यादि दूसरे बड़े-बड़े पहाड़ी किलोंको घेर लिया। बहुत से गाँवोंको लूटा और अन्नका आना-जाना रोक दिया। नतीजा यह हुआ कि इस प्रान्तके मुगल घबरा उठे। उन लोगोंमें न तो अपनी रक्षा करनेका बल ही था और न उनका कोई बड़ा नेता ही था।

शिवाजीकी बुन्देला छत्रसालसे भेंट

सन् १६७० ई० के अन्तमें जिस समय यह लड़ाई जारी थी, उसी समय सुप्रसिद्ध बुन्देला वीर, राजा चम्पतरायके पुत्र, छत्रसाल शिवाजीसे भेंट करने आये। छत्रसालने बादमें पन्नाका राज्य और छत्रपुर शहर स्थापित किये थे।

---

* परन्तु कारंजाके सबसे धनी महाजन नहीं पकड़े गये। वे औरतका वेश धरकर साफ भाग गये। उनको मालूम था कि जिस जगह शिवाजी खुद मौजूद हों, वहाँ औरतके ऊपर हाथ डालनेकी कोई मराठा हिम्मत नहीं करेगा।

छत्रसाल बहुत दिनतक राज्य करके सन् १७३१ ई० में मरे, परन्तु इस समय सन् १६७० ई० में वे केवल एक धन-वैभवहीन नौजवान ही थे और दक्षिणमें मुगल फौजमें कम वेतनके एक मनसबदार थे। इस नौकरीसे ऊबकर छत्रसाल एक दिन शिकारके बहाने अपनी स्त्रीके साथ मुगल खेमेसे निकल पड़े और विकट रास्तेसे महाराष्ट्र पहुँचकर शिवाजीके अधीन बादशाहके विरुद्ध लड़नेके लिए सेनापतिका पद चाहा, परन्तु शिवाजी दक्षिणियोंको छोड़ भारतके किसी अन्य प्रान्तके लोगोंका विश्वास नहीं करते थे और न उन्हें ऊँचा पद ही देते थे। उन्होंने छत्रसालको यह कहकर विदा किया—"वीरवर, जाओ, जाओ, अपना देश अधिकार कर वहींपर राज्य स्थापित करो और शत्रुओंको जीतो। तुमको वहीं जाकर युद्ध करना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे कुलके नामपर बहुत-से लोग तुमको मदद देंगे। अगर मुगल तुमपर धावा करेंगे, तो हम इधरसे उनके ऊपर टूट पड़ेंगे, और इस तरह दो शत्रुओंके बीच पड़नेसे वे सहजमेंही परास्त होंगे।" छत्रसाल खिन्न हो लौट गये।*

शिवाजीका बगलानापर अधिकार करना

सन् १६७० ई० में सालभरतक शिवाजीका विलक्षण तेज, उनकी अनोखी तेजी, उनका विभिन्न दिशाओंमें जीतना और दूर-दूरके प्रदेशोंको लूटना आदि देखकर बादशाह औरंगजेब बड़े फेरमें पड़े। पहले तो उन्होंने महाबत खाँको दक्षिणका मुख्य सेनापति नियुक्त किया और उनके साथ दाऊद खाँको रख दिया। साथ ही राजा अमरसिंह चन्द्रावतको बहुत-सी राजपूत फौज, रुपया-पैसा और रसद देकर महाबतके पास महाराष्ट्र भेजा।

महाबत खाँ १० जनवरी सन् १६७१ ई० को औरंगाबाद पहुँचकर कुछ दिन बाद चन्दौर जिलेमें गया। बस, इसी बीच उसमें और उसके मददगार दाऊद खाँमें लड़ाई हो गई। तीन महीनेतक मुगल यहाँ भी कुछ कर-धर न सके। यद्यपि (दिसम्बरके अन्तमें) शिवाजी धोड़प-किलेके धावेमें विफल हुए थे, परन्तु दूसरे ही महीने उन्होंने साल्हेर किलेको जीत लिया। मार्च मासके शुरूमें

* इन्होंने पीछे क्या किया, उसका विवरण हमारी 'History of Aurangzib' Vol. 5, Ch. 61 में, Irvine's 'Later Mughls' Vol, II, Ch. 9 में, और रघुवीरसिंह-कृत 'मालवामें युगान्तर' में यथास्थान दिया है।

दाऊद खाँने मराठोंके हाथसे अहिवन्तगढ़ छीन लिया। उसकी इस सफलताने महाबत खाँको डाहसे पागल कर दिया, परन्तु उसके बाद फिर मराठोंसे लड़ाई नहीं हुई। मुख्य सेनापति फौजके साथ नासिक और उसके बाद पारनेर शहरमें छः महीनेतक आराम करते और तवायफोंका नाच देखते रहे।

यह सब समाचार सुनकर बादशाहने क्रुद्ध हो १६७१ ई० के अक्टूबर महीनेमें बहादुर खाँ और दिलेर खाँको गुजरातसे महाराष्ट्र भेजा। ये दोनों नामी सेनापति साल्हेर किलेको रोकनेके लिए इखलास खाँ मियाना, राजा अमरसिंह चन्द्रावत और दूसरे कर्मचारियोंको भेजकर खुद अहमदनगरसे होते हुए पूना जिलेपर आक्रमण करने चले। दिलेर खाँने पूनापर कब्जा किया और नौ वर्षसे कम उम्रवाले बालकोंको छोड़कर बाकी सब लोगोंकी हत्या करवाई; फिर भी इसके एक ही महीने बाद मुगलोंने जबरदस्त हार खाई। बगलानामें मुगलोंका जो दल साल्हेर किलेको घेरे हुए था उसपर सन् १६७२ ई० की जनवरीके अन्तमें मराठोंके प्रधान सेनापति प्रतापराव, दूसरे सेनापति आनन्दराव और पेशवा मोरो त्र्यम्बकने अनगिनित फौज ले अकस्मात् आक्रमण किया। मुगलोंका दल जी-जानसे लड़ा, पर संख्यामें कम होनेसे कुछ न कर सका। राजा अमरसिंह, अन्य बहुत-से सेनापति और हजारों मामूली सिपाही मारे गये। साथ ही अमरसिंहके पुत्र मुहकमसिंह, इखलास खाँ और तीस प्रधान कर्मचारी मरे और कैद हुए। उनका सारा माल-मत्ता और तोपें मराठोंके हाथ आईं।

उसके बाद ही पेशवाने मुल्हेर किला जीता। इससे सारे बगलाना प्रदेशमें मराठोंका निष्कंटक आधिपत्य हो गया। बगलाना सूरतके रास्तेमें है। चारों ओर शिवाजीके नामका आतंक छा गया; सब डरके मारे काँपने लगे। दोनों मुगल सेनापति (बहादुर खाँ और दिलेर खाँ) लड़ाईमें हारकर शर्मके मारे सिर नीचा किये हुए अपनी सीमाके अन्दर अहमदनगरको लौट आये। पूना और नासिकके जिले (मराठोंके देश) मुगलोंसे खाली हो गये।

इधर मार्च महीनेमें सतनामी विद्रोह और अप्रैलके महीनेमें खैबर घाटीके पठानोंके साथ लड़ाई छिड़ जानेसे औरंगजेब इतना व्यस्त हो गया कि कुछ दिनतक उसका दक्षिणके लिए रुपये और फौज भेजना बिलकुल असम्भव

हो गया। जून महीने (सन् १६७२ ई०) में शाहजादा मुअज्जमकी जगहपर बहादुर खाँ दक्षिणका हाकिम नियुक्त हुआ। शाहजादा और महाबत खाँ दोनों उत्तरभारतमें बुला लिये गये।

कोली देशपर अधिकार

शिवाजीके नामकी जय-जयकार अब चारों ओर सुनाई पड़ती थी। सूरतसे दक्षिणमें बम्बईकी तरफ आनेमें जो पहाड़ी और जंगली देश पड़ता है, उसमें कोली नामक एक लुटेरी जाति रहती है। उस समय यहाँ दो छोटे-छोटे राज्य थे—धरमपुर (राजधानी रामनगर, वर्तमान नाम 'नगर', सूरतसे ६० मील दक्षिणमें है) और जौहर (रामनगरसे ४० मील दक्षिणमें है)। इस रामनगरके ठीक पूर्वकी ओर सह्याद्रि पार होनेपर नासिक जिला या उत्तर-महाराष्ट्र पड़ता है। सन् १६७२ ई० की पाँचवीं जूनको पेशवा मोरो त्र्यम्बकने जौहरपर अधिकार कर लिया। वहाँके राजा विक्रमशाह मुगल राज्यमें भाग गये। इसके कुछ दिन बाद मराठोंका रामनगरपर भी कब्जा हो गया। वहाँके राजा सोम-सिंहने पुर्तगाली शहर दामनमें आश्रय लिया।

मराठोंका अड्डा नजदीक जमनेके कारण सूरत शहर डरके मारे काँपने लगा। रामनगरसे पेशवाने सूरतके हाकिम और मुख्य महाजनोंके नाम लगातार तीन पत्र भेजकर उनसे चार लाख रुपया कर-स्वरूप चाहा और यह धमकी दी कि इतना रुपया न देनेपर वे सूरतपर कब्जा कर लेंगे। आखिरी चिट्ठीमें शिवाजीकी ओरसे यह लिखा गया था, "यह तीसरी और आखिरी बार हम तुम लोगोंसे कहते हैं कि सूरत प्रान्तकी मालगुजारीका चौथाई हिस्सा यानी चौथ हमारे पास भेजो। तुम्हारे बादशाहने हमें अपने देश और अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए भारी फौज रखनेको मजबूर किया है, इसलिए शाही रैयत ही इस फौजका खर्चा देगी। यदि ये रुपये जल्दी न भेज सको, तो हमारे लिए वहाँ एक बड़ा मकान तैयार कर रखो; क्योंकि हम वहाँ आकर रहेंगे और सूरतकी मालगुजारी तथा वहाँ आने-जानेवाली चीजोंपर चुंगी वसूल करेंगे। इस बातमें हमें बाधा दे सकनेवाला तुम लोगोंमें कोई भी आदमी नहीं है।"

इसी चिट्ठीके बाद सूरतमें सलाहके लिए एक सभा बैठी। शहरके बाशिन्दे

और आसपासके गाँवोंके मुखियोंपर तीन लाख रुपये चन्दा वसूल करनेका भार पड़ा, पर बहुत विचारके बाद लोगोंने कुछ भी न दिया, क्योंकि वे भली-भाँति जानते थे कि शहरका मुगल हाकिम ये रुपये खा जाएगा, शान्त करने के लिए मराठोंको वह कुछ भी न देगा।

उसके बाद जितनी बार मराठोंके आनेका ऐसा समाचार मिलता सूरतके लोग भागनेका रास्ता ढूढ़ते फिरते थे। यही कांड अनेक वर्षोंतक चलता रहा।

सन् १६७२ ई० के जुलाई महीनेमें पेशवाने नासिक जिलेमें घुसकर लूटना आरम्भ कर दिया। वहाँके दो मुगल थानेदार हारकर भाग गये। अक्टूबर और नवम्बरमें मराठे घुड़सवार तेजीसे बरार और तेलिंगानेमें घुसकर रामगिर जिलेको लूटने लगे। मुगल सेनापति बहादुर खाँ किसी तरह भी उन्हें न पकड़ सका। मराठे शीघ्र ही अपने देशको लौट आये, लेकिन मुगलोंने दूरतक पीछा करके उनके हाँथसे लूटे हुए बहुत-से घोड़ और महाजनोंका माल छीन लिया। औरगाबादके पास एक छोटी-सी लड़ाईमें मराठे हार गये। इसी कारण उनकी इस बारकी बरारपर चढ़ाई करीब बिलकुल ही विफल हुई।

बीजापुरके साथ शिवाजीका सन्धि-भंग करना

अगले साल (सन् १६७३ ई० मे) महाराष्ट्रमें कोई लड़ाई अथवा विशेष हानि-लाभ नहीं हुआ। सूबेदार बहादुर खाँ भीमा नदीके किनारे पेड़गाँवमें डेरा डालकर घाटके रास्तेपर पहरा देने लगा।

इसी साल शिवाजीने अपना जन्मस्थान शिवनेरी किला लेनेकी चेष्टा की। औरंगजेबने इस किलेको अब्दुल अजीज खाँ नामक एक ब्राह्मण मुसलमानके जिम्मे कर रखा था। वह जैसा विश्वासी था, वैसा ही चालक और चतुर भी था। शिवाजीने उसको 'पहाड़के बराबर रुपयोंका स्तूप' घूसमें देना चाहा। उसने भी उसे स्वीकार करनेका बहाना करके एक रातको किला छोड़ देनेका वादा किया। उस रातको शिवाजीकी सात हजार फौज किलेके पास पहुँची, परन्तु अब्दुल खाँने इसी बीचमें बहादुर खाँको चुपचाप खबर दे दी। मराठे अपने-आप ही फन्देमें फँस गये। उनमेंसे बहुतेरे मरे, अनेकों जखमी हुए और बाकी सब हताश हो लौट गये।

परन्तु दूसरी ओर शिवाजीके लिए एक बड़े सुयोगका मार्ग खुल गया। २४ वीं नवम्बर (सन् १६७२ ई०) को बीजापुरके सुलतान अली आदिलशाह द्वितीय मर गये, और उनकी जगह एक चार वर्षका बालक सिकन्दर सुलतान हुआ। उसका अभिभावक कौन बने, इस बातपर बीजापुरके बड़े-बड़े रईसोंके बीच एक भारी झगड़ा उठ खड़ा हुआ। सारे राज्यमें विद्रोहके लक्षण दिखाई पड़ने लगे। बीजापुरके नये वजीर खवास खाँके साथ शिवाजीने अब पहलेका-सा सद्भाव न रखकर उसके राज्यमें भी उपद्रव करना शुरू कर दिया।

पनहालेकी विजय

सन् १६७३ ई० की ६ठी मार्च (फाल्गुन कृष्णपक्षकी त्रयोदशी) की रातको कोंडाजी फर्जन्द साठ चुने हुए मावले सिपाही लेकर चुपचाप पनहाला-किलेके ऊपर चढ़ गये। उनके सिपाहियोंने हाथ पकड़-पकड़कर एक-दूसरेका उस करारे पहाड़के ऊपर खींच लिया। चोटीपर पहुँचकर वे चार दलोंमें विभक्त हो चारों ओरसे ढोल पीटकर किलेके बीचसे हाँककर दौड़े। कृष्णपक्षकी गहरी अँधेरी रातके गहरे सन्नाटेमें, बाहरकी समतल भूमिसे नहीं बल्कि किलेके भीतर ठीक बीचसे यह आकस्मिक आक्रमण देखकर किलेके रखवालोंके होशहवास गायब हो गये। लोग चारों ओर दौड़ने और भागने लगे। कोंडाजीने खुद किलेके मालिकको तलवारसे मार डाला। खजानची नागाजी पंडित इस शोरगुलको सुन अपने घरसे बाहर निकले, और एक पहरेवालेसे पूछा, "मामला क्या है?" वह बोला, "अरे महाराज, क्या आप जानते नहीं, मराठोंने किला ले लिया और किलेके मालिक यहाँ पड़े हैं?" अब तो नागाजी सब-कुछ छोड़-छाड़कर जल्दीसे भागे; कहीं वे पकड़ लिये जाते, तो उनको भी मारकर रुपये वसूल किये जाते!

अब नीचेसे सैकड़ों मराठे सिपाही किलेमें घुसे। धीरे-धीरे सबेरा हुआ। किला पूरी तरह शिवाजीके हाथमें आ गया।* मराठोंने बीजापुरके कर्म-

---

* 'जेधे शकावली' में लिखा है कि शिवाजीने घूस देकर किलेके एक ओरके पहरेदारोंको मिलाकर पनहाला दखल किया था। हमें भी यह बात सत्य मालूम होती है, क्योंकि ऐसे अजेय किलेकी रक्षाके लिए जैसा चाहिए वैसा प्रयत्न नहीं हुआ।

चारियोंको पीट-पीटकर उनकी निजी और सरकारी गुप्त धन-सम्पत्तिका पता लगाकर सबपर कब्जा कर लिया। विजयकी खबर पाते ही शिवाजीने शीघ्र ही स्वयं आकर किलेको देखा, वहाँ एक महीना ठहरकर उसकी दीवारें मजबूत कीं तथा और भी तोपें मँगवाकर पनहालेको अपना अजेय आश्रय-स्थान बनाया। कुछ दिनके बाद पारली और सताराके किले भी उनके हाथ लगे।

उमराणीकी लड़ाई

इतने किले हाथसे निकल जानेके कारण बीजापुरकी राज-सभामें बड़ी खल-बली मची। नये वजीर खवास खाँकी बेखबरीसे यह सब हानि हुई है, यह कहकर सब कोई उन्हींको दोष देने लगा। बहलोल खाँ पनहाला-उद्धारके लिए भेजा गया और तीन बड़े-बड़े सेनापतियोंको दूर-दूरके प्रदेशोंसे अपनी-अपनी फौजके साथ आकर बहलोलकी सहायता करनेका हुक्म भेजा गया।

किन्तु सहायता पहुँचनेके पहले ही शिवाजी बहलोलके ऊपर जा टूटे। शिवाजीके प्रधान सेनापति प्रतापराव पन्द्रह हजार घुड़सवारोंके साथ चुपचाप दो रात बड़ी तेजीसे चलकर, (बीजापुर शहरसे १८ कोसकी दूरीपर, पश्चिममें) उमराणी नामक गाँवमें पहुँचे और उन्होंने बहलोलकी फौजको एकाएक चारों ओरसे घेर लिया, यहाँतक कि उसके पानी लानेवाले एकमात्र रास्तेको भी (१५ अप्रैलको) बन्द कर दिया। दूसरे दिन सवेरे मराठोंके दलके दल समुद्रकी लहरोंकी तरह बार-बार बीजापुरी फौजके ऊपर टूट पड़ने लगे और सारे दिन लड़ाई चलती रही। बहुत-से मरे, बहुत-से घायल हुए। बहलोलकी अफगान फौजने जी-जानसे लड़कर अपनी जगहकी रक्षा की। अन्तमें शाम हो गई और दोनों पक्ष थककर अपने अपने खेमेमें गये, लेकिन बीजापुरियोंको प्यास बुझानेके लिए एक बूँद भी पानी न मिला।

तब बहलोलने चुपचाप प्रतापरावको बहुत-सा रुपया घूस देकर कहला भेजा "हमें भाग जानेके लिए एक रास्ता छोड़ दो। तुम लोग हमारे खेमेंकी सब चीजें ले लेना।" और वैसा ही किया गया।

बहलोल रातों-रात दुश्मनके मोर्चोंके बीचकी एक खुली जगहसे कूच कर बीजापुर लौट गया। बहलोलके छुटकारेकी बात सुनकर शिवाजी क्रोधित हुए, प्रतापरावके ऊपर बहुत बिगड़े।

उसके बाद कुछ महीनोंतक कन्नड़-प्रदेशमें लड़ाई चलती रही परन्तु किसी तरफ भी कोई महत्त्वपूर्ण बात न हुई। शिवाजी बे-रोकटोक चारों ओर लूट-मार करने लगे। १० अक्टूबर, विजयादशमीके दिन शिवाजी स्वयं कनाड़ापर चढ़ाई करनेके लिए रवाना हुए, लेकिन दो महीनेके बाद ही बीजापुरियोंने उन्हें वहाँसे वापिस लौटनेको मजबूर किया। यों इस बार उनको कुछ लाभ न हुआ।

सेनापति प्रतापरावकी मृत्यु

इस हारके अपमानको मिटानेके लिए सन् १६७४ ई० के जनवरी महीनेमें शिवाजीने प्रतापरावको बुलाकर कहा, "देखो, बहलोल हमारे राजमें बार-बार आता है। तुम फौज लेकर जाओ और इस बार उसे सदाके लिए हरा आओ। नहीं तो फिर कभी हमें अपना मुँह न दिखाना।"

स्वामीकी ऐसी कड़ी बातसे बिगड़कर प्रतापराव बहलोलकी खोजमें निकले और कोल्हापुरसे ४५ मील दक्खिनमें घाटप्रभा नदीसे कुछ दूर नेसरी गाँवमें उसे जा मिले। बीजापुरी फौजको देखते ही प्रतापरावने दाहिने-बायेंका कुछ भी विचार न किया और वे सरपट घोड़ा दौड़ाकर उसपर टूट पड़े। सिर्फ छः अनुचर उनके साथ थे, बाकी फौज इस पागलपनको देख पीछे ही रह गई। लेकिन प्रतापरावकी दृष्टि पीछेकी ओर नहीं थी, उन्हें बात सुननेकी भी फुर्सत नहीं थी; दो पहाड़ोंके बीचसे जानेवाला एक छोटा-सा रास्ता ही उनके सामने था। उस ओर बहलोलके आदमी खड़े थे। उस घाटीमें प्रतापराव घुस गये और दुश्मनोंसे घिरकर अपने छः साथियोंके साथ शीघ्र ही मारे गये। अब तो बीजापुरी फौज जीतके उल्लासमें मराठोंके ऊपर टूट पड़ी और उनमेंसे बहुतोंको मार गिराया और खूनकी नदी बह चली (२४ फरवरी, १६७४ ई०)।

अन्य लड़ाइयाँ

आनन्दरावने पराजित, हिम्मत हारी हुई मराठी फौजको साहस देकर फिर इकट्ठा किया। शिवाजीने उन्हें सेनापति नियुक्त कर लिख भेजा, "दुश्मनको न हरा सको, तो जीते मत लौटना।" आनन्दराव अपने घुड़सवारोंको लेकर बीजापुर राज्यके भीतर घुस गये। दिलेर खाँ और बहलोल खाँ दोनोंने मिलकर उनका रास्ता रोका; तब तो आनन्दराव प्रतिदिन ४५ मीलके हिसाबसे इतनी

तेजीसे कनाड़ाकी ओर चले कि दोनों ही खाँओंने हार मानकर उनका पीछा करना छोड़ दिया।

आनन्दराव दक्षिणकी ओर घूमकर कनाड़ामें घुसे थे; वहाँ सॉपगाँव शहरके बाजारकी लूटसे (२३ मार्चको) साढ़े सात लाख रुपये उनके हाथ लगे। वहाँसे दस कोसकी दूरीपर बंकापुर शहरके पास उन्होंने बहलोल खाँ और खिजिर खाँके अधीन बीजापुरी फौजके एक दलको हरा दिया। इस जीतमें उन्होंने पाँच सौ घोड़े, दो हाथी और दुश्मनकी और भी बहुत-सी धन-सम्पत्ति छीन ली, परन्तु बहलोल फौरन लौटकर बड़ी तेजीसे उनके ऊपर टूट पड़ा। मराठोंने एक हजार घोड़े और लूटके मालमेंसे कुछ चीजें छोड़कर भार हलका किया और लूटकी बाकी चीजें ले सही-सलामत अपने देशको लौट आये।

आठवीं अप्रैलको शिवाजीने चिपलूण शहरमें इन विजयी फौजोंका मुआयना किया और उन्हें बहुत-कुछ इनाम भी दिया; और हंसाजी मोहितेको 'हम्बीरराव' की उपाधि दे प्रतापरावकी जगह उन्हें सबसे बड़े सेनापतिके पदपर नियुक्त कर दिया।

सन् १६७६ ई० के दिसम्बरसे लेकर अगले वर्षके मार्च महीनेतक कोंकण और दूसरी जगहोंमें लड़ाई बहुत धीरे-धीरे चलती रही। दोनों ही तरफकी फौजोंने थककर और ऊबकर युद्धमें काफी जी नहीं लगाया। उनके नेताओंने भी युद्ध करके झगड़ा निपटानेसे लूट-खसोटमें ही अधिक आमदनी देखकर उसी ओर ध्यान दिया। इस साल जाड़ेमें बहुत वर्षा होनेसे महाराष्ट्रमें महामारी फैल गई, जिससे बहुत-से घोड़े और आदमी मर गये।

उधर बादशाह औरंगजेबने ७ अप्रैल (१६७४) को दिल्लीसे रवाना हो उत्तर-पश्चिममें अफगान सरहदके लिए कूच किया, क्योंकि खैबर घाटीकी पहाड़ी अफरीदी जातिने वहाँ घोर विद्रोह मचा रखा था। दिलेर खाँ भी दक्षिणसे बुलाया गया। अब तो दक्षिणमें अकेला बहादुर खाँ रह गया। उसके पास फौज भी इतनी थोड़ी थी कि उसे लेकर कुछ करना असम्भव था। इसी मौकेपर शिवाजीने बड़ी धूमधामसे अपने राज्याभिषेकका कार्य पूरा किया।

आठवाँ अध्याय

शिवाजीका राज्याभिषेक

अभिषेककी आवश्यकता

शिवाजीने बहुत-से देश जीते और प्रचुर धन इकट्ठा किया, परन्तु उन्होंने अबतक अपनेको 'छत्रपति' यानी स्वाधीन राजा घोषित नहीं किया था जिससे उन्हें बहुत-कुछ असुविधा और नुकसान हो रहा था। एक तो अन्य राजा उनको बीजापुरके आश्रित एक जमींदार अथवा जागीरदार-मात्र ही समझते थे और बीजापुरके हाकिमोंकी निगाहमें वे विद्रोही प्रजा-मात्र थे; दूसरे, अन्य मराठे जमीदार भोंसलोंको अपनेसे किसी भी अंशमें बड़ा मानते न थे, बल्कि उनमेंसे बहुत से पुराने घर (जैसे मोरे, यादव, निम्बालकर इत्यादि) शाहजी और शिवाजीको ऐरा गैरा अकुलीन कहकर उनकी अवहेलना ही किया करते थे। उधर शिवाजीकी प्रजा भी बड़ी कठिनाईमें पड़ गई थी, क्योंकि जबतक शिवाजी स्वाधीन राजा न कहलावें, तबतक प्रजा नियमानुसार शिवाजीका हुक्म माननेको बाध्य न थी। इसी प्रकार शिवाजीका भूमि-दान और सनद आदि भी नियमानुसार प्रमाण नहीं मानी जाती थी।

इन्हीं सब कारणोंसे शिवाजीने अपना अभिषेक कर 'छत्रपति' की उपाधि ग्रहण की, और दुनियाको यह घोषित कर दिया कि वे एक स्वाधीन राजा हैं। उनकी प्रजा अब उनको ही स्वामी मानेगी और किसी दूसरे मालिकके अधिकारको स्वीकार न करेगी। इसके सिवा महाराष्ट्रके अनेकों उत्साही देशभक्त अपने देशमें स्वाधीन हिन्दू राज्य—'हिन्दवी स्वराज्य' स्थापन करनेके लिए बड़े उत्सुक थे। उस समय केवल शिवाजी ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो इस जातीय इच्छाको पूरा कर सकते थे।

अभिषेकका प्रबन्ध

परन्तु शास्त्रके अनुसार क्षत्रियको छोड़ दूसरी जातिका कोई भी आदमी राजा नहीं हो सकता था; और उन दिनों समाजमें भोंसले वंशको लोग शूद्र ही मानते

थे। शिवाजीके मुंशी बालाजी आबाजीने (जो मराठा-जातिके सबसे बड़े पंडित थे) काशीवासी विश्वेश्वर भट्टको (जो गागा भट्टके नामसे पुकारे जाते थे) बहुत-सा रुपया देकर अपने हाथमे किया। भट्टजीने शिवाजीको क्षत्रिय सिद्ध कर दिया। शिवाजीके आदिपुरुष सूर्यवंशीय क्षत्रिय चित्तौरके महाराणाके पुत्र थे, इस बातको स्वीकार कर उन्होंने इस आशयका एक कागज भी लिख दिया और शिवाजीके अभिषेकका प्रधान पुरोहित होना भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। गागा भट्ट दिग्विजयी पंडित थे, वे "चारों वेद, षट्शास्त्र और योगाभ्यासके ज्ञाता, ज्योतिषी, मन्त्रोंके ज्ञाता, सब विद्याओंके पारदर्शी विद्वान् और कलियुगके ब्रह्मवेद थे," (सभासद बखर)। उनके साथ वादविवाद कर सकनेवाला महाराष्ट्रमें उस समय कोई ब्राह्मण न था। इसीलिए शास्त्रार्थमें हार जानेके डरसे और दक्षिणामें बड़ी-बड़ी रकमें पानेके लोभसे भी महाराष्ट्रके सब ब्राह्मणोंने शिवाजीको क्षत्रिय मान लिया।

उसके बाद कई महीनेतक बहुत धूमधाम और व्ययके साथ अभिषेकका प्रबन्ध होता रहा। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पण्डितगण आमन्त्रित किये गये। उस समय यद्यपि रास्तोंमें बड़े खतरे थे और एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना-आना बड़ा कठिन और कष्टसाध्य था, फिर भी ग्यारह हजार ब्राह्मण, जो अपने स्त्री-पुत्रों सहित पचास हजारके लगभग हो गए थे, रायगढ़के किलेमें आ उपस्थित हुए और चार महीनेतक शिवाजीके खर्चसे मिठाई और पकवान उड़ाते रहे।

अभिषेककी प्रारम्भिक आवश्यक बातें शुरू हुईं। पहले शिवाजीने अपने गुरु समर्थ स्वामी रामदास और अपनी माता जीजाबाईको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लिया।

शिवाजी और शातकर्णीकी तुलना

आज जीजाबाईके आनन्दकी सीमा न थी। यौवनकालसे ही पतिकी उपेक्षा सहन करते हुए उन्होंने योगिनीकी भाँति सुदीर्घ पचास वर्ष काटे थे, परन्तु शिवाजीकी आजीवन अगाध मातृभक्तिने उनके सब कष्ट भुला दिये। उनके पुत्रके पवित्र चरित्र, दया, चतुरता और अजेय वीरत्वकी ख्यातिसे संसार गूँज रहा था। आज उनके बेटेने स्वदेशवासियोंको पराधीनताके बन्धनसे छुड़ाया था।

उसने हिन्दू नर-नारियोंकी अत्याचारसे रक्षा की थी; और सब ओर धर्म और न्यायका राज्य स्थापित किया था। ऐसे महान् यशस्वी राजाकी माता कहलाकर वे देशपूज्या हुईं। पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व इसी महाराष्ट्र देशकी एक और राजमाता,—आन्ध्रराज श्री शातकर्णीकी माता गोतमीके शब्दोंमें वे भी अपने विजयी, धार्मिक पुत्रका गुण गानकर मानों कह रही थीं—"मैं महारानी गोतमी बालश्री राज-राजश्री शातकर्णीकी माता। मेरे पुत्रकी मातृ-सेवा बाधा-रहित है। सुख-दुःखमें नगरवासियोंसे उसकी पूरी सहानुभूति रहती है। वह शक, यवन, पह्लवोंका नाश करनेवाला है। उसने ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंकी सम्पत्ति बढ़ाई है। उसने खखरातवंशको खतम कर दिया है, चारों वर्णोंके सम्मिश्रणको रोका है और अनेक बार लड़ाईमें शत्रुओंको जीता है। वह सज्जनोंका आश्रय, लक्ष्मीका पात्र और दक्षिणापथका राजा है।···*"

ऐसा मालूम होता था कि उनके जीवनकी इस पूर्ण सफलता तथा इस चरम आनन्दको दिखानेके लिए ही भगवान्ने जीजाबाईको इतने दिन जीवित रखा था। शिवाजीके अभिषेकके केवल बारह दिन बाद ही अस्सी वर्षकी उम्रमें उनका देहान्त हुआ।

तीर्थ-यात्रा और प्रायश्चित्त

गुरु और माताका आशीर्वाद पाकर शिवाजी तीर्थ-यात्राको निकले और चिपलूण तीर्थमें जाकर वहाँ परशुरामकी पूजा की तथा प्रतापगढ़में अपनी इष्ट-देवी भवानीपर सवा मन सोनेका एक छत्र चढ़ाकर देवीकी उपासना की। २१वीं मईको वे रायगढ़ लौट आए और बहुत दिनोंतक वहीं देवी-देवताकी पूजामें मग्न रहे।

उनके पुरखे क्षत्रियोंका आचरण त्यागकर पतित (शूद्र) हो गये थे, इसलिए शिवाजीने २८ वीं मईको प्रायश्चित्त किया और गागा भट्टने उन्हें

* "महादेव्या गोतमी बालश्रीमातुः राजराजस्य श्रीशातकर्णेः गोतमीपुत्रस्य अविपन्न-मातृशुश्रूषाकस्य पौरजननिर्विशेषसमसुखदुःखस्य शकयवनपह्लवनिसूदनस्य द्विजावरकुटुम्ब-विवर्धनस्य खखरातवंशनिरवशेषकारस्य विनिवर्त्तितचातुर्वर्णमकरस्य अनेकसमरावजित-शत्रुसंघस्य सत्पुरुषाणामाश्रयस्य श्रिया अधिष्ठानस्य दक्षिणापथेश्वरस्य···" (Epigraphia Indice, VIII. 60, नासिकगुहाकी शिलालिपिका संस्कृत अनुवाद)

जनेऊ पहनाकर क्षत्रिय बनाया। उस समय शिवाजीने कहा, "हम द्विज हुए हैं और सब द्विजोंको वेदका अधिकार है, इसलिए हमारे क्रियाकाण्डमें भी वैदिक मंत्र पढ़ना होगा।" यह सुनकर उस जगह जितने ब्राह्मण इकट्ठे हुए थे वे सब विद्रोही हो उठे और कहने लगे, "कलियुगमें क्षत्रिय-जाति लुप्त हो गई है, अब ब्राह्मणोंको छोड़कर दूसरा कोई द्विज नहीं है।" उन लोगोंने रुपयेके लालचसे भोंसले वंशको क्षत्रिय स्वीकार किया था, अन्यथा शिवाजीका अभिषेक भी होने न पाता और न ब्राह्मणोंको इतने लाख रुपये दक्षिणा, दान आदिमें ही मिलते। अब उनकी पहलेवाली सम्मतिका यह स्वाभाविक नतीजा देखकर वे बिगड़ गये। खुद गागा भट्ट भी डर गये और किसी प्रकार इधर-उधर कर-कराके जल्दी-से गोल-माल मिटा दिया। अभिषेकमें वैदिक मंत्र नहीं पढ़े गये, परन्तु शिवाजीने विवाहके समय (२९वीं मईको) उन्हीं मंत्रोंका व्यवहार किया।

इस व्रत, प्रायश्चित्त और उपनयनके समय बड़ा उत्सव हुआ और बहुत-सा रुपया दान दिया गया; गागा भट्टको 'मुख्य अध्वर्यु' होनेसे पैंतीस हजार रुपये मिले। दूसरे साधारण ब्राह्मणोंके बीच पचासी हजार रुपये बाँटे गये।

दूसरे दिन शिवाजीने अपने ज्ञात और अज्ञात पाप-मोचनके लिए तुलादान किया। सोना-चाँदी-ताँबा इत्यादि सात धातु, महीन सुन्दर वस्त्र, कपूर, नमक, मसाला, घी, चीनी, फल और खानेकी चीजें इत्यादि बहुत-से पदार्थ उनके शरीर बराबर (दो मनसे कुछ कम) वजन करके नकद पाँच लाख रुपयेके साथ ब्राह्मणोंको दान दिये गये। इसके सिवा उनके देश लूटते समय जो गो-ब्राह्मण, स्त्री और बालक मारे गये थे, उस पापके प्रायश्चित्तस्वरूप शिवाजीने और आठ हजार रुपये ब्राह्मणोंको दान दिये।

अभिषेकके पहले दिन शिवाजी संयमसे रहे। गंगाजलसे स्नान कर गागा भट्टको पचीस हजार और दूसरे बड़े-बड़े ब्राह्मणोंको पाँच-पाँच सौ रुपये दान दिये।

शिवाजीका अभिषेक

जेठ महीनेकी शुक्ल त्रयोदशी (६ जून, सन् १६७४ ई०) को अभिषेककी शुभ तिथि थी। बहुत तड़के उठकर पहले शिवाजीने स्नान किया, फिर उन्होंने

कुलदेव और कुलदेवी,—महादेव और भवानीकी पूजा की और कुलगुरु बालम भट्ट, पुरोहित गागा भट्ट तथा अन्यान्य बड़े-बड़े पंडितों और साधुजनोंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया और उन्हें वस्त्रालंकार भेंट किए।

उसके बाद शिवाजी पवित्र श्वेत वस्त्र पहनकर माला, चन्दन और सोनेके गहने धारण कर अभिषेक-स्नानके लिए नियत किये हुए स्थानपर गये। वहाँ जाकर दो फुट लम्बी, दो फुट चौड़ी, दो फुट ऊँची सोनेकी चौकीपर बैठे। उनकी बगलमें रानी सोमराबाई बैठीं। सहधर्मिणी होनेसे रानीका आँचल शिवाजीके दुपट्टेके साथ बाँध दिया गया था। कुछ दूर पीछेकी ओर युवराज शम्भूजी बैठे। आठों कोनोंमें सोनेके आठ घड़े और आठ छोटे बर्तनोंमें गंगाजल तथा गंगा प्रभृति सात बड़ी नदियोंका और दूसरी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नदी, समुद्र और तीर्थोंका जल लाकर रक्खा गया था। प्रत्येक घड़ेके पास अष्ट प्रधानोंमेंसे एक-एक प्रधान खड़ा था। उन लोगोंने ठीक मुहुर्त्तमें यह जल शिवाजी, रानी और राजकुमारके सिरपर छोड़ दिया। श्लोकोंके पाठ तथा मंगल-वाद्योंकी ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। सोलह सधवा ब्राह्मणियोंने सुन्दर कपड़े पहनकर, सोनेकी थालियोंमें पंच-प्रदीप ले उनके मस्तकके चारों ओर फिरा-फिराकर मंगल-आरती उतारी।

उसके बाद शिवाजीने गीले वस्त्र उतार दिए और राजाके योग्य जरीके कामदार लाल कपड़े और मणिमुक्ताजटित बहुत-से सुन्दर गहने पहन लिए; गलेमें फूलोंकी माला और सिरपर असंख्य मोतियोंकी झालरदार पगड़ी रख ली; और अपनी ढाल, तलवार, तीर और धनुषका 'अस्त्र-पूजन' किया। इस उपलक्ष्यमें भी उन्होंने ब्राह्मणोंको नमस्कार करके दान-दक्षिणा दी।

सिंहासन-गृहकी सजावट

अन्तमें उन्होंने सिंहासन-गृहमें प्रवेश किया। इस गृहकी सजावटमें बहुत ज्यादा धन-रत्न खर्च किये गये थे। छतके नीचे जरीका चँदोवा टाँगा गया था, जिसमें मोतियोंकी लड़ियाँ झूलती थीं। जमीनपर मखमलका फर्श बिछा हुआ था। बीचमें बहुत मेहनतसे तैयार किया हुआ निपुण कारीगरीके कामसे शोभित 'अमूल्य नवरत्नोंसे खचित' एक बड़ा भारी सोनेका सिंहासन था। सिंहासनके नीचेका भाग सोनेसे मढ़ा हुआ था। आठों कोनोंमें सोनेके पत्तर-

मढ़े मणि-जटित आठ खम्भे थे। इन आठ खम्भोंके सिरेपर चमकीली जरीका चँदोवा टँगा था जिसमें जगह-जगहपर मोतियोंके गुच्छे, हीरे और पद्मराग इत्यादि झूलते थे। राजाके बैठनेकी गद्दी बाघके चमड़ेके ऊपर मखमलसे ढकी हुई थी। गद्दीके पीछे राजछत्र था।

सिंहासनके दोनों ओर अनेक प्रकारके राज-चिह्न सोनेके नुकीले भालोंके ऊपरसे झूलते थे, जैसे, दाहिनी तरफ दो बड़ी मछलियोंका सिर (मुगलोंका शाही मरातिब), बाईं ओर घोड़ेकी पूँछका चँवर (तुर्कोंका राज-चिह्न) और भारी मान-दण्ड (यह न्याय-विचारका चिह्न प्राचीन पारस या ईरान राज्यसे लाया गया था)। बाहर राजद्वारका अग्रभाग दोनों पार्श्वोंमें पत्तोंसे मुँह ढँके हुए जलके घड़ोंसे सजाया हुआ था। उसके बाद दो हाथीके बच्चे और दो सुन्दर घोड़े थे जिनका साज और लगाम सोने और जवाहरातसे जड़े हुए थे।

सिंहासनपर बैठना और छत्र धारण करना

निर्दिष्ट मुहूर्तमें शिवाजी अपने मान्य जनोंको प्रणाम कर सिंहासनकी सीढ़ीसे चढ़कर गद्दीपर जा बैठे। उसी क्षण रत्न-जटित स्वर्णकमलके फूल और दूसरे सोने-चाँदीके फूलोंके गुच्छे भर-भरकर सभासदोंके बीच लुटाये गये। फिर सोलह सधवा ब्राह्मणियोंने सुन्दर वस्त्र पहनकर, सोनेकी थालियोंमें पंच-प्रदीप जलाकर, शिवाजीके चारों ओर घुमाकर अमंगल दूर किया। इकट्ठे हुए ब्राह्मणोंने ऊँचे स्वरसे श्लोक पढ़कर राजाको आशीर्वाद दिया, शिवाजीने भी सिर झुकाकर उसका जवाब दिया। जनसाधारण आसमान फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगे, 'जय, शिवराजकी जय! शिव छत्रपतिकी जय!' जितने बाजे थे, सब एक साथ बज उठे। महाराष्ट्र देशके सब किलोंसे ठीक उसी मुहुर्त्तमें तोपोंकी सलामियाँ दगने लगीं। देश-भरमें सबको यह मालूम हो गया कि आज उन्हें अपना राजा मिला है।

पहले अध्वर्यु गागा भट्ट, फिर अष्टप्रधान और उनके पीछे अन्य ब्राह्मणोंने आगे बढ़कर राजाको आशीर्वाद दिया। शिवाजीके सिरके ऊपर राजछत्र रखा गया। उन्होंने सबको बेशुमार दौलत दी। दान-पद्धतिके अनुसार सोलह महा-दान इत्यादि सब दान दिये गये। सिंहासनके आठों कोनोंमें अष्टप्रधान यानी मंत्रीगण खड़े थे। उनकी पदवियोंके फारसी नाम बदलकर संस्कृत नाम

दिये गये; जैसे, पेशवाके बदले ‘मुख्य प्रधान’। शिवाजीने स्वयंको ‘छत्रपति’ घोषित किया। उस दिनसे ‘राज्याभिषेक-शक’ नामक एक नया संवत् शुरू हुआ। यही संवत् पीछे सब मराठी सरकारी कागज-पत्रोंमें व्यवहार किया जाने लगा।

सिंहासनसे कुछ नीचे तीन आसनोंपर युवराज शम्भूजी, गागा भट्ट और पेशवा मोरेश्वर त्र्यम्बक पिंगले बैठे। बाकी मन्त्री लोग दो कतारोंमें सिंहासनके दोनों पार्श्वोंमें खड़े रहे। उनके पीछे कायस्थ ‘लेखक’ नीलप्रभु (पारसनीस) और बालाजी आवजी (चिटणीस) को स्थान मिला। दूसरे दरबारी लोग इसी क्रमसे दूर-दूर खड़े थे।

इन सब कामोंमें आठ बज गये तब नीराजी रावजी (शिवाजीके जज) अँगरेज-दूत हेनरी आक्सिण्डेनको सिंहासनके सामने ले गये। दूतने सिर झुकाया और उनके दुभाषिये नारायण शेणवीने अँग्रेज कम्पनीकी ओरसे भेंट की हुई एक हीरेकी अँगूठी शिवाजीके सामने पेश की। राजाने उन सबोंको और भी नजदीक बुलाया और खिलअत पहनाकर बिदा किया।

रायगढ़में जलूस

सब काम समाप्त होनेके बाद हाथीपर सवार हो शिवाजी अपने दल-बल-सहित रायगढ़के रास्तेसे जुलूस निकालकर चले। आगे दो हाथियोंके ऊपर दो राजपताकाएँ यानी ‘जरी पताका’ (जरीका) और ‘भगवा झंडा’ (रामदास स्वामीके गेरुए वस्त्रका टुकड़ा) थे। नगरनिवासियोंने अपने घर और रास्ते सजा रखे थे। सभी घरोंमें सधवाओंने प्रदीप घुमा-घुमाकर राजाकी आरती उतारी, लावा और दूबसे परछन की। उसके बाद रायगढ़ पहाड़के सब मंदिरोंमें जा-जाकर प्रत्येक मंदिरमें पूजा, दान, ध्यान कर अन्तमें शिवाजी घर लौटे। तब-तक दोपहरका समय हो गया था।

अभिषेकका खरचा

दूसरे दिन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेका और भिखमंगोंकी बिदाईका काम शुरू हुआ। इसके खतम होनेमें बारह दिन लगे और इस बीचमें हर एकको राजाके यहाँसे सीधा मिलता रहा। मामूली ब्राह्मणोंकी दक्षिणा तीनसे लेकर पाँच रुपये

तक थी। ब्राह्मणियों और लड़कोंकी दक्षिणा दो और एक रुपया थी। इस दानमें साढ़े सात लाख रुपये खर्च हुए।

अभिषेकके दो दिन बाद वर्षा शुरू हुई और दस-ग्यारह दिनतक मूसलधार पानी बरसता ही रहा। निमन्त्रित आदमियोंको बिदा लेकर लौटनेका रास्ता ही न मिला। १८वीं जूनको पूर्ण सुखसम्पत्तिके बीच वृद्धा जीजाबाईका देहान्त हुआ। उनकी पचीस लाख होणकी सम्पत्ति शिवाजीको मिली। यह अशौच खतम होनेपर शिवाजी दूसरी बार सिंहासनपर बैठे।

कृष्णाजी अनन्त सभासदने कुछ बढ़ाकर लिखा है कि अभिषेकके समय सात करोड़ दस लाख रुपये खर्च हुए थे।[१] परन्तु सब मिलाकर अगर पचास लाख रुपये रखे जायँ, तो सच हो सकता है।

फिर लड़ाई छिड़ गई

अभिषेककी धूमधाममें शिवाजीका राजकोष खाली हो गया। इसीलिए उनको फिर लूटनेके लिए बाहर निकलना पड़ा। इसके ठीक एक महीने बाद आधी जुलाईके लगभग यह अफवाह फैली कि मराठे घुड़सवारोंका एक दल एक गाँव लूटनेवाला है। ऐसी अफवाह सुनकर मुगल सूबेदार बहादुर खाँ पेड़-गाँवका अपना खेमा छोड़कर फौजके साथ पचास मील दूर उनको रोकने गया। उसी मौकेपर सात हजार मराठोंके एक अन्य दलने दूसरे रास्तेसे आकर पेड़-गाँवके अरक्षित मुगल शिविरपर अचानक हमला कर दिया और वहाँ बिना किसी रोक-टोकके एक करोड़ रुपये और दो सौ अच्छे-अच्छे बादशाही घोड़े लूटकर शिविरमें आग लगा दी और वह चलता बना। जाड़के दिनोंमे मराठे लोग कुछ महीनोंतक कोली देश, औरंगाबाद, बगलाना और खानदेश लूटते फिरे। सन् १६७५ ई० की जनवरीके अन्तमें उन्होने कोल्हापुरसे साढ़े सात

१. सभासद लिखता है कि "सिंहासनमें बत्तीस मन सोना (दाम चौदह लाख रुपये), चुने हुए हीरे और मणि-माणिक्य लगाए गए थे। अष्ट-प्रधानोंमेंसे हर एकको एक लाख होण (अर्थात् पाँच लाख रुपये) नगद और हाथी-घोड़े, कपड़े तथा गहने इनाममें मिले थे; गागा भट्टको 'अपरिमित द्रव्य' दिया गया था।"

हजार रुपये वसूल किये, परन्तु आधी फरवरीके लगभग मुगल कल्याण शहरको जलाकर चल दिये।

मुगल, बीजापुरी और शिवाजी

सन् १६७५ ई० के मार्चसे मईतक तीन महीने शिवाजीने फिर मुगल-बादशाहके अधीन होनेकी इच्छाके बहाने सन्धि करनेका विचार प्रकट कर सूबेदार बहादुर खाँको चकमेमें डाल रखा। इसी बीचमें कोल्हापुरपर (मार्चमें) तथा फोण्डके प्रसिद्ध किलेपर (जुलाईमें) अधिकार कर लिया। इस प्रकार अपना मतलब सिद्ध हो जानेपर शिवाजीने बहादुर खाँके दूतको बेईज्जतीके साथ भगा दिया।

क्रोध और लज्जासे व्यथित होकर बहादुर खाँ शिवाजीको दबानेके लिए बीजापुरके वजीर खवास खाँसे मिल गया, परन्तु ११वीं नवम्बरको बीजापुरके अफगान दलने खवास खाँको कैद कर लिया और राज-काजका अख्तियार उसके हाथसे छीन लिया। बेचारे बहादुर खाँकी मंशा पूरी न हो सकी।

सन् १६७६ ई० के शुरूमें ही शिवाजी बहुत बीमार पड़े। सतारामें तीन महीने दवा करनेपर मार्चके अन्तमें जाकर कहीं वे अच्छे हुए।

इधर खवास खाँके पतनके बादसे ही बीजापुरमें अफगान और दक्षिणी उमराओंके बीच बड़ा भारी घरेलू झगड़ा शुरू हो गया। बहादुर खाँ बीजापुरके नये वजीर अफगान-नेता बहलोल खाँके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए (३१ मई, १६७६ ई० को) रवाना हुआ। बहलोलने झट शिवाजीसे संधि कर ली। उसकी शर्तें ये थीं कि बीजापुर-सरकार शिवाजीको हर साल नकद तीन लाख रुपये और एक लाख होण (यानी पाँच लाख रुपये) कर-स्वरूप देगी, शिवाजीके जीते हुए देशोंपर शिवाजीका ही अधिकार मानेगी, और अगर मुगल चढ़ाई करें, तो शिवाजी अपनी फौजसे आदिलशाही राज्यकी रक्षा करेंगे। परन्तु, बीजापुरके घरेलू झगड़ों और नये परिवर्तनोंके बीच यह सन्धि बहुत दिन नहीं चली। लेकिन उससे शिवाजीकी कोई हानि नहीं हुई। वे दूसरी ओर बहुत धनी देश,—पूर्व-कर्णाटक अर्थात् मद्रास प्रान्तको जीतनेके लिए चल दिये।

नवाँ अध्याय

छत्रपति शिवाजीकी दक्षिण-विजय

पूर्व कर्णाटकके राज्य और उनका ऐश्वर्य

किसी समय विजयनगरका प्रसिद्ध साम्राज्य कृष्णा नदीके किनारेसे सारे दक्षिण देशमें, पूर्वीय समुद्र-तटसे पश्चिमी समुद्रके किनारेतक, अर्थात् मद्राससे लेकर गोआतक फैला हुआ था। परन्तु, सन् १५६५ ई० में दक्षिणके सब मुसलमान सुलतानोंने मिलकर विजयनगरके सम्राट्को लड़ाईमें पराजित कर मार डाला, और राजधानीको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। परन्तु इस लड़ाईके बाद ही विजयनगरका साम्राज्य टूटने लगा; कुछ प्रदेश तो मुसलमानोंने छीन लिये और कुछ भाग स्वतन्त्र हो गये। विजयनगरके अन्तिम सम्राट् श्रीरंग रायलने अपना सर्वस्व खोकर अपने ही एक सामन्त श्रीरंगपत्तनके राजाके यहाँ आश्रय लिया (१६५६ ई०)।

इसी बीच बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतानोंने विजयनगरको कर देनेवाले छोटे-छोटे राजाओंके हाथसे वर्त्तमान मैसूरराज्य और मद्रासके आसपासका प्रायः समस्त प्रदेश छीन लिया। ये राजा लोग शक्तिशाली विजयनगर साम्राज्यके आश्रयको त्याग कर अपनी-अपनी सीमामें खुदमुख्तार होनेके गर्व और स्वार्थमें अन्धे हो रहे थे। अतः शक्तिशाली मुसलमान शत्रुओंके विरुद्ध वे संघटित न हो सके। फल यह हुआ कि मुसलमानोंने उन्हें एक-एक करके सहजमें ही हरा दिया। इस प्रकार सन् १६३७ और १६५६ ई० के बीच कुतुबशाहने गोलकुण्डाके दक्षिण-पूर्वकी ओर बढ़कर कडापा, उत्तरी आरकटका जिला (पलार नदीके उत्तरका हिस्सा) और शिकाकोलसे सद्राज बन्दर (मद्रासके प्रायः ५० मील दक्षिण) तक मद्रासके समुद्रतटका प्रदेश अपने अधिकारमें कर लिया। इसको नाम दिया गया 'हैदराबादी कर्णाटक।' इसके ठीक दक्षिणमें पलार नदीसे कावेरी नदीतककी चौरस जमीन और लगभग

सारे मैसूर प्रदेशमें आदिल शाहने अपना राज्य फैलाया जो 'बीजापुरी कर्णाटक' कहलाया।

धन-धान्य और जन-संख्यामें यह कर्णाटक-प्रदेश भारतके अन्य सब प्रदेशोंसे कहीं बढ़ा-चढ़ा था। वहाँकी जमीन बहुत उपजाऊ तथा वहाँके अधिवासी बड़े परिश्रमी और शिल्प-कार्यमें चतुर थे। मणि माणिक्यकी खानों और हाथियोंसे भरे जंगलोंसे राजाको खूब आमदनी होती थी। इन्हीं सब कारणोंसे देशकी आमदनी शीघ्रतासे बढ़ती जाती थी। इस आयका बहुत कम हिस्सा खर्च होता था, क्योंकि प्रजा बड़ी मितव्ययी थी और वहाँ किसी भी प्रकारकी विलासिता न थी। लोग बासी भातमें इमलीका पानी और नमक-मिर्च मिलाकर आनन्दसे खाते और लँगोटी पहनकर बारहों महीना गुजर करते थे। इस कारण हर साल कर्णाटकमें बहुत-सा धन जमा होता था जिसका कुछ हिस्सा बड़े-बड़े मन्दिरोंके बनानेमें खर्च होता था, बाकी धन जमीनमें गाड़ दिया जाता था। इसीलिए युग-युगान्तरसे कर्णाटक-प्रदेश सुवर्णमय देशके नामसे प्रसिद्ध था। समय-समयपर विदेशी राजा और सामन्त लोग इस देशके अगाध धन-रत्न लूट ले गये थे। इस समय शिवाजीकी भी दृष्टि इसी कर्णाटकपर पड़ी।

कर्णाटकके बीजापुरी जागीरदारोंमें घरेलू कलह और उनकी नीति

सन् १६७६ ई०में वर्तमान मैसूर राज्यका समस्त भाग बीजापुरके अधीन था और वह कई हिस्सोंमें बँटा हुआ था। उनमें कुछ तो उमरावोंकी जागीरें थीं और कुछ कर देनेवाले छोटे-छोटे हिन्दू राजाओंके राज्य थे। इसको लोग 'कर्णाटक बालाघाट' (अर्थात् 'ऊँची जमीन') कहते थे। मैसूरके पूर्वकी ओर बंगालकी खाड़ीतक फैली हुई जो समर भूमि है (अर्थात् मद्रासके आरकट आदि जिले) उसका नाम था 'कर्णाटक पाइनघाट' (यानी 'नीचा देश')। मैसूरके पहाड़से इस मैदानमें उतरनेपर उत्तरसे दक्षिणकी ओर जानेके मार्गमें क्रमसे तीन बीजापुरी उमरावोंकी जागीरें पड़ती थीं। पहले जिंजीके प्रसिद्ध किलेके अधीनका प्रदेश था, जिसका हाकिम नासिर महम्मद खाँ (मृत वजीर खवास खाँ का सबसे छोटा भाई) था। उसके बाद बलिकण्डपुरम् था, जहाँ वानरराज बालिको श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए थे; इसके मालिक शेर खाँ लोदी

(अफगान वजीर बहलोल लोदीके जाति-भाई) थे। अन्तमें कावेरीके पार तंजोर पड़ता था जिसे शिवाजीके सौतेले भाई व्यंकोजी उर्फ एकोजीने सन् १६७५ ई० में अपने अधिकारमें कर लिया था। इससे और भी दक्षिणमें मदुराका स्वाधीन राज्य पड़ता था। इसके सिवा बेलूर, अर्णि आदि प्रसिद्ध किले अलग-अलग अफसरोंके हाथमें थे।

इन सब बीजापुरी उमरावोंमें अपने-अपने स्वार्थके लिए हमेशा लड़ाई-झगड़ा, मार-काट और छीना-झपटी चलती रहती थी। कोई भी अपने ऊपर सुल्तानके अधिकारको नहीं मानता था, क्योंकि सुल्तान उस समय नाबालिग और वजीरके हाथका कठपुतला-मात्र था। शेर खाँने एक युक्ति सोची कि वह फरासीसी कम्पनी-की, जिससे कि उसकी मित्रता थी, पाण्डीचेरीकी कोटीसे गोरे और साहबोंके सिखाये हुए देशी सिपाहियोंको लेकर जिंजीपर अधिकार कर ले; उसके बाद धीरे-धीरे राज्य और बल बढ़ाकर मदुरा और तंजोरके अगाध धन-दौलतको लूटे, और अन्तमें उसी धनके जोरसे फौज बढ़ाकर गोलकुण्डाका राज्य जीत ले।

कर्णाटकपर धावा करनेके पूर्व अन्यान्य राज्योंसे सन्धि करना

शेर खाँने १६७६ ई० मे जिंजी प्रदेशपर आक्रमण कर उसके बहुतसे हिस्से छीन लिए। जिंजीके मालिक नासिर महम्मदने निरुपाय हो गोलकुण्डासे सहायता माँगी। इस समय गोलकुण्डामे कुतुबशाहका मादन्ना नामक एक ब्राह्मण मन्त्री ही सर्वेसर्वा था। वह एक वैष्णव और धार्मिक हिन्दू था। मादन्नाकी आन्तरिक इच्छा थी कि कर्णाटकको मुसलमानोंके (अर्थात् बीजापुरके) हाथसे छुड़ाया जाय और सन् १६४८ से पहलेकी भाँति वहाँ फिर हिन्दू-शासन हो जाय। शिवाजीके समान भुवन-विजयी भक्त हिन्दूको छोड़ और किसीके द्वारा यह महान कार्य सम्पन्न होनेकी सम्भावना न थी। सुलतानने अपने प्यारे मन्त्रीकी सलाह स्वीकार की। शिवाजीसे इस शर्तपर सन्धि हुई कि शिवाजी मराठा फौजके बलसे बीजापुरी कर्णाटक जीतकर कुतुबशाहको दगे और वहाँके राज-कोषमे जो धन-सम्पत्ति मौजूद है वह, तथा लूटका माल और मैसूरकी कुछ जमीन स्वयं लेंगे। इस आक्रमणका सब खर्च कुतुबशाहके जिम्मे रहेगा। इसके सिवा तोप और गोले तथा पाँच हजार फौज देकर वे शिवाजीकी सहायता भी

करेंगे। शिवाजीके चतुर दूत प्रह्लाद नीराजीने मादन्नाके साथ बातचीत करके यह बन्दोबस्त पक्का किया।

शिवाजीने सोचा कि कर्णाटक-विजय करना कठिन काम है, अतः वहाँ खुद न जाकर केवल सेनापतिको भेजनेसे कोई फल न होगा, और इसमें कमसे कम एक वर्ष लगेगा। इधर इतने दिनोंतक स्वदेश छोड़कर सुदूर कर्णाटकमें रहनेपर शत्रु लोग ऐसा मौका पाकर राज्यमें महा अनिष्ट कर सकते हैं। इसी कारण शिवाजी मुगल-सरकारसे मेल करनेके लिए उत्सुक हुए। सन् १६७६ ई० के अन्तमें मुगल और बीजापुरकी जैसी अवस्था थी, उससे शिवाजीको बड़ा सुभीता हुआ। बीजापुरमें नये वजीर बहलोल खाँके अफगान-दल और उनके शत्रु दक्षिणी तथा हबशी उमरावोंके बीच जारकी मार-काट और लड़ाई चल रही थी। उधर मुगल सूबेदार बहादुर खाँ बहलोलके ऊपर बिगड़ा हुआ था, इसलिए वह मौका देख दक्षिणियोंका पक्ष ले बीजापुरके ऊपर (३१ मई, १६७६ ई० को) चढ़ाई कर बैठा और इस लड़ाईमें एक वर्षसे भी ज्यादा समयतक उलझा रहा। इस समय किसीको भी शिवाजीकी ओर ध्यान देनेका मौका न मिला।

बहादुर खाँने देखा कि बीजापुरपर आक्रमण करनेसे पहले यदि शिवाजीको हाथमें न कर लिया जायगा, तो मुगलोंके अधीन प्रदेश अरक्षित और खतरेमें ही रहेंगे। उस ओर शिवाजीने भी देखा कि जब वे खुद कर्णाटकको सर करनेमें व्यस्त रहेंगे, उस समय यदि मुगल-सूबेदार शत्रुता करे तो महाराष्ट्र देशकी बड़ी भारी हानि होगी। इसीलिए 'तुम हमें न जलाना, हम तुम्हें न लूटेंगे' इस शर्तपर दोनों पक्षोंने मेल कर लिया। शिवाजीके दूत नीराजी रावजी पण्डितने बहादुर खाँको गुप्त रूपसे बहुत रुपये घूस दिये और प्रकटमें बादशाहके लिए कुछ रुपये या भेंट देकर सन्धिकी लिखा-पढ़ी करा ली।

हनुमन्ते वंशकी सहायता

भाग्य सदा उद्योगी पुरुष-सिंहके ऊपर प्रसन्न रहता है। शिवाजीको कर्णाटक-विजयके लिए एक बड़ा सहायक भी मिल गया। रघुनाथ नारायण हनुमन्ते नामका एक चालाक, अनुभवी, प्रभावशाली और धनी ब्राह्मण शाहजीके समयसे व्यङ्कोजीका संरक्षक और वजीर होकर कर्णाटकका राज-काज करता आता था। इसीलिए रघुनाथ और उसके भाई जनार्दनको लोग उस देशके

राजाके समान मानते थे। व्यङ्कोजीने बड़े होनेपर शासनका भार अपने हाथमें लिया और रघुनाथसे राजस्वका हिसाब माँगा। रघुनाथ इतने वर्षोंतक मालिकके बहुत-से रुपये हड़पता रहा था, इस बातको ईर्ष्यासे अन्य मंत्रियोंने जाहिर कर दिया। इतने दिनतक आधिपत्य करनेके बाद हिसाब देने और व्यङ्कोजीके आज्ञानुसार चलनेमें रघुनाथ अपना अपमान समझने लगा और वजीरीसे इस्तीफा देकर काशी-यात्राके बहाने तंजोरसे सपरिवार चला आया। यह खबर पाकर शिवाजीने उसे बड़े आदरसे बुलाया और अपने राज्यमें नौकरी दी। रघुनाथने उनको कर्णाटककी सब जगहोंकी नस-नसकी बात बता दी और अपने वंशकी इतने दिनोंकी प्रतिष्ठा द्वारा शिवाजीके कर्णाटक-आक्रमणमें विशेष सहायता की।

पेशवाको अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर कोंकण-प्रदेशका शासन-भार अन्नाजी दत्त (सुरनीस) को देकर और दोनोंके अधीन एक-एक बड़ी फौज रखकर सन् १६७७ ई० के जनवरीके आरम्भमें शिवाजीने रायगढ़से प्रस्थान किया।

इसी बीचमें उनके दूत प्रह्लाद नीराजीने गोलकुण्डाके सुल्तान कुतुबशाहको शिवाजीके साथ मुलाकात करनेके लिए राजी कर लिया था। पहले तो सुल्तानको भय हुआ कि कहीं उनकी भी दशा अफजल या शायस्ता खाँकी तरह न हो, परन्तु प्रह्लादने अनेक प्रकारसे धर्मकी शपथ खाकर उनको समझाया कि शिवाजी कभी विश्वासघात न करेंगे। मादन्नाने भी इस बातका समर्थन किया और सुल्तानको समझाया कि शिवाजीको पास बुलाकर मैत्री कर लेनेसे भविष्यमें मुगलोंके आक्रमणसे गोलकुण्डाकी रक्षाका निश्चित उपाय हो सकेगा।

शिवाजीका गोलकुण्डा-राज्यमें प्रवेश

अपनी आँखोंके सामने फौजोंको शृंखलापूर्वक चलाकर नित्य-नियमित कूच करके शिवाजी एक महीनेमें (फरवरीके पहले सप्ताहमें) हैदराबाद शहरमें जा पहुँचे। उन्होंने कड़ा हुक्म जारी कर दिया था कि कोई सिपाही या नौकर-चाकर रास्तेमें किसी गाँववालेकी चीजोंपर हाथ न डाले और न स्त्रियोंकी आबरू ही बिगाड़े। पहले दो-चार मराठोंने इस नियमको भंग किया; पर अपराधियोंको फाँसी अथवा हाथ-पैर काटनेकी सजा देनेसे ऐसा भय फैला कि पचास हजार हथियारबन्द सिपाहियोंका दल एक महीनेतक बड़े शान्त और

साधु-भावसे यात्रा करता रहा, फिर भी पेड़के एक तिनके या अन्नके एक दानेकी भी किसीकी हानि नहीं हुई। इस कारण चारों ओर शिवाजीका यश फैल गया।

कुतुबशाहने राजधानीसे कई कोस आगे बढ़कर शिवाजीकी अभ्यर्थना करनेका प्रस्ताव किया। परन्तु शिवाजीने नम्र होकर उन्हें मना करा दिया। वे बोले, "आप हमसे बड़े हैं, गुरुजनोंको इतना आगे बढ़कर छोटेका सम्मान करना अनुचित है।" इसलिए केवल मादन्ना, उनके भाई अकन्ना और हैदराबादके बड़े-बड़े लोगोंने शहरमें पाँच-छः कोस आगे बढ़कर शिवाजीकी अभ्यर्थना की और वे उन्हें राजधानीमें ले आये।

हैदराबाद शहरमें शिवाजीकी अभ्यर्थना

शिवाजीके स्वागतके लिए राजधानी हैदराबादने आज अत्यन्त सुन्दर वेश धारण किया था। बड़े-बड़े रास्ते और गलियाँ कुंकुम और केसरसे लाल-पीली दिखाई देती थीं। जगह-जगहपर फूल बिछे थे और रंगीन ध्वजा-पताका तथा फाटकोंसे सारा शहर सजाया गया था। लाखोंकी संख्यामें नगरवासी अच्छी-अच्छी पोशाकें पहनकर रास्तोंके किनारे खड़े थे। छज्जे और बरामदे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित महिलाओंसे भरे थे।

शिवाजीने भी अपनी फौजको इस दिनके लिए खास कपड़े पहनाये थे। चमकीली पोशाक और हथियारोंके कारण उनके सिपाही धनी उमरावोंकी तरह मालूम पड़ते थे। कुछ चुने-हुए सिपाहियोंकी पगड़ियोंमें मोतीकी झालरें ('तोड़े'), हाथोंमें सोनेके कड़े, बदनपर सफ़ेद वर्म्म और जरीकी पोशाकें भी थीं।

दोनों राजाओंकी मुलाकातके लिए निर्दिष्ट शुभ दिनको यह पचास हजार मराठी फौज हैदराबादमें घुसी। उनकी वीरताकी कहानियाँ कई दिनोंसे दक्षिणमें लोगोंमें मुँह-मुँह प्रचलित हो रही थीं, कितनी ही गाथाओं (बैलेडमें) और गीतोंमें गाई जाती थीं। आज लोग आश्चर्यके साथ उन्हीं सब प्रसिद्ध वीर नेताओं और सिपाहियोंकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। इतने दिनतक जिनके नाम ही सुनते आते थे, आज उनको अपनी आँखोंके सामने देखा।

सबकी नजर सेनापति, मंत्री और रक्षकोंसे घिरे हुए वीरश्रेष्ठ शिवाजीके ऊपर जा अटकती थी। उनका शरीर छरहरा और मझोले कदका था। पिछले सालकी

बीमारीसे और महीने-भरकी प्रतिदिनकी यात्राके कारण वे और भी दुबले-पतले दिखाई देते थे, परन्तु उनके गोरे मुँहमे सर्वदा हँसी टपकती थी। उनकी तीखी-चमकीली आँखें इधर-उधर घूमती दिखाई पड़ती थीं। शहरके लोग आनन्दसे 'जय शिव, छत्रपतिकी जय' की ध्वनि करने लगे। महिलाएँ बरामदोंसे सोने चाँदीके फूल बरसाने लगीं, या आकर उनके मुखके चारों ओर आरती उतार स्वागत गान गाने और आशीर्वादके वचन उच्चारण करने लगी। शिवाजी भी जनतामे मोहरें और रुपये लुटाने लगे। उन्होंने हर एक मुहल्लेके प्रधान मुखियाको खिलअत आर अलंकार प्रदान किये।

शिवाजी और कुतुबशाहकी भेंट

इस प्रकार जुलूस कुतुबशाहके दाद-महल (न्याय-प्रासाद) के सामने पहुँचा। वहाँ और सब शान्त-शिष्ट भावसे रास्तेमे खड़े हो गये। केवल शिवाजी पाँच प्रधान कर्मचारियोंको साथ ले सीढ़ीसे दरबार-गृहमे पहुँचे। वहाँ कुतुबशाह उनकी प्रतीक्षामे थे। उन्होने दरवाजेतक आकर शिवाजीको आलिंगन किया और हाथ पकड़कर उन्हे अपनी बगलमे गद्दीपर बैठाया। मंत्री मादन्नाको फर्शपर बैठानेको अनुमति दी गई। और सब खड़े ही रहे। अन्तःपुरकी बेगमें दोना ओरकी पत्थरकी जालियोंके छिद्रोंसे बड़े आश्चर्यके साथ यह अपूर्व दृश्य देखने लगीं।

कुतुबशाहने तीन घंटेतक बातचीत की। उन्होंने शिवाजीके मुँहसे उनके जीवनकी आश्चर्य-जनक घटनाएँ और वीर-कीर्तियोंका लम्बा-चौड़ा बयान बड़े चावसे सुना। अन्तमें उन्होंने खुद अपने हाथसे शिवाजीको पान-इतर दे तथा मराठे मंत्रियों और सेनापतियोंको खिलअत, अलंकार, हाथी, घोड़े आदि उपहार देकर बिदा किया। वे स्वयं शिवाजीके साथ-साथ सीढ़ीके नीचेतक पहुँचानेके लिए आये। वहाँसे शिवाजी रास्तेमें रुपये लुटाते हुए अपने डेरेको लौट गये।

दूसरे दिन मादन्ना पंडितने शिवाजी और उनके प्रधान कर्मचारियोंको निमन्त्रण देकर भोजन कराया; अतिथियोंके लिए उनकी माताने स्वयं रसोई बनाई थीं। भोजनके अन्तमें अनेक उपहार लेकर मराठे डेरेपर लौटे।

गोलकुंडा राज्यके साथ सन्धि

अब कामकी बातें शुरू हुईं। बहुत-कुछ बहसके बाद शिवाजीके साथ

सन्धिकी ये शर्तें तय हुईं कि (१) कुतुबशाह प्रतिदिन पन्द्रह हजार रुपये नकद और अपने सेनापति मिर्जा महम्मद अमीनके अधीन पाँच हजार सेना, कई तोपें और गोला-बारूद देकर शिवाजीको कर्णाटक जीतनेमें सहायता देंगे। शिवाजीने प्रतिज्ञा की कि (२) कर्णाटकका जो अंश उनके पिता शाहजीका था, उसको छोड़ समस्त जीता हुआ प्रदेश वे कुतुबशाहको देंगे। इसके सिवा उन्होंने कुतुबशाहके सामने धर्मकी शपथ खाकर कहा कि (३) मुगलोंका आक्रमण होनेपर वे गोलकुंडा राज्यकी रक्षा करनेके लिए फौरन आयँगे। उसके लिए (४) कुतबशाहने शिवाजीको पूर्वस्वीकृतिके अनुसार पाँच लाख रुपयेका वार्षिक कर नियमित रूपसे देनेका आश्वासन दिया।

गुप्त रूपसे यह सब मन्त्रणाएँ और संधि-चर्चा हो रही थी और प्रकटमें मराठोंका और नगरवासियोंका समय आनन्द-मंगल, तमाशे और भोजमें सुखसे बीत रहा था। शिवाजीने दूसरी बार कुतुबशाहसे मुलाकात की। दोनों शासक प्रासादके बरामदेमें पास ही पास बैठे। समस्त मराठी फौज कूच करके उनके सामनेसे निकाली गई। गोलकुण्डाके सुलतानने शिवाजीको नाना उपहार भेंट किये। शिवाजीके घोड़ेतकको एक मणि और हीरेकी माला गलेमें पहनाई गई, क्योंकि वह भी उनके युद्ध-जयका साथी था।

एक दिन कुतुबशाहने पूछा, "आपके यहाँ कितने हाथी हैं?" शिवाजीने अपने हजारों मावले पैदलोंको दिखाकर कहा, "यही हमारे हाथी है।" तब सुल्तानके एक बड़े भारी मत्त हाथीके साथ मावले सेनापति येसाजी कंकने तलवार लेकर युद्ध किया और उसको कुछ देरतक रोककर अन्तमें एक चोटमें उसकी सूँड़ काट डाली। हाथी हारकर भाग गया।

इस प्रकार एक महीने बाद रुपये और चीज-वस्तु लेकर शिवाजी मार्च महीनेके शुरूमें हैदराबादसे रवाना हुए। दक्षिणकी ओर जाकर शिवाजीने कृष्णा नदीके तीर 'निवृत्ति संगममें' (भवनाशी नदीके संगम-क्षेत्रमें) स्नान, पूजा दानादि कर फौजको अनन्तपुर भेज दिया और स्वयं थोड़ेसे रक्षक और कर्मचारियोंको ले शीघ्रतासे श्रीशैलके दर्शनको चल दिये।

शिवाजीका श्रीशैल-दर्शन

यह स्थान कुर्नूल शहरसे ७० मील पूर्वकी ओर है। यहाँ कृष्णा नदीसे हजार

फुटकी ऊँचाईपर एक समतल भूमिमें जनहीन वनके बीच मल्लिकार्जुन शिवका मन्दिर है। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमेंसे यह भी एक लिंग है। मन्दिर पचीस-छब्बीस फुट ऊँची दीवारसे घिरा हुआ है और इसके चारों ओर खूब चौड़ा आँगन है। यह दीवार बड़े-बड़े चौकोर पत्थरोंसे बनी है और इसमें हाथी, घोड़े, बाघ, शिकारी, योद्धा, योगी और रामायण तथा पुराण आदिके दृश्य बड़ी सुन्दरतासे खुदे हुए हैं। शिव-मिन्दरके चारों कोने बराबर हैं। विजयनगरके दिग्विजयी सम्राट् कृष्णदेव रायके धनसे मन्दिरके चारों ओरकी दीवार और तमाम छत सोनेके चमकदार पत्तरोंकी चादरसे मढ़ी गई थी (१५१३ ई०)। इस वंशकी एक सम्राज्ञीने ऊपरसे नीचे कृष्णाके जलकी धारातक हजार फुटसे भी अधिक लम्बे मार्गमें पत्थर जड़वा दिये थे। उसके नीचेके घाटका नाम था 'पाताल गंगा'; और कुछ दूर नीचे ही नदीके दूसरे तटपर 'नील गंगा' नामका दूसरा घाट था। ये दोनों प्रसिद्ध तीर्थ थे। शिव-मन्दिरके पास एक छोटा-सा दुर्गाजीका मन्दिर भी है।

शिवाजीने श्रीशैलमें जाकर स्नान, पूजा, दान, लक्ष-ब्राह्मण-भोजन इत्यादि पुण्य-कार्य करते हुए वहींपर नवरात्र (अर्थात् चैत्र शुक्ल पक्षके प्रथम नौ दिन, २४ मार्चसे लेकर १ अप्रैल १६७७ ई० तक) बिताया। इस तीर्थ-स्थानके शान्त-स्निग्ध सौन्दर्य, रम्य निर्जनता और धार्मिक भाव जगानेवाली स्वभाविक शक्ति देख वे आनन्दमें मग्न हो गये। यह स्थान उनको द्वितीय कैलास या शिवके स्वर्गके समान जान पड़ा। मरनेके लिए ऐसा उपयुक्त स्थान और समय फिर न आयेगा, ऐसा विचारकर शिवाजीने देवीकी मूर्तिके चरणोंपर अपना सिर काटकर देह त्यागनेका निश्चय किया। कहते हैं कि भगवतीने स्वयं प्रकट हो शिवाजीकी उठाई हुई तलवारको छीनकर फेंक दिया और उन्हें रोककर कहा, "बचा, इस उपायसे तुझे मोक्ष नहीं मिलेगा। ऐसा काम मत करना। तेरे ऊपर अब भी बहुत बड़े-बड़े कार्योंका भार है।" यह कहकर देवी अन्तर्द्धान हो गई और शिवाजी भी स्थिर हुए।

जिंजीपर अधिकार

अप्रैलकी ४ और ५ तारीखको अनन्तपुर लोटकर शिवाजी फौजके साथ चटपट मद्रासकी ओर चल पड़े। भारत-भरमें प्रसिद्ध तिरुपति पर्वतके मन्दिरको

देख वे इस ओरकी समभूमिमें उतरे और पेड्डापोलम नामक नगरमें जा पहुँचे। यहाँसे उनकी आगे चलनेवाली फौजके,—पाँच हजार घुड़सवार बड़ी तेजीसे जिंजीके किलेमें जा पहुँचे। उस किलेके मालिक नसीर महम्मद खाँने वार्षिक पचास हजार रुपयेकी आमदनीकी जागीर और कुछ नकद रुपये मिलनेका वचन पाकर उसी दम (१३वीं मईको) वह अजेय दुर्ग मराठोंके सुपुर्द कर दिया। शिवाजी फौरन वहाँ जा पहुँचे और जिंजीको अपने अधिकारमें करके उसकी दीवार, परिखा, बुर्ज इत्यादिको इतना मजबूत कर दिया कि 'यूरोपियन लोग भी वैसा करनेमें गर्व अनुभव करते'।

वहाँसे चलकर शिवाजीने २३वीं मईको वेल्लूरदुर्ग जा घेरा। यह भी जिंजीकी ही तरह एक दुर्जेय गढ़ था। इसके शासनकर्ता थे आदिलशाहके विश्वासी कर्मचारी हब्शी अब्दुल्ला खाँ। वे मराठोंकी तमाम गोलाबारी और आक्रमणकी उपेक्षा करते हुए बड़े पुरुषार्थके साथ चौदह महीनेतक लड़ते रहे, किन्तु अन्तमें जब उन्होंने देखा कि उनके मालिकसे मदद मिलनेकी कोई आशा नहीं है और किलेके भीतर रक्षा करनेवाली फौजके ५०० सैनिकोंमेंसे केवल एक सौ बचे हैं, तब अब्दुल्लाने शिवाजीके लिए किला छोड़ा दिया (२१ अगस्त, १६७८ ई०)। इसके बदलेमें उसको डेढ़ लाख रुपये नकद और उतनी ही आमदनीकी जागीर देनेकी शर्त तय हुई।

मराठोंका कर्णाटक लूटना

शिवाजीकी सेनाने जल्दी-जल्दी कूच कर बाढ़की तरह मद्रास प्रदेशकी समभूमिको ढक लिया। उसने चारों ओर जिधर जो कुछ मिला, हड़प लिया। उसका सामना करनेकी किसीकी भी हिम्मत न हुई। केवल दो-चार इने-गिने किले पानीसे घिरे हुए द्वीपकी नाई कुछ दिनके लिए स्वाधीनतासे खड़े रहे। पहले एक हजार मराठे घुड़सवार दो दिनके रास्तेपर आगे-आगे चले। उनके पीछे बाकी फौज लेकर शिवाजी खुद आये और सबके पीछे नौकर-चाकर तथा सिंहके पीछे-पीछे सियारोंके झुंडकी तरह लूटके लोभसे आये हुए स्थानीय छोटे-छोटे जमींदार, डाकुओंके सरदार और जंगली जातियोंके दलपति ('पालिकर') चले। रुपये वसूल करनेके लिए शिवाजीका नृशंसतापूर्ण बर्ताव तथा उनकी सेनाके विक्रम और कठोरताका समाचार आगे-आगे चलता था। बड़े आदमी,

जिधर रास्ता मिला उसी ओर भागने लगे, कोई वनमें और कोई स्त्री-पुत्र और धन-रत्न लेकर साहबोंके सुरक्षित बन्दरगाहोंमें आश्रय लेने लगे।

इधर शिवाजीको रुपयेकी बड़ी जरूरत थी। उन्होने प्रतिज्ञा-भंग करके कुतुबशाही सरकारको जिंजीका किला न देकर उसे अपने ही कब्जेमें रख लिया था, जिससे गोलकुण्डासे पन्द्रह हजार रुपये रोजकी आमदनी बन्द हो गई। तब शिवाजीने इस प्रदेशके बड़े-बड़े शहरोंको चिट्ठी भेजकर दस लाख रुपया कर्ज चाहा। इस ऋणके चुकानेकी आशा अवश्य ही न थी, परन्तु कर्ज देकर माँगनेकी हिम्मत भी किसमें थी? शिवाजीने इस देशके धनी लोगोंके नाम-धाम और उनकी जायदादकी एक तालिका तैयार की। उनसे चौथ वसूल करनेके लिए शिवाजी द्वारा भेजे हुए तहसीलदार देश-भरमें छा गये। बीस हजार ब्राह्मण इसी नौकरीके भरोसे उनके साथ आये थे। 'उन लोगोंने बिलकुल निर्लज्ज हो लोगोंसे उनकी आखिरी कौड़ीतक छीन ली,—न्याय विचार, दया इत्यादिकी कुछ भी परवाह न की।' (फ्रान्सोया मार्टिनके मेमायर) अँग्रेज, फरासीसी और डच कोठीके महाजनोंने बार-बार दूत और भेंट भेजकर शिवाजीको खुश रखा।

शेर खाँ लोदीको हार

जिंजी प्रदेशसे दक्षिणमें कावेरी नदीतक फैली हुई शेर खाँ लोदीकी बड़ी भारी जागीर थी। वह युद्ध-विद्यासे बिलकुल ही अनजान था और सब काम अपने चालाक द्रविड़ ब्राह्मण-मन्त्रियोंकी सलाहसे ही किया करता था। इन लोगोंने उसको समझा दिया था कि शिवाजीकी फौज कुछ भी नहीं है; परन्तु उसके मित्र और मददगार पाण्डीचेरीके शासनकर्त्ता फ्रान्सोया मार्टिनने उससे कहा कि यह शत्रु बड़ा भयकर है। चार हजार डरपोक और निकम्मे घुड़सवार तथा तीन-चार हजार प्यादोंकी फौज लेकर शेर खाँ तिरुवड़ीमें (कड्डालोरसे १३ मील पश्चिममें) १०वीं जूनसे मराठोंका रास्ता रोके बैठा था। २३वीं मईको शिवाजी जिंजीसे वेलूर पहुँचकर वहाँ एक महीनेतक ठहरे और इस किलेको घेरनेका बन्दोबस्त ठीक-ठाक करके छः हजार घुड़सवारोंके साथ २६वीं जूनको तिरुवड़ी आये। उनको देखते ही शेर खाँ अपनी फौज सजाकर उनके ऊपर चढ़ाई करनेको आगे बढ़ा, परन्तु मराठे लोग अपनी जगहपर स्थिर होकर चुपचाप खड़े-खड़े शत्रुकी राह देखते रहे। यह दृश्य देख शेर खाँका हृदय काँपने

लगा। उसे बड़ी भारी आफत सामने दिखाई पड़ने लगी। उसने अपनी फौजको लौटनेकी आज्ञा दे दी। इससे वे और भी डरे और छितरा गये। ठीक इसी मौके-पर शिवाजी घोड़ा दौड़ाकर उनके ऊपर टूट पड़े। शेर खाँकी सब सेना जान लेकर भागी और चारों ओर तितर-बितर हो गई।

शेर खाँ भागकर तिरुवड़ीके छोटे किलेमें घुस गया और भीतरसे दरवाजा बन्द करके बैठ रहा। कड्डालोरमें आश्रय लेनेकी इच्छासे वह रातको वहाँसे बाहर निकला। परन्तु मराठोंको यह बात मालूम हो गई और उन लोगोंने उसका पीछा करके उसे अकालनायकके जंगलमें खदेड़ दिया। चन्द्रमा अस्त होनेपर अन्धकारकी आड़में जंगलसे बाहर शेर खाँ केवल एक सौ सवार ले (२७वीं जूनको) बाईस मील दूर भेलार नदीके उत्तर किनारेपर बोनगिरपट्टन नामक एक छोटेसे किलेमें घुसा। परन्तु उसके पाँच सौ घोड़े, दो हाथी, बीस ऊँट और तम्बू, नगाड़ा, पताका तथा लदुवे बैल आदि सब सामान मराठोंने छीन लिया। इसके बाद कुछ ही दिनोंमें शेर खाँकी रियासतके बहुत-से शहर और किले शिवाजीने बेरोक-टोक ले लिये। अन्तमे ५वीं जुलाईको खाँने सन्धि कर शिवाजीको अपना सारा देश दे डाला और अपने छुटकारेके लिए एक लाख रुपये देनेका वचन दिया। रुपये अदा न करनेतक उसने अपने लड़के इब्राहीम खाँको जामिनके तौरपर शिवाजीके अधीन रखा। शिवाजीने प्रतिज्ञा की कि वे शेर खाँको परिवारके साथ खुले आम इस किलेसे बाहर निकलने देंगे और कड्डालोरमें रखी हुई उसकी सम्पत्ति ले जाने देंगे।[1]

शिवाजीसे व्यङ्कोजीकी मुलाकात और झगड़ा

शिवाजीने यहाँसे और भी दक्षिणकी ओर कूच कर (कावेरीके मुहानेसे पासकी सबसे उत्तरकी शाखा) कोलेरुण नदीके तीर तिरुमलवाड़ी नामक स्थानमें १२वीं जुलाईको पहुँचकर वर्षाऋतु बितानेके लिए फौजका डेरा डाला। व्यंकोजीकी राजधानी तंजोर शहर यहाँसे केवल दस मील दक्षिणकी ओर है। बीचमें केवल कोलेरुण नदी पड़ती है। यहीं बैठे-बैठे मदुराके राजासे कर वसूल करनेकी कोशिश होने लगी। एक करोड़ रुपये माँगे गये, परन्तु अन्तमें तीस

१. अंतमें सन् १६७८ ई० के अप्रैल महीनेमें राज्य-रहित, पूँजी-हीन शेर खाँने मदुरा-राज्यके द्वारपर आश्रय लिया।

लाखपर मामला तय हुआ। यह भी तय हुआ कि इतने रुपये मिल जानेपर शिवाजी फिर मदुरापर आक्रमण न करेंगे।

इसी बीच शिवाजीने अपने सौतेले भाई व्यंकोजीको मुलाकातके लिए बुला भेजा। पहले उनके अनुरोधसे व्यंकोजीका मंत्री शिवाजीके साथ सलाह करने आया। जब वह लौटने लगा तब शिवाजीके तीन मंत्री निमन्त्रणपत्र और साथ ही शिवाजीके अभय वचन लेकर उसके संग व्यंकोज के यहाँ आये। व्यंकोजी दो हजार सवारोंके साथ आधी जुलाईके लगभग तिरुमलवाड़ी पहुँचे। शिवाजीने उनका स्वागत किया और कई दिनतक भोज और उपहारोंका आदान-प्रदान चलता रहा।

उसके बाद कामकी चर्चा चलने लगी। मरनेके समय शाहजी जो कुछ धन-सम्पत्ति और जागीर कर्णाटकमें छोड़ गये थे, वह सब व्यंकोजीके हाथ लगी थी। पिताके ज्येष्ठ पुत्रकी हैसियतसे शिवाजीने अपने बारह-आना हिस्सेका दावा किया, परन्तु व्यंकोजीने चौथाई हिस्सा लेकर सन्तोष करनेसे इनकार किया। तब शिवाजीने गुस्सेमें आकर इनको खूब धमकाया और नजरबन्द कर दिया। व्यंकोजीने देखा कि सब धन-सम्पत्ति बिना सौंपे छुटकारा मिलना मुश्किल है; किन्तु वे भी तो शिवाजीके भाई ही थे। चुपचाप सब बन्दोबस्त ठीक कर एक दिन रातको शौचके बहाने नदीके किनारे वे एक निर्जन स्थानमें गये। वहाँ पाँच आदमी नावोंका बेड़ा लेकर तैयार थे। व्यंकोजी उसमें कूद पड़े और नदी पार होकर अपने राज्यमें (२३ जुलाईको) जा पहुँचे।

दूसरे दिन सबेरे खबर पानेपर शिवाजी बड़े बिगड़े और कहने लगे, "वह भागा ही क्यों? क्या हम उसे पकड़ने जाते थे? भागनेकी क्या बात थी? हम जितना चाहते थे अगर वह उतना न देना चाहता था, तो वैसा कह देता। हम उसे छोड़ देते। पर छोटा तो छोटा ही है, बुद्धि भी लड़केकी तरह दिखाई। व्यंकोजीके मन्त्री भी मालिकके भागनेकी खबर पाकर भागनेवाले थे, पर वे पकड़कर शिवाजीके पास लाये गये। कुछ दिन रोककर शिवाजीने उन लोगोंको छोड़ दिया और खिलअत और इनाम देकर तंजोर भेज दिया। उन्हें तकलीफ देनेसे शिवाजीको बदनामीके सिवा कुछ हाथ लगनेवाला न था। उन्होंने कोलेरुणके उत्तरमें शाहजीकी सम्पूर्ण जागीरपर कब्जा कर लिया।

शिवाजीके शिविरका वर्णन

फरासीसी दूत जारमाय्याने तिरुमलवाड़ीमें शिवाजीके शिविरको देखकर उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

"उनके शिविरमें किसी प्रकारकी धूमधाम नहीं है। भारी-भरकम चीजों या स्त्रियोंकी झंझट भी नहीं है। सारे शिविरमें केवल दो तम्बू हैं, वह भी छोटे और साधारण मोटे कपड़ेके बने हुए—एकमें शिवाजी रहते हैं और दूसरेमें उनके पेशवा। मराठे सवारोंका मासिक वेतन दस रुपया है। उनको घोड़े और साईस राजाकी ओरसे ही मिलते हैं। दो-दो सिपाहियोंमें तीन-तीन घोड़े रखे जाते हैं, इसलिए वे खूब तेजीसे चल सकते हैं। शिवाजी गुप्तचरोंको खुले हाथ रुपये देते हैं और वे भी उनको सच्चे समाचार देकर उनकी विजयमें विशेष सहायता करते हैं।"

व्यंकोजीको लौटा लानेकी आशा न देख शिवाजी २७ जुलाईको तिरुमल-वाड़ी छोड़ फिर उत्तरकी ओर आये। बलिकण्डपुरम्‌से चलकर रास्तेमें चिदम्बरम् और वृद्धाचलम्‌में (दो प्रसिद्ध तीर्थ) देव-दर्शन करके धीरे-धीरे ३ अक्टूबरको वे मद्राससे दो दिनके रास्तेकी दूरीपर आ पहुँचे। इसी बीचमें आरणि आदि किले भी उनके हाथमें आ गये।

कर्णाटकमें नये राज्यका बन्दोबस्त

अब उनको खबर मिली कि एक महीने पहले औरंगजेबके हुक्मसे मुगल सूबे-दारने बीजापुरके साथ मिलकर गोलकुण्डापर आक्रमण कर दिया है, क्योंकि कुतुब-शाहने शिवाजीके समान विद्रोहीके साथ मैत्री की थी। इधर शिवाजीको भी अपना राज्य छोड़े दस महीने हो गये थे और वहाँका काम-काज भी बहुत अच्छी तरहसे नहीं चल रहा था। इसलिए उन्होंने अब अपने देशको लौटनेका ही निश्चय किया।

नवम्बरके प्रथम सप्ताहमें चार हजार सवारोंको साथ ले वे कर्णाटककी समर-भूमि छोड़ मैसूरकी अधित्यकाके ऊपर चढ़े और वहाँ अपने पिताकी जागीरके सब महाल अधिकार करके महाराष्ट्रको लौट आये। उनके बहुत-से सिपाही फिलहाल कर्णाटकमें ही रह गये; क्योंकि उस ओर उन्होंने जो राज्य जीता था वह बहुत बड़ा और धनशाली था। यह प्रदेश लम्बाईमें १८० मील और चौड़ाईमें १२० मील था। उसमें ८६ किले थे। उसकी सालाना माल-गुजारी ४६ लाख रुपयेसे भी अधिक थी। इस नये राज्यमें जिंजी और वेलूरके

जिले भी आते थे। इसकी राजधानी थी जिंजीका किला। शाहजीके दासी-पुत्र शान्ताजीको यहाँका शासनकर्ता, रघुनाथ हनुमन्तेको दीवान और हम्बीरराव मोहितेको सेनापति नियुक्त कर शिवाजी लौट आये। रगोनारायण मैसूरकी अधित्यकाके विजित महालोंके हाकिम हुए।

इसी बीचमें व्यंकोजी कर्णाटकमें पिताकी जागीरके उद्धारके लिए चारों ओर षड्यन्त्र रचने लगे; पर कुछ कर न सके। अन्तमें १६७७ ई० की १६ नवम्बरको वे कोलेरुण पार होकर चौदह हजार सेनाके साथ शान्ताजीकी बारह हजार सेनापर टूट पड़े। सारे दिन लड़नेके बाद शान्ताजी हार मानकर एक कोस पीछे हटे। परन्तु रातको जब व्यकोजीकी विजयी सेना थककर अपने खेमोंमें घोड़ोंके जीन खोलकर सुस्ता रही थी तब शान्ताजीने अपनी हारी हुई फौजको फिर इकट्ठा किया और उसमें नया जोश भरकर अच्छे घोड़ोंपर चढ़ा एक विकट रास्तेसे ले जाकर अकस्मात् व्यंकोजीके शिविरपर धावा कर दिया। व्यंकोजीका दल आत्मरक्षा न कर सका। बहुतसे लोग मारे गये और बाकी सब नदी पारकर तंजोर भाग गये। तीन प्रधान फाजी अफसर पकड़े गये। शत्रुके एक हजार घोड़े, तम्बू और अनेकों चीजें शान्ताजीके हाथ लगीं।

व्यंकोजीके साथ आखिरी निपटारा

दोनों भाइयोंमें कुछ दिनतक और भी छोटी-मोटी लड़ाइयाँ होती रहीं। देशकी अवस्था दिनपर दिन बिगड़ती ही गई। अन्तमें शिवाजीने देखा कि अपनी इतनी फौज और बड़े-बड़े सेनापतियोंको कर्णाटकमें अधिक दिनतक अटका रखनेसे महाराष्ट्रकी रक्षा कठिन हो जायगी। तब उन्होंने व्यंकोजीके साथ सन्धि कर ली। व्यंकोजीने उनको छः लाख रुपये दिये। उसके बदलेमें शिवाजीने कर्णाटकके उत्तर जिंजी और वेलूर-प्रदेश अपने कब्जेमें रखकर बाकी सब देश (कोलेरुणके उत्तरके कई महाल और उसके दक्षिणमें तंजोरका सम्पूर्ण राज्य) भाईको दे दिया। कुछ दिन बाद मैसूरकी जागीर भी व्यंकोजीको मिली। इस प्रकार शान्ति स्थापित हो जानेपर हम्बीरराव शिवाजीकी बाकी फौज लेकर देश लौट आये। कर्णाटककी रक्षाके लिए रघुनाथ हनुमन्तेने वहाँके लोगोंकी दस हजारकी एक फौज बनाई।

कर्णाटकसे जो धन-रत्न शिवाजीको मिला वह कल्पनातीत था।

दसवाँ अध्याय

शिवाजीकी सामुद्रिक शक्ति

राजापुरके अँग्रेजोंकी शिवाजीके साथ शत्रुता

सन् १६५९ ई०के अन्तमें जब शिवाजी बीजापुर राज्यमें बहुत-से स्थान जीतनेमें लगे थे, उस समय अँग्रेजोंकी प्रधान कोठी सूरतमें थी। सूरत मुगल-साम्राज्यमे था। बम्बई द्वीप तब पुर्तगालियोंके हाथमें था। इसके एक वर्ष बाद अँग्रेजोंके बादशाह द्वितीय चार्ल्सको पुर्तगालके बादशाहने विवाहमें दहेज-स्वरूप यह द्वीप दिया। कई वर्ष बाद अग्रेजोका प्रधान दफ्तर सूरतसे यहाँ लाया गया। सूरतके अतिरिक्त राजापुर (रत्नागिरी जिलेका बन्दर), कारवार (गोआके दक्षिणका बन्दर), कनाड़ाकी अधित्यकाका हुबली और खानदेश प्रदेशका धारणगाँव इत्यादि कतिपय बड़े व्यापारिक केन्द्रोंमें अँग्रेजोंकी कोठियाँ और कपड़े तथा मिरिचकी आढ़तें थीं।

सन् १६६० ई० के जनवरीके शुरूमें ही शिवाजीकी सेनाने कुछ दिनके लिए राजापुर बन्दरपर कब्जा कर लिया। वहाँकी अँग्रेजी कोठीके मालिक हेनरी रेविंग्टनने बीजापुरी अफसरोंके मालको कम्पनीका माल बताकर मराठोंको उसे लेनेसे रोका। इस घटनासे शिवाजीके साथ अँग्रेजोंका झगड़ा हुआ, परन्तु वह जल्दी ही निपट गया।

इसके कुछ महीने बाद जब सिद्दी जौहरने शिवाजीको पनहाला किलेमें घेर लिया, तब उसी रेविंग्टन और दो-चार अँग्रेजोंने कुछ छोटी तोपें (मार्टर) और खास प्रकारके गोले (ग्रेनेड) जौहरको बेचनेके लिए निकाले और वहाँ जाकर उनकी शक्ति दिखानेके लिए शिवाजीके किलेपर कुछ गोले (ग्रेनेड) छोड़े। शिवाजीने देखा कि अँग्रेजी झंडेके नीचे गोरोका एक दल ये गोले छोड़ रहा है।

राजापुरको अँग्रेजी कोठीकी लूट

इस अकारण शत्रुताकी सजा विदेशी बनियोंको दूसरे साल मिली। सन्

१६६१ ई० के मार्च महीनेमें शिवाजीने रत्नागिरी जिलेपर कब्जा कर लिया, और फिर राजापुर पहुँचकर अँग्रेजी कोठीवालोंको कैद कर लिया। कोठी लूटने और जलाकर भस्म करनेके बाद रुपयेकी तलाशमें जमीन खोदी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि राजापुरमें अँग्रेजोंका कारबार नष्ट हो गया। मराठोंने यह कहकर कि 'बहुत रुपये लिए बिना न छोड़ेंगे' उस समयके चार अँग्रेजी कैदियोंको दो वर्षतक अपने पहाड़ी किलोंमें रोक रखा।

कम्पनीके मालिकोंने कहा कि जब रेविंग्टन-प्रभृति कर्मचारियोंने अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए शिवाजीके साथ शत्रुता कर स्वयं आफत मोल ली है, तब रुपये देकर उन्हें छुड़ानेकी कम्पनीको कोई आवश्यकता नहीं। अन्तमें बहुत कष्ट झेलनेके बाद उन लोगोंने सन् १६६३ ई० की फरवरीमें यों ही छुटकारा पाया।

उसके बाद कम्पनीने राजापुरकी कोठी लूटने और ध्वंस करनेकी क्षतिपूर्तिका दावा किया। शिवाजीने लूटपाटमें अपनी जिम्मेदारी अस्वीकार कर दी, अथवा बहुत थोड़े रुपये देने चाहे। इस बातपर बीस वर्षसे भी अधिक समय तक वाद-विवाद और लिखा-पढ़ी चलती रही। अँग्रेजोंने आश्चर्यजनक सहनशीलता और जिदका परिचय दिया और बहुत दिनोंतक अपना दावा न छोड़ा। शिवाजीके पास वे बार-बार दूत* भेजते रहे। बादमें जब मराठोंने हुबली, धारणगाँव आदि स्थानोंकी अँग्रेजी कोठियाँ भी लूटीं, तब तो उनकी भी माँग पेश की गई। यह झगड़ा शिवाजीके जीते-जी नहीं निपटा, परन्तु इसके लिए दोनों दलोंमें लड़ाई भी न हुई, क्योंकि उन दिनों अँग्रेज और शिवाजी दोनों ही बहुत-सी बातोंमें एक-दूसरेके मुखापेक्षी थे। बम्बई टापूमें तरकारी, चावल, जलानेकी लकड़ी, मांस आदि कुछ भी नहीं होता था। ये सब चीजें उस पार शिवाजीके देशसे न आनेपर बम्बईके लोग भूखों मर जाते, और शिवाजीके राज्यमें नमक, मोमबत्ती, बारीक रेशमी कपड़े (बनात और दुलाई), तोप, बारूद आदि चीजें अँग्रेजी वणिक् ही लाकर दे सकते थे। इसके सिवा अँग्रेजोंके व्यापारसे शिवाजीकी प्रजाको और हाट-बाजारके महसूलसे

---

* उस्टिक (१६७२ ई०), निकोलस (१६७३ ई०) हेनरी आक्सिण्डेन (१६७५ ई०)।

सरकारको बहुत आमदनी होती थी; इसीसे यह झगड़ा कभी युद्धमें परिणत न हुआ।

राजापुर कोठीकी हानिका दावा

अँग्रेज बनियोंको अच्छी तरह मालूम था कि शिवाजीको चिढ़ानेसे उनके विस्तृत राज्यमें उनकी खरीद-बिक्री एकबारगी ही बन्द हो जायगी और उन लोगोंमें इतनी शक्ति भी नहीं थी कि वे युद्ध करके शिवाजीको अपने वशमें करते या उनसे अपना हरजाना वसूल करते। दूसरी ओर उनको यह भी डर था कि यदि वे शिवाजीको तोप और बारूद आदि न बेचेंगे, तो शिवाजी चिढ़कर उनका व्यापार बन्द कर देंगे। इसके अलावा एक और भी बड़ी आफत यह थी कि मराठा राजाको इस प्रकारकी मदद देनेकी बात यदि प्रकट हो गई, तो मुगल बादशाह गुस्सा होकर अँग्रेजी कोठीको अपने राज्यसे हटा देंगे और अँग्रेज व्यापारियोंको कैद कर लेंगे। फरासीसियोंने इस मौकेपर चुपके-चुपके कुछ छोटी-छोटी तोपें और शीशे शिवाजीके हाथ बेचे भी।

होशियार अँग्रेज मालिकोंने अपने स्थानीय नौकरोंको लिख भेजा, "इन दोनों संकटोंके बीच बड़ी सावधानीसे चलना, जिसमें कोई भी पक्ष न चिढ़े। शिवाजीके हाथ तोप-बारूद मत बेचना और खुल्लमखुल्ला बेचनेसे इनकार भी मत करना। खुलासा जवाब न देकर जितने अधिक दिन काटे जायँ, काटना। शिवाजीको यह लोभ दिखाकर कि हम लोग अपने जहाज और तोपें ले जाकर हबशी-राजधानी दण्डा-राजपुरी जीतनेके लिए उनकी मदद कर सकते हैं, बात-चीत छेड़ना। इस प्रकार उनको बहुत दिनतक अपने हाथमें रखना।"

शिवाजी भी जो रुपये एक बार हाथ लगे, उनको वापस देनेको राजी न थे। इस हालतमें राजापुर कोठीकी क्षतिपूर्तिकी बातका निपटारा होना असम्भव था। अँग्रेजोंने एक लाखका दावा किया था। शिवाजीके मन्त्रियोंने पहले हानिका हिसाब बीस हजार लगाया था। बादमें अट्ठाईस हजारपर आये। अन्तमें चालीस हजारतक पहुँचे; परन्तु वह भी नकद देनेवाले न थे। इसमेंसे ३२ हजार रुपयोंमें कुछ नकद और कुछ व्यापारका माल देकर चुकता किया जायगा।

बाकी आठ हजार रुपये तीनसे लेकर पाँच वर्षतक राजापुर बन्दरमें अँग्रेजोंकी आनेवाली चीजोंके ऊपर महसूल माफ कर पूरे किये जायँगे।

शिवाजीके राज्याभिषेकके दरबारमें (जून १६७४ ई० में) उपस्थित होकर अँग्रेज दूत हेनरी आक्सिण्डेनने निम्नलिखित तीन शर्तें तय करके एक सन्धि-पत्रपर दस्तखत करा लिये—

(१) क्षतिपूर्तिके लिए शिवाजी अँग्रेजोंको चालीस हजार रुपये देंगे। इसका एक-तिहाई हिस्सा नकद और माल (सुपारी) के रूपमें शिवाजीके जीवन-कालमें चुकता किया जायगा।

(२) शिवाजी अपने राज्यकी अँग्रेजी कोठियोंकी रक्षा करेंगे और तद-नुसार सन् १६७५ ई० में अँग्रेजोंने राजापुरमें फिर अपनी कोठी खोली।

(३) उनके राज्यके समुद्र-तटपर यदि तूफानमें कोई जहाज आकर जमीन-पर अचल हो जाय अथवा टूटे हुए जहाजका माल आवे, तो वे उसे खुद जब्त न करके जहाजके मालिकको लौटा देंगे।

परन्तु शिवाजी अँग्रेजोंकी चौथी प्रार्थना यानी उनके राज्यमें अँग्रेजोंके सिक्के चलानेकी बातपर किसी प्रकार भी राजी न हुए।

शिवाजीके साथ अँग्रेज बनियोंकी भेंट

राजापुरकी नई कोठीके साहबोंने सन् १६७४ ई० में शिवाजीके साथ मुला-कात की जिसका सुन्दर वर्णन इस प्रकार लिखा मिलता है—

"२२ मार्चको दोपहरके समय राजा आये। उनके साथमें बहुत-से सवार और डेढ़ सौ पालकियाँ थीं। उनके आनेका समाचार मिलते ही हम लोग तम्बूसे बाहर निकले और थोड़ी ही दूरपर उनसे मिले। हम लोगोंको देख उन्होंने पालकी रुकवाई, और नजदीक बुलाकर कहा कि हमारे साथ मुलाकात करने आनेसे तुम लोगोंपर हम बहुत खुश हुए, परन्तु इस समयकी भीषण गर्मीमें तुम्हें खड़ा न रखकर शामको बुलायेंगे।

"२३ मार्चको राजा फिर आये और पालकी रुकवाकर हम लोगोंको अपने पास बुलाया। हम लोगोंके पास आनेपर हाथसे इशारा करके उन्होंने और भी पास आनेके लिए कहा। जब हम उनके पास गये तो उन्होंने अचरजके मारे

हमारी जुल्फोंको टटोल इधर-उधर हिलाया और बहुत-सी बातें पूछीं। जवाबमें उन्होंने कहा कि हम राजापुरकी तुम्हारी सब असुविधायें दूर कर देंगे और तुम्हारे सब उचित अनुरोधोंको मान लेंगे।

"दूसरे दिन फिर हम लोगोंको बुलाया गया। दो घंटेतक बातचीत हो चुकनेपर हम लोगोंकी दरख़्वास्तका मराठी अनुवाद उनको सुनाया गया। उन्होंने हम लोगोंकी सब प्रार्थनाएँ स्वीकार कर फर्मान देनेका वादा किया।"

जंजीराके हबशी

भारतके पश्चिमी किनारेपर बम्बईसे ४५ मील दक्षिणमें जजीरा नामक पत्थरका एक छोटा-सा द्वीप है। उसके आध मील पूर्वकी ओर समुद्रकी एक खाड़ी कोलाबा जिलेके भीतर घुस गई है। इसी खाड़ीके मुहानेमें उत्तरी किनारेपर दंडा नामक शहर है। इसके तीन ओर समुद्रका जल है। दंडासे दो मील उत्तर-पश्चिमकी ओर राजपुरी नामक और एक नगर है। (राजापुर-बन्दर यहाँसे बहुत दूर दक्षिणमें है।) यह सब प्रदेश और इसके आसपासकी जमीनको मिलाकर एक छोटा राज्य है, जिसका मालिक हबशी-जातिका है। यह जाति अफ्रिकाके अबीसीनिया प्रदेशसे आई थी। हबशियोंका रंग अत्यन्त काला, होंठ मोटे और बाल घूँघरवाले होते है।

यहाँ हबशियोके केवल दो-चार घर थे। उनको भारतके असंख्य लोगोंके साथ रहकर उनपर अपनी प्रभुता जमानी थी। वे सब लड़ाई करने और जहाज चलानेके काममे बड़े होशियार थे, और इसके सिवाय दूसरा कोई काम नहीं करते थे। हर एक अपनेको एक छोटा-मोटा रईस समझता था और राजपुत्रकी शान और घमंडसे रहता था। उनका दलपति बापके उत्तराधिकारीके क्रमसे नहीं होता था। अपनी जातिके सबसे बुद्धिमान् और काम-काजमे होशियार वीरको चुनकर वे उसे नेता स्वीकार करते थे और उसकी आज्ञा मानते थे। उस समय भारतवर्षमे हबशी-जाति अपनी बहादुरी, परिश्रम, कष्टसहन करनेकी शक्ति, लड़ाई और राज-काजमें एक-सी बुद्धिमानी तथा स्वामि-भक्तिके लिए प्रसिद्ध थी; और यह जाति मनकी स्थिरता, लोगोंको संचालन करनेकी शक्ति और जल-युद्धके परिपक्व ज्ञानमें यूरोपियनोंके सिवा और सब जातियोंसे श्रेष्ठ थी। ये सिद्दी (सैयद या उच्च वंशमें पैदा होनेवाले) कहलाते थे।

शिवाजी और सिद्दियोंमें झगड़ेका कारण

जंजीराके पूरबकी समुद्र-तटकी भूमि कोलाबा जिलेमें पड़ती है। यहाँ हबशियोंके खाने-पीनेका अन्नादि पैदा होता था; राजस्व जमा होता था और अनुचर लोग भी यहीं बसते थे। शिवाजीने उत्तर-कोंकणमें कल्याण,—यानी वर्तमान थाना जिलेपर कब्जा कर लिया। उसके बाद ही कोलाबा जिलेमें प्रवेश करनेपर हबशियोंके साथ उनकी मुठभेड़ हुई। ऐसा होना अनिवार्य था, क्योंकि इस समुद्र-तटकी जमीनको खो बैठने पर हबशी लोग भोजन बिना भूखों मरते, इसलिए वे दंडा-राजापुरीको अपने हाथमें रखनेके लिए दिलो-जानसे लड़ने लगे। दूसरी ओर शिवाजी यह भी जानते थे कि तटभूमि और जंजीरेके टापूसे हबशियोंको भगाये अथवा उन्हें वशमें किये बिना कोंकण प्रदेशका उनका स्थलभाग भी विभक्त और अरक्षित ही रहेगा। ये सब शत्रु जहाजमें चढ़ जिधर चाहें उधर उतरकर गाँव लूटेंगे और प्रजाको दास बनाकर ले जायँगे। 'जैसे घरका चूहा, सिद्दी लोग भी ठीक उसी प्रकारके बैरी हैं।' (सभासद)। खासकर वे हिन्दू प्रजापर अत्यन्त भीषण अत्याचार करते थे। ब्राह्मणोंको पकड़कर उनसे मेहतरका काम करवाते और छोटे-मोटे लोगोंके तो नाक-कानतक काट लेते थे। साथ ही वे इस टापू और किलेके आश्रयमें अपने जहाज रखकर, समुद्रमें जब-तब मराठोंके जहाज पकड़ सकते थे।

सिद्दियोंके साथ मराठोंका युद्ध

इसलिए जंजीरा द्वीपपर अधिकार कर पश्चिमी समुद्र-तटसे सिद्दियोंके प्रभावको बिलकुल नष्ट कर डालना शिवाजीके जीवनका व्रत हो गया। इस काममें वे असंख्य फौज लेकर पानीकी तरह रुपये खर्च करने लगे।

परन्तु मराठोंके पास न तो अच्छी तोपें थीं और न तोप चलानेकी सहूलियत ही। उनके जहाज हबशियोंके जहाजोंके सामने कुछ भी नहीं थे। इन दो शक्तियोंकी लड़ाई बंगालमे लड़ाकोंको भुलवा देनेवाली 'सुन्दरवनके शेर और मकर' की कथाकी तरह हुई। शिवाजीकी फौज अगणित और स्थल-युद्धमें अजेय थी। इधर हबशी लोग जल-युद्धमें मोर्चा लेनेमें उतने ही श्रेष्ठ थे, परन्तु उनकी स्थल-सेना एक हजारसे ज्यादा न थी।

सन् १६५८ ई० से कोलाबा जिलेमें लगातार अधिकाधिक फौज भेजकर

शिवाजी हबशी-राज्य के स्थलभागपर जितना हो सका, उतना अधिकार जमाने लगे। लड़ाई बहुत दिनतक चली। कभी यह दल जीतता, तो कभी वह दल। अन्तमें शिवाजीने दंडा-दुर्ग छीन लिया और केवल टापू ही सिद्दियोंके हाथमें रह गया। उन लोगोंने तट-प्रदेशके समस्त किले और शहर गँवा दिये, परन्तु 'पेट भरनेके लिए' वे जहाजो के द्वारा रत्नागिरि जिलेमें जा-जाकर गाँव लूटने लगे। हर साल वर्षाऋतुके बाद शिवाजी कई महीनोंतक समुद्र-तटसे जजीरा द्वीपपर गोले छोड़ते थे, परन्तु उससे कुछ भी लाभ न होता था। अन्तमें शिवाजीने सोचा कि जबतक लड़ाईके जहाज अपने खुदके न होंगे, तबतक उनके लिए अपनी इज्जत और राज्य कायम रखना मुश्किल होगा, इसलिए नौ-बल संगठित करनेकी आवश्यकता उन्हें मालूम हुई।

शिवाजीका नौ-बल

शिवाजीके जंगी जहाजों और सामुद्रिक प्रभावके विस्तारका पूरा-पूरा हाल मालूम किया जा सकता है। सन् १६५९ ई० में कल्याणपर अधिकार करनेके बाद उसके नीचे (बम्बईसे २४ मील पूरबकी ओर) समुद्रकी खाड़ीमें शिवाजीने पहला जहाज तैयार कराकर उसे समुद्रमें उतारा। इस नई शक्तिकी जागृतिसे पुर्तगीज लोगोंके मनमें भय और ईर्ष्याका संचार हुआ। बादमें कोंकणके तटपर जैसे-जैसे जल्दी-जल्दी उनका राज्य फैलने लगा, वैसे-वैसे उसके साथ-साथ जहाज बनाने, नौ-सेना भर्ती करने, किनारेपर जहाजोंके अड्डेके लिए जल-दुर्ग और बन्दर बनाने आदिका भी काम बढ़ता गया। 'राजाने समुद्रकी पीठपर भी जीन चढ़ाई।' (सभासद)।

सब मिलाकर शिवाजीके चार सौ जहाज थे। उनमें छोटे-बड़े सब किस्मके जहाज थे; जैसे गुराब (तोपवाला, चौरस और ऊँचे फर्शका युद्ध-जहाज), गलवत (जल्दी चलनेवाला पतला लड़ाईका जहाज), ताण्डे, शिबाढ़ और मचवा (माल ढोनेवाले जहाज), पगार इत्यादि। उनके अधिकांश जहाज छोटे थे। वे भारी धातुकी चादरोंसे मढ़े हुए न होते थे, किनारा छोड़कर समुद्रमें बहुत दूर जाकर देरतक ठहर नहीं सकते थे और तोपके गोलेके पड़ते ही डूब जाते थे। अँग्रेजी कोठीके अध्यक्षने इसके बारेमें लिखा है—"ये सब जहाज निकम्मे हैं। अँग्रेजोंका एक अच्छा जंगी जहाज ऐसे सौ जहाजोंको

मजेमें डुबो दे सकता है। यानी इनको 'मच्छर जहाज' कहा जाना चाहिए। सूरत, बम्बई और गोआको छोड़ पश्चिमी किनारेके प्रायः सब बन्दरोंमें पानीकी गहराई इतनी कम है कि बड़े-बड़े जहाज न तो वहाँ जा सकते हैं और न आँधीके समय आश्रय ही ले सकते हैं, इसीलिए पुराने जमानेसे ही मलाबारके समुद्र-तटोंकी व्यापारिक वस्तुएँ छोटी और छिछली (चिपटे पेंदेवाली) नावोंमें ही इधरसे उधर भेजी जाती थीं। ये सब नावें तूफान देखते ही किनारेके पास, जहाँ मन चाहा वहाँ, छोटी खाड़ी या नदीमें भागकर अपना बचाव कर लेती थीं। इस देशके लड़ाईके जहाज भी उसी ढंगसे बनाये जाते थे। ये सब छोटे ही होते थे। इनमे बड़ी-बड़ी अथवा बहुत-सी तोपें वहन करनेकी शक्ति न थी। तूफानके समय समुद्रमें टिकनेके लिए अथवा जमीनका किनारा छोड़ दूर जाकर बहुत दिनतक एक साथ बेड़ेमें चलनेके लिए ये उपयुक्त नहीं थे। संख्याके जोरसे ही लड़ाई जीतनेकी वे कोशिश करते थे, तोपके गोलोंके जोरसे नहीं।" शिवाजीने भी अपने जहाज इसी पुराने ढाँचेके तैयार कराये, और जल-युद्धकी इस पुरानी शैलीमें कोई परिवर्तन या उन्नति नहीं की। इसीसे अँग्रेजोंकी बात तो दूर रही, वे सिद्दियोंसे भी सहजहीमें हार जाते रहे।

शिवाजीके नाविक और नौ-सेनापति

शिवाजीका नौ-बल दो हिस्सोंमें बाँटा गया था। दरिया सारंग (मुसलमान) और मयानायक (हिन्दू) उपाधिधारी दो नौ-सेनापति (एडमिरल) इनके नेता थे। रत्नागिरी जिलेमें समुद्रके किनारेके गाँवोंमें भंडारी खेतिहर मछुवे बहुत रहते हैं। वे समुद्रमें रहनेमें, जहाज चलानेमें और समुद्री लड़ाई लड़नेमें पुश्त दर-पुश्तसे अभ्यस्त थे। पहले ये समुद्री डकैती करते थे। इनका शरीर पुष्ट, बलिष्ठ और कसरत करनेसे गठीला था। स्थल-युद्धमें जिस प्रकार मराठे और कुनबी जाति बड़ी होशियार थी, ठीक उसी प्रकार जल-युद्धमें ये लोग कुशल थे। इन भंडारी तथा कोली, संघर, बघेर आदि दूसरी कई नीच हिन्दू जातियों और आंग्रे घरानेसे शिवाजीको बहुत अच्छे जल-सैनिक और नाविक मिले।

बादमें (सन् १६७७ ई० में) घरेलू झगड़ोंके कारण सिद्दी सम्बल और उसके भतीजे सिद्दी मिसरी इन दोनों हबशी सरदारोंने शिवाजीके

अधीन नौकरी कर ली। उनके दूसरे मुसलमान नौ-सेनापतिका नाम दौलत खाँ था, परन्तु जंजीरेके सिद्दियों के जहाज मराठोंके जहाजोंकी अपेक्षा अधिक मजबूत, सुरक्षित, अच्छी तोपों और चालाक सैनिकोंसे पूर्ण थे। इसीलिए लडाईमें सिद्दियोंकी ही जीत होती रही। मराटे अकसर अपने बहुत-से आदमियों और नावोंको खोकर भाग निकलते थे।

शिवाजीके अनेकों जहाज, उनका तथा उनकी प्रजाका माल लेकर अरबके मोचा और फारसके बसरा इत्यादि बन्दरोंमें जा-जाकर विभिन्न देशोंसे व्यापार करने लगे। दक्षिणके आठ-दस बन्दरगाह उनके इन व्यापारी जहाजोंके केन्द्र और विश्राम-स्थान थे। उनकी युद्धकी नावें जब सम्भव होता तब समुद्रमें वैरियोंके अरक्षित जहाजों और समुद्र-तटपर अन्यान्य राजाओंके बन्दरगाहोंको लूटती थीं। बादशाही प्रजाको सूरतसे मक्केकी हजको ले जानेवाले जहाजोंपर भी शिवाजीके जहाज अकसर आक्रमण करते थे और कभी-कभी उन्हें पकड़ भी ले जाते थे। अन्तमें औरंगजेबने बहुत अधिक वेतन देकर इन सब जहाजोंकी रक्षा करने तथा पश्चिमी समुद्रमें पहरा देकर शिवाजीकी जल-शक्तिको दमन करनेका भार सिद्दियोंके ऊपर रखा।

जंजीरामें विप्लव और सिद्दी कासिमका दंडा जीतना

शिवाजी जितने दिन जीवित रहे, प्रायः हर साल जंजारेके ऊपर चढ़ाई करते रहे। इस लगातार निष्फल चेष्टाका विस्तार-पूर्वक वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। सन् १६६९—७० ई० में उन्होंने लगातार घमासान युद्ध करके सिद्दी-सरदार फतहखाँको परेशान कर डाला। अन्न न मिलनेसे जंजीराका प्रायः पतन हो गया होता। ऐसी स्थितिमें भी सिद्दियोंको अपने शासक आदिलशाहसे किसी प्रकारकी मददकी उम्मीद न थी, अतएव फतह खाँने रुपये और जागीर लेकर यह द्वीप शिवाजीको दे देना स्वीकार कर लिया; परन्तु अन्य तीन सिद्दी सरदारोंने उसको कैद करके जंजीरा और सिद्दियोंके जहाजोंका अधिकार अपने हाथमें ले लिया। मुगल बादशाहने सिद्दी-सरदारको पुश्त दर-पुश्तके लिए 'याकूत खाँ' की पदवी और तीन लाख रुपये वार्षिक वेतन देकर उसे अपना नौकर बना लिया और समुद्रमें पहरा देनेका काम उसे सौंपा। सिद्दी कासिम

जंजीरेके और सिद्दी खैरियत स्थलभूमिके हाकिम नियत हुए, और सिद्दी सम्बल जहाजोंका नेता (एडमिरल या अमीर-उल-बहर) हुआ।

सिद्दी कासिम बड़ा चतुर, साहसी और परिश्रमी आदमी था। उसने सुशासन और काम-काजमें सर्वदा तेज नजर रखी, लड़ाईके जहाजों और गोला-बारूदको बढ़ाया और बहुतेरे मराठे जहाजोंको पकड़-पकड़कर धन वसूल किया। अन्तमें सन् १६७१ ई० की १०वीं फरवरीको, दंडा-दुर्गके मराठे सिपाही दिन-भर होली खेलकर मतवाले हो जब रातमें थके-मादे बेखबरीसे सो रहे थे, तब कासिम चुपचाप चालीस जहाजोंमें फौज लेकर बिना आवाजके दंडाके पास किलेकी दक्षिण तरफ समुद्र-किनारेके घाटपर जा पहुँचा। दूसरी ओर सिद्दी खैरियतने पाँच सौ सेना साथ ले स्थलकी ओर (किलेके उत्तरमें और दीवारके समीप) जाकर, बड़े बाजे-गाजेके साथ हल्ला मचाकर उस दीवारपर चढ़ाई करनेका बहाना किया। मराठी फौजके अधिकांश लोग इधर ही टूट पड़े। इसी मौकेपर कासिम बिना रोक-टोकके घाटकी दीवारके ऊपर चढ़कर किलेमें घुस गया। उसके कुछ लोग मरे जरूर, परन्तु वहाँ मराठोंके जितने सिपाही थे, सब हारकर भाग गये। कासिम किलेके भीतर और भी आगे बढ़ा। इसी समय अकस्मात् किलेके बारूदखानेमें आग लग गई, जिससे मराठे किलेदार और दोनों पक्षके बहुत-से लोग जलकर खाक हो गये। इस आकस्मिक दुर्घटनाके मारे फौजके लोग स्तंभित हो ठगे-से खड़े रह गये। कासिम उसी समय चिल्ला उठा,—"खासुसु खासुसु! (उसकी लड़ाईका नाद) बहादुरो! घबड़ाओ मत। हम जिन्दा हैं। हमें कोई चोट नहीं लगी है।" उसके बाद उसका दल शत्रुओंको मारता-काटता आगे बढ़कर पूरबसे आये हुए खैरियतके दलके साथ जा मिला। इस प्रकार समूचे किलेपर कब्जा करके मराठोंको खत्म कर दिया गया।

इधर जब शिवाजी रात-दिन जंजीरा लेनेकी चिन्तामें थे, उधर दंडा भी उनके हाथसे निकल गया। इस खबरसे उनको बड़ा भारी धक्का पहुँचा। लोग कहते हैं कि रातको जिस समय दंडामें आग लग जानेसे बारूदका गोदाम उड़ गया था, उस समय शिवाजी चालीस मीलकी दूरीपर अपने गढ़में सो रहे थे; एकाएक उनकी नींद टूट गई और वे बोल उठे—"मन न जाने कैसा हो रहा है; दंडामें अवश्य कोई विपत्ति आ पड़ी है।"

इस विजयके उपरान्त कासिमने इस प्रदेशके और भी सात किले मराठोंके हाथसे छीन लिये, और हारे हुए लोगोंके ऊपर चरम सीमाका अत्याचार किया। बादमें शिवाजी और शम्भूजी दोनोंने अपने शासन-कालमें इस प्रदेशको पुनः जीतनेकी कोशिश की, लेकिन सफल न हुए।

शिवाजी और औरंगजेब दोनों ही एक-दूसरेको जहाजोंके द्वारा एकबारगी हरा देनेके लिए बम्बईके अँग्रेजोंकी सहायता प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे, परन्तु अँग्रेज वणिकोंके उपयुक्त नौकर अपनी शान्तिपर दृढ़ रहे। इस अवसरपर फ्रेंच कम्पनीने चुपचाप शिवाजीको ९० छोटी तोपें और दो हजार मन शीशा बेचकर काफी नफा उठाया। डच लोगोंने शिवाजीसे प्रस्ताव किया, "आप फौज दें, हम जहाज देंगे और यों दोनों मिलकर बम्बईके ऊपर आक्रमण करके अँग्रेजोंको निकाल बाहर करेंगे। फिर उसके बाद दंडा छीनकर आपको देंगे।" परन्तु शिवाजीने इस बात पर ध्यान न दिया। उसके बाद कई वर्षतक यह लड़ाई धीरे-धीरे चलती रही। दोनों पक्ष अमानुषिक अत्याचार करते रहे।

शिवाजीका जल-युद्ध

सन् १६७४ ई० के मार्चके महीनेमें सिद्दी सम्बलने सातवली नदीके मुहानेकी खाड़ीमें घुसकर शिवाजीके नौ-सेनापति दौलत खाँपर आक्रमण किया, पर अन्तमें उसको हार मानकर लौटना पड़ा। इस लड़ाईमें दोनों पक्षके प्रधान सेनापति आहत हुए तथा १४४ आदमी मारे गये। सिद्दी सम्बल अन्यान्य हबशियोंके साथ झगड़ा करनेके कारण जल-सेनापतिके पदसे हटा दिया गया। अन्त में वह (१६७७ ई० नवम्बर-दिसम्बरमें) अपने जहाज और अपनी जातिका साथ छोड़कर अपने परिवार और अनुचर लेकर शिवाजीके अधीन नौकरी करने लगा।

खान्देरी द्वीपके लिए अँग्रेजोंके साथ लड़ाई

जंजीरा-जयकी आशा छूट जानेपर शिवाजीने अपना एक जहाजी अड्डा स्थापित करनेकी इच्छासे आसपास ही एक दूसरा द्वीप ढूँढ़ निकाला। इसका नाम था खान्देरी। यह बम्बईसे ग्यारह मील दक्षिण और जंजीरासे ३० मील उत्तरमें था। सन् १६७९ ई० के सितम्बर महीनेमें उनके डेढ़ सौ आदमियोंने चार तोपें लेकर मयानायकके अधीनस्थ जहाजोंपर जाकर इस

छोटे निराले द्वीपपर कब्जा कर लिया, तथा चटपट पत्थर और मिट्टीकी दीवार खड़ी कर उसे चारों ओरसे घेर दिया। शिवाजीने इसके खर्चके लिए पाँच लाख रुपये मंजूर किये। इससे अँग्रेजोंको डर हुआ, क्योंकि बम्बईमें जो जहाज आते-जाते थे, वे सब खान्देरीसे मजेमें दिखाई देते थे, और वहाँसे उनपर शीघ्रता एवं आसानीसे आक्रमण किये जा सकनेकी पूरी सम्भावना भी थी। यदि खान्देरी शत्रु द्वारा अभेद्य हो जायगी, तो इसके सहारे मराठोंके जंगी जहाजोंको समुद्रमें अँग्रेजोंके व्यापारी जहाजोंका नाश करना सहज हो जायगा।

इसलिए बम्बईमें रहनेवाली अँग्रेजी फौज और उनके लड़ाकू जहाज मराठोंको खान्देरीसे भगानेके लिए आये। १९वीं सितम्बर सन् १६७९ ई० को अँग्रेजों और मराठोंके बीच पहली लड़ाई हुई। अंग्रेज हारे। सच पूछिए तो यह स्थल-युद्ध ही था। बड़े-बड़े अँग्रेजी जहाज किनारेसे बहुत दूर रुककर खान्देरीकी खाड़ीमें घुसनेसे हिचकिचाते थे, क्योंकि उस समयतक उस स्थानके पानीको थाह नहीं ली गई थी। ऐसे समय प्रधान सेनापतिकी आज्ञा न मानकर लेफ्टिनेण्ट फ्रान्सिस थार्पने सिपाहियोंसे लदे तोप-हीन केवल तीन छोटे शिबाड़ (माल लादनेवाले जहाज) साथ ले, इस द्वीपमें उतरनेकी कोशिश की। किनारेसे उनके ऊपर गोली बरसने लगी। थार्प और कुछ अँग्रेज मारे गये, बहुत-से जखमी हुए और बहुत-से किनारेपर उतरनेके बाद मराठोंके हाथ कैद हुए। थार्पके शिबाड़पर शत्रुओंने अधिकार कर लिया। अन्य दो शिबाड़ बाहर समुद्रमें भाग गये।

१८वीं अक्टूबरको दूसरी बार जल-युद्ध हुआ। उस दिन सबेरे दौलत खाँने ६० जंगी जहाज ले आक्रमण किया। अँग्रेजोंके केवल आठ जहाज थे, उनमेंसे 'रिव्हेंज' नामका फ्रिगेट और दो गुराब बड़े थे, बाकी सब छोटे थे। इन सबोंमें दो सौ अँग्रेजी सेना, तथा देशी और गोरे मल्लाह थे। चौल दुर्गके कुछ उत्तरमें किनारेकी ओर अपने आश्रयसे बाहर निकलकर मराठे जहाज सामनेके हिस्सेसे तोप दागते हुए इतनी तेजीसे आगे बढ़े कि खान्देरीके बाहर अंग्रेजी जहाजोंको लंगर उठाकर भागनेका भी समय न मिला। आध घण्टेके अन्दर ही अँग्रेजोंके 'डोव्हर' नामक गुराबमें सार्जण्ट मालिव्हरर और कई एक गोरोंने अत्यन्त कायरताके साथ आत्म-समर्पण कर दिया और जहाज-सहित सब मराठों-

के हाथ कैद हुए।[1] अन्य छः छोटे अँग्रेजी जहाज मारे डरके रणस्थलसे दूर ही रहे। परन्तु एक सिंह ही हजारों सियारोंको हरा सकता है। चारों ओर शत्रुओंके जहाजोंके बीच 'रिव्हेंज' फ्रिगेटने निर्भयतासे खड़े होकर तोपके गोलोंसे पाँच मराठे गलवत डुबा दिये और अन्य दूसरोंकी भी ऐसी दशा कर डाली कि दौलत खाँ अपना जहाज ले नागोठाणाको भाग गया। 'रिव्हेंज' उसके पीछे पीछे चला।

दो दिन बाद दौलत खाँ खाड़ीसे बाहर आया, परन्तु अँग्रेजी जहाजोंको अपनी ओर आते देख पुनः लौटकर भागा। नवम्बरके अन्तमे सिद्दी कासिम २४ जहाज ले अँग्रेजोंके साथ जा मिला और दोनों दल खान्देरीके ऊपर रोज गोलाबारी करने लगे।

परन्तु इन सब लड़ाइयोंके खर्च और शिवाजीके राज्यमें अपना व्यापार बन्द होनेके डरसे अँग्रेजोंके मालिक डर गये। धन और जनकी उनमें कमी थी। गोरे सिपाहियोंके मरनेपर नये लोगोंका मिलना कठिन था, इसलिए उन लोगोंने शिवाजोको खूब मीठी भाषामे चिट्ठी लिखकर निपटारा कर दिया। जनवरी महीनेमें अँग्रेजी जंगो जहाज खान्देरीकी खाड़ी छोड़ बम्बई लौट गये।

सिद्दीके साथ जल-युद्ध

परन्तु सिद्दी कासिमने खान्देरीके पास उन्देरी द्वीपपर कब्जा कर लिया। वहाँपर वह तोपें चढ़ा, दीवार बाँध (१६८० ई० की ८वीं जनवरीको) खान्देरीके ऊपर गोले दागने लगा। दौलत खाँने नागोठाणा खाड़ीसे जहाजोंके साथ आकर दो राततक उन्देरीपर कब्जा करनेकी वृथा चेष्टा की। २६वीं जनवरीको उसने तीनों ओरसे उन्देरीपर आक्रमण किया। चार घण्टेतक लड़ाई हुई। अन्तमें मराठे लोग हारकर चौलको लौट गए। उनके चार गुराब और चार छोटे जहाज भी नष्ट हो गये, दो सौ सिपाही मरे, एक सौ घायल हुए और बहुत-से शत्रुके हाथ कैद हुए। दौलतखाँके पैरमें बड़ी भारी चोट आई। सिद्दीकी तरफ एक भी जहाजका नुकसान न हुआ; केवल चार आदमी मरे और सातको चोट लगी।

१ शिवाजीने इनको सुरगढ़-किलेके अन्दर बन्द रखा। वहाँ ६ठी नवम्बरको, २० अँग्रेज, फरासीसी और डच, २८ पुर्तगाली अर्थात् फिरंगी और ९ खलासी कैद थे।

ग्यारहवाँ अध्याय

कनाड़ामें मराठा-प्रभाव

शिवाजीने इतने देशोंपर चढ़ाइयाँ कीं और इतने देश जीते कि उन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं। दक्षिण-कोंकण और उत्तर कनाड़ामें (गोआके उत्तरी और दक्षिणी किनारोंपर) उन्होंने क्या किया, केवल उसीका वृत्तान्त यहाँ दिया जाता है। बम्बईके पश्चिमी किनारेपर रत्नागिरि और उत्तर-कनाड़ाके जिलोंमें कई बन्दरगाह थे—जैसे, राजापुर, खारेपटन, वेंगुरला, मालवन, कारवार, मिरजान इत्यादि। इनमेंसे बहुतोंमें यूरोपीय बनियोंकी कोठियाँ और जहाज लगनेके घाट थे। अति उपजाऊ कनाड़ा देशसे मिर्च, इलायची, मलमल, रेशम, लोहा इत्यादि अनेक कीमती चीजें इन बन्दरोंके द्वारा देश-विदेशोंको भेजी जाती थीं और इसी कारण इस देशमें अगाध धन जमा होता था।

दक्षिणी-कोंकण और कनाड़ा 'रुस्तम-ए-जमान' उपाधिधारी एक बीजापुरी उमरावके अधीन थे। शिवाजीने कई बार चढ़ाई करके सन् १६६४ ई० में गोआके उत्तरके सारे प्रदेशको—रत्नागिरि और सावन्तवाड़ीको—अपने राज्यमें मिला लिया; परन्तु गोआके दक्षिण और पूर्वके बीजापुरी भागपर अधिकार जमानेमें उनको अनेकों बाधाओंका सामना करना पड़ा और बहुत समयके बाद ही उन्हें इस काममें कुछ सफलता मिली। पश्चिमी कनाड़ाकी अधित्यकामें दो बड़े हिन्दू राज्य थे—बिदनौर और सौन्दा। सन् १६६३ ई० में बीजापुरके सुलतानके आक्रमण करनेपर बिदनौरके राजा बीजापुरके काबूमें आये और उन्हें ३५ लाख रुपये नजरानेके रूपमें देना पडा। उसके बाद अकसर बीजापुरी फौज इस देशमें घुसा करती थी। अब मराठोंने भी वही रास्ता पकड़ा। रुस्तम-ए-जमान दो पुश्तसे शिवाजीके घरानेका दोस्त था। वह कभी मराठोंके विरुद्ध होकर नहीं लड़ता था। बनावटी लड़ाई लड़कर सुलतानको भुलावा-मात्र देता था। यह बात देशके सब लोग, यहाँतक कि अँग्रेजी कोठीके साहब लोग भी जानते थे।

घोरपड़ेका नाश और सावन्तवाड़ीपर अधिकार

सन् १६६४ ई० के अप्रैल महीनेमें बीजापुरके उमराओंने फिर बिदनौरपर आक्रमण किया, क्योंकि वहाँके राजघरानेमें झगड़ा और खून-खराबी शुरू हो गई थी। इसी मौकेपर शिवाजी कई महीनेतक इस देशको मनमाने तौरपर लूटते गये और नगरोंपर अधिकार जमाने लगे। अक्टूबर और नवम्बरके महीनेमें बहलोल खाँके साथ उनकी दो बार लड़ाई हुई। पहली बार शिवाजीकी हार और दूसरी बार जीत हुई। इसी समय उन्होंने मुधोल नामक गाँवपर आक्रमणकर वहाँके जमींदार घोरपड़ेके वंशको प्रायः निर्मूल कर दिया। मराठोंमें ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि जब (१६४८ में) बीजापुरके वजीरने जिंजीके पास शाहजीको कैद किया था, तब बाजी घोरपड़ेने विश्वासघात कर शाहजीके भागनेमें बाधा डाली थी और उनको पकड़वा दिया था। इसी कारण शाहजीने शिवाजीको पत्र लिखा था—"अगर तुम हमारे लड़के हो, तो इस नीच कर्मके लिए घोरपड़ेसे बदला लेना।" परन्तु यह किंवदन्ती विश्वास करने योग्य नहीं है, क्योंकि मुधोल जीतनेसे दस महीने पहले ही शाहजीकी मृत्यु हो चुकी थी।

कुडालाके देसाई लखम सावन्तने पहले तो शिवाजीकी अधीनता स्वीकार कर कुडाला शिवाजीको दे दिया था, परन्तु बादमें उनका विरोध करनेके लिए वह बीजापुरियोंसे सहायता माँगने लगा। तब उसकी मददके लिए खवास खाँ वहाँ भेजा गया। अक्टूबर १६६४ ई० में शिवाजीके साथ उसका युद्ध हुआ, जिसमें बीजापुरियोंकी हार निश्चित-सी हो गई थी, परन्तु तभी खवास खाँके साहसपूर्ण हमलेके कारण बाजी पलट गई और शिवाजीको युद्ध-क्षेत्र छोड़कर निकल जाना पड़ा। अब लखम सावन्तने कुडालापर अधिकार कर लिया और खवास खाँको भी वहाँ बुला लिया।

परन्तु शिवाजी यों हार माननेवाले न थे। वे उपयुक्त अवसरकी ताकमें रहे। उधर उन्हें मुधोलके बाजी घोरपड़ेसे भी अपने पिताका पुराना वैर लेना था। अपने बीजापुरी सेनानायकके आज्ञानुसार बाजी घोरपड़ेने सन् १६४८ ई० में शाहजीको कैद किया था। इस समय बाजी घोरपड़े खवास खाँकी मददके लिए ड़ेढ़ हजार सवारोंके साथ कुडाला जा रहा था। एक बहुत बड़ी सेनाके साथ

शिवाजीने कोंकणके घाटोंके नीचे ही उसे जा घेरा। बूढ़ा बाजी घोरपड़े लड़ता हुआ काम आया।

अब शिवाजी पुनः कुडालकी ओर लौटे। शिवाजीकी उस बड़ी सेनाका सामना करना कठिन देख कर, लखम सावन्तकी सलाहके अनुसार खवास खाँ कुडाल छोड़कर बाँदाकी ओर लौट पड़ा। इसकी सूचना मिलते ही शिवाजीने अपने चुने हुए सवारोंको साथ लेकर नेताजीको खवास खाँका पीछा करनेके लिए २६ अक्टूबरको भेजा। अब तो खवास खाँ अपने सैनिकोंके साथ बालाघाटमें चन्द्रगढ़की ओर बड़ी तेजीसे भागा।

दिसम्बर, १६६४ ई० में शिवाजी रत्नागिरी और गोआके बीचमें स्थित सावन्तवाड़ी जमींदारीपर जा धमके। वहाँके सारे छोटे-मोटे देसाई (जमीदार) बीजापुर राज्यके अधीन थे और उनमें प्रमुख, कुडालके देसाई, लखम सावन्तने तो बीजापुरी सेनानायकोंका पूरा-पूरा साथ दिया था। कुछ समयतक शिवाजीका सामना करनेके बाद लखम सावन्त एवं उसके कई दूसरे साथी अपना सर्वस्व छोड़कर पहले जंगलोंमें भाग गए और फिर गोआमें बसे। गोआमें बैठकर उन्होंने अपने-अपने राज्य वापस जीत लेनेकी व्यर्थ चेष्टामें अनेकों बार फौजें इकट्ठा कीं। इसी कारण गुस्सेमें आकर शिवाजीने पुर्तगाली राजप्रतिनिधिको एक पत्र लिखा, जिसके फलस्वरूप राजप्रतिनिधिने इन देसाइयोंको जून, १६६८ ई० के प्रारम्भमें पुर्तगाली इलाकेसे निकाल बाहर किया। कुडालके देसाई लखम सावन्तके ही भाई-बन्द एवं वहाँके देसाई पदके लिए लखमके प्रतिद्वन्दी कृष्ण सावन्तने शिवाजीका साथ दिया था, एवं शिवाजीने अपनी ही अधीनतामें उसे जागीरदार बनाकर कुडालकी जमीदारी उसे दे दी, किन्तु वहाँ किला बनाने या अपनी निजी सेना रखनेकी उसे आज्ञा न दी।

रुस्तम-ए-जमान भीतर-ही-भीतर शिवाजीका सहायक हो गया था। यहाँतक कि वह मराठोंके साथ मिलकर अपने ही राजाकी प्रजाके लूटके मालमें साझा लगाता था, इसलिए अब इस प्रदेशमें शिवाजीके विरुद्ध खड़ा होने योग्य कोई भी न रहा। इस देशके धनी और बनियें मराठोंके डरसे त्राहि-त्राहि करते हुए घर-द्वार छोड़कर भागे। इस देशका इतना बड़ा और इतना प्रसिद्ध व्यापार प्रायः बन्द हो गया। कोई जगह भी उनसे न छूटी।

१४३
बसरूर और कारवारकी लूट

बिदनौरका प्रधान बन्दर बसरूर था (अंग्रेजी नक्शोंमें इसका नाम Barcelore लिखा है)। वह हिन्दू राज्यमें पड़ता था। वहाँके राजाने शिवाजीको कभी कोई नुकसान नहीं पहुँचाया था और न वह कभी महाराष्ट्रकी सीमाके पास जाता था, परन्तु व्यापार और शिल्पकी वस्तुओंको बेचनेसे ऐश्वर्यमें बसरूर इस प्रदेशका एक बेजोड़ स्थान हो गया था। अतएव सन् १६६५ ई० की ८वीं फरवरीको ८८ जहाजोंमें फौज भरकर रत्नागिरी जिलेके किनारेसे होते हुए शिवाजी एकाएक बसरूरमें आ धमके। शिवाजी यहाँ आयेंगे, यह किसीने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था, इसलिए कोई अपने बचावके लिए तैयार न था। एक ही दिनकी बेरोक-टोक लूटसे मराठोंने असंख्य धन-रत्न पाया। दूसरे दिन इस शहरको छोड़कर शिवाजी समुद्र-तटके भारत-प्रसिद्ध गोकर्ण नामक तीर्थमें पहुँचे और वहाँके शिवमन्दिरके सामने उन्होंने स्नान, पूजा आदि धर्मकार्य समाप्त किया। उसके बाद सब जहाजोंको देश लौटाकर वे स्वयं चार हजार सिपाहियोंके साथ उत्तरकी ओर कूच करके अंकोला होते हुए कारवार नगरमें[1] जा पहुँचे।

इस बन्दरमें अँग्रेजोंकी एक बड़ी कोठी थी। वे डरके मारे शिवाजीके राज्यमें अनेक स्थानोंमें वेतन देकर जासूस रखते थे और उनके द्वारा शिवाजीकी चाल-ढाल और उद्देश्योंकी पक्की खबर पहलेसे ही जान लेते थे। इस बार भी शिवाजीके इस तरफ आनेकी खबर पाते ही उन लोगोंने कम्पनीका रुपया-पैसा और माल किरायेके एक छोटे जहाजमें लाद दिया और कोठी छोड़कर उसी जहाजपर आश्रय लिया। इसी दिन रातको बहलोल-खाँका नौकर शेर खाँ (हबशी) अपने मालिककी माताकी मक्का-यात्राके लिए जहाज ठीक करनेको इस बन्दरमें आया। पहुँचनेके बाद उसने पहली बात यह सुनी कि शिवाजी भी वहाँ आये हैं। उसने फौरन अपने डेरेको चारों ओरसे किलेकी तरह घेरकर अपने साथके पांच सौ रक्षक सैनिकोंको

---

१. यह शहर अब बम्बई प्रदेशके एक तालुकेका सदर मुकाम है। स्व० सत्येन्द्रनाथ ठाकुर आई० सी० एस० यहाँ काम करते थे और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी अपने शुरू जीवनमें कुछ दिन यहाँ रहे थे। उन्होंने इस स्थानके निवासके संस्मरण भी लिखे हैं।

चारों ओरसे पहरेपर खड़ा कर दिया और धन तथा मालको सुरक्षित करके उसी रातको शिवाजीसे कहला भेजा कि वे उस शहरमें न घुसें, क्योंकि यदि वे घुसनेकी चेष्टा करेंगे, तो शेर खाँ आखिरी दमतक उनसे लड़ेगा। शेर खाँकी दिलेरी और वीरता किसीसे छिपी न थी, और बहलोल भी बीजापुरका सबसे बड़ा उमराव था। इन्हीं सब कारणोंसे शिवाजीने शेर खाँके ऊपर चढ़ाई करनेकी हिम्मत न की और कारवार शहरको बिना कोई हानि पहुँचाए ही नदीके किनारे कुछ दूर अपना खेमा गाड़ा।

दूसरे दिन (२३ फरवरीको) दूत भेजकर उन्होंने शेर खाँसे कहलाया—"या तो अँग्रेजोको पकड़कर हमारे हाथमें सौंप दो, नहीं तो शहर छोड़कर चले जाओ। हम वहाँ आकर अँग्रेजोंसे बदला लेंगे, क्योंकि वे हमारे चिरशत्रु हैं।" शेर खाँने अँग्रेजोंसे इसका जवाब पुछवाया। उन लोगोंने कहला भेजा—"हम लोगोंके पास इस जहाजके गोला-बारूदके सिवा और कुछ धन-दौलत नहीं है। अगर उनकी समझमें यह गोला-बारूद रुपयेका काम दे सकता हो, तो वे आकर इसे ले सकते हैं।" इस जवाबसे शिवाजी बहुत क्रुद्ध होकर बोले—"अच्छा, जानेके पहले हम अँग्रेजोंको देख लेंगे।" कारवारके बनियोंने डरके मारे चन्दा[1] वसूल कर उनको कुछ नजराना दिया। उसे लेकर शिवाजी उसी दिन चले गये। जाते समय उन्होंने कहा—"शेर खाँने इस बार हमारी होलीके समयका शिकार खराब कर दिया।" उसके बाद (१४ मार्चको) भीमगढ़ होते हुए शिवाजी देश लौट गये, क्योंकि इसी महीनेमें जयसिंहने उनके आश्रय पुरन्दर-दुर्गपर आक्रमण किया था।

इसी आक्रमणके समय बीजापुरियोंने दक्षिण-कोंकणके बहुत-से हिस्सों (वेंगुरला और कुडाला) का शिवाजीके हाथसे उद्धार किया था। कनाड़ाके किनारेके कारवार इत्यादि स्थान दोनों पक्षों द्वारा लूटे जाने लगे।

फोंडा-दुर्गपर अधिकार

गोआकी पूर्वी सीमाके पास बीजापुर राज्यका सबसे बड़ा किला फोंडा था। सन् १६६६ ई० के शुरूमें शिवाजीने सेनाका एक दल भेजकर फोंडा घेरा,

१. इस चन्देमें अँग्रेजोंने भी नौ सौ रुपये दिये थे, क्योंकि कारवार शहरमें उनकी जो सम्पत्ति थी उसका मूल्य चालीस हजार रुपयेके लगभग था।

परन्तु बीजापुरियोंकी एक बड़ी फौजने आकर शिवाजीके आदमियोंको भगा दिया और इस किलेको बचाया। उन लोगोंने इस प्रदेशके और दूसरे चार किलोंको (मार्च १६६६ में) शिवाजीसे छीन लिया।

उसके बाद सात वर्षतक शिवाजीकी दृष्टि इस ओर नहीं पड़ी। सन् १६७३ ई० के अप्रैल महीनेमें उनकी सेनाने कनाड़ाकी अधित्यकामें प्रवेश कर अनेक नगर और दुर्ग लूटे। उनका सेनापति प्रतापराव हुबलीकी अंग्रेजी कोठीसे कंपनीके चालीस हजार रुपयेके मालके सिवा वहाँके कर्मचारियोंकी निजी सम्पत्ति भी ले गया, परन्तु बीजापुरसे मुजफ्फर खाँके चार हजार घुड़सवारोंके आ जानेपर मराठे लोग हुबली छोड़कर भाग गये। जल्दीमें वे लूटके मालकी गाँठकी गाँठ रास्तेमें ही फेंकते गए।

इसी साल विजयादशमीके दिन (१० अक्टूबर १६७३ को शिवाजी पचीस हजार सैनिकोंकी फौज ले देश जीतने चले। साथमें बीस हजार बड़ी-बड़ी थालियाँ थीं जिनमें लूटका माल रखकर लाया जाता था। इस दौरेमें वे कनाड़ातक गये, परन्तु आधे दिसम्बरके लगभग बहलोल और शर्जा खाँके हाथों दो बार हारकर देशको लौट आये।

बीजापुरके दरबारमें धीरे-धीरे गोलमाल मचने लगा और वहाँवालोंका नैतिक पतन भी होने लगा। फलतः बीजापुर राज्यके दूर-दूरके प्रदेशोंकी अत्यन्त दुर्दशा हुई, क्योंकि उन सबकी रक्षा करनेकी शक्ति बीजापुरकी सलतनतमें न रही। इस सुयोगसे लाभ उठाकर शिवाजीने सन् १६७५ ई० में कनाड़ाके किनारेपर स्थायी रूपसे कब्जा कर लिया।

नौ हजार सैन्य लेकर ८ अप्रैलको शिवाजीने फोंडा-दुर्गका घेरा आरम्भ कर दिया। दुर्गका मालिक मुहम्मद खाँ एक महीनेतक बड़ी बहादुरी और सहिष्णुता के साथ लड़ता रहा। शिवाजीने किलेकी दीवारोंके नीचे चार सुरंगें खुदवाईं, परन्तु मुहम्मद खाँने उन सबको नष्ट कर दिया। शिवाजीने एक मिट्टीकी दीवार खड़ी कर किलेको चारों ओरसे घेर लिया। मराठा सेना उसकी आड़में बैठी मजेसे गोलियाँ छोड़ने लगी। उन्होंने दीवारकी खाईको एक जगहपर मिट्टीसे भर-कर किलेकी दीवारतक रास्ता बनाया। आध-आध सेर भारी पाँच सौ सोनेके कड़े बनवाकर शिवाजीने घोषित किया कि जो सिपाही किलेकी दीवारके ऊपर

चढ़ सकेगा, उसे वे दिये जायँगे। अन्तमें कोई सहायता न मिलनेके कारण एक महीने बाद (६ मईको) फोंडाका पतन हुआ। आस-पासके महालोंपर कब्जा करनेमें सहायता देनेकी शर्तपर मुहम्मद खाँ और चार-पाँच प्रधान लोगोंको प्राण-दान मिला। किलेके और सब लोग मारे गये। थोड़े ही दिनोंके भीतर दक्षिणमें गंगावती नदीतकका इस जिलेका सब हिस्सा शिवाजीके अधिकारमें आ गया।

परन्तु कनाड़ा अधित्यकामें बड़ी लड़ाईके बाद भी शिवाजीका अधिकार चिरस्थायी न हुआ! बिदनौरकी रानीने मराठा राजाको कर देना स्वीकार किया। उसके बाद बिदनौर और सोन्दामें लड़ाई, बीजापुरी उमराओंका हस्तक्षेप, मराठी फौजकी लूट, इत्यादिसे देशमें बराबर अशान्ति बनी रही और हानि होती गई।

पुर्तगालियोंके साथ शिवाजीका सम्बन्ध

शिवाजीके राज्यकी पश्चिमी सीमाके पास ही पुर्तगालियोंका भारतीय प्रदेश था। उत्तरमें दामन जिला; बीचमें बम्बई, थाना, बसई (Bassein), चौल; दक्षिणमें गोआ बार्देश, शष्ठि (Salsette) थे।[१]

बहुत-सी छोटी-छोटी बातोंपर, खासकर भारत-सागरमें पुर्तगालियोंका एकाधिपत्य और अधिक प्रभुताके दावेको लेकर, शिवाजीके साथ गोवा-सरकारका झगड़ा हुआ, परन्तु वह कभी युद्धकी अवस्थातक न पहुँचा, क्योंकि पुर्तगालियोंका धन-बल बहुत कम था, उनके स्थानीय देशी सैनिक (कनाड़ी) बड़े डरपोक थे, और गोरे सिपाही (जो असलमें सम्मिश्रित जातिके फिरंगी थे) शुद्ध यूरोपियोंकी अपेक्षा बहुत निकम्मे। इसलिए पुर्तगाली गवर्नरने अनेक उपाय करके और बातोंका भुलावा दे-देकर शिवाजीको शान्त रखा। दो बार (सन् १६६७ और १६७० में) उन लोगोंके बीच लिखित सन्धि होकर सब झगड़ोंका निपटारा भी हुआ।

---

१. इनमेंसे बम्बई-द्वीप सन् १६६१ सालमें इंग्लैण्डको दे दिया गया। वर्तमान पुर्तगाली भारतके अनेक स्थान—जैसे, फोंडा, बिचोली, पेड्ने, सांकली आदि शिवाजीकी मृत्युके पचास वर्ष बाद ही पुर्तगालियोंके अधिकारमें आये।

चौथकी उत्पत्ति

रामनगरके कोली-जातिके राजा इस देशके पश्चिमी समुद्र-तटके अनेकों गाँवोंके लूट-मार न करनेके बदलेमें प्रतिवर्ष कुछ रुपये पाते थे। उन्हीं रुपयोंको साधारणतया 'चौथ' कहते थे, परन्तु वह सब जगह राज्य-करका ठीक चौथाई हिस्सा नहीं होता था। किसी गाँवमें मालगुजारीका दसवाँ हिस्सा, किसीमें आठवाँ हिस्सा और किसीमें छठा हिस्सा था; दो-एक जगहोंमें चौथाई भी था। इन राजाओंको लोग 'चौथिया राजा' कहकर पुकारते थे। बम्बईके उत्तरमें पुर्तगालियोंके दामन जिलेके कई गाँव उनको चौथ देते थे। सन् १६७६ ई० में शिवाजीने जब कोली देशपर स्थायी रूपसे अधिकार किया, तब कोली राजाओंके स्वत्वके अनुसार इन सब गाँवोंसे उन्होंने भी चौथका दावा किया। गोआके गवर्नरने अनेकों आपत्तियाँ पेश करके समय बिताकर खुलासा जवाब देनेमें जितनी हो सकी, देरी की। अन्तमें शिवाजीने लड़ाईकी धमकी दी, परन्तु शिवाजीकी अकाल-मृत्यु हो जानेसे बादमें उनके पुत्रके समय यह लड़ाई हुई।

सावन्तवाड़ीका लखम सावन्त और दूसरे देसाई लोग शिवाजीके आक्रमणसे अपना राज छोड़कर गोआ भाग गये, और वहाँ जाकर शिवाजीके कर्मचारियोंके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे। इस बातके लिए सजा देनेके अभिप्रायसे १७ नवम्बर सन् १६६७ ई० में मराठा सैनिकोंके एक दलने गोआके अधीन बार्देश जिलेमें घुसकर कई आदमियों और मवेशियोंको पकड़कर उनका चालान किया। परन्तु यह झगड़ा दूत भेजकर मित्रतापूर्वक निपटाया गया। कैदी छोड़ दिये गये और गवर्नरने (१६६८ में) देसाइयोंको पुर्तगाली सीमाके बाहर निकाल दिया।

गोआपर अधिकार करनेकी विफल चेष्टा

गोआके पूरबकी ओर पहाड़ हैं। उनपर जानेके लिए दो-एक छोटे ऊँचे दर्रोंको छोड़कर और कोई पथ नहीं है। पश्चिम और दक्षिणकी ओर समुद्र और खाड़ी है। मजबूत जहाजों और तोपोंके बिना उस तरफसे गोआपर आक्रमण करना असम्भव है। सन् १६६८ ई० के अक्टूबर महीनेमें शिवाजीने गोआ-प्रदेशमें घुसनेकी एक चाल सोची। उन्होंने चार-पाँच सौ मराठा सैनिकोंको

छोटी-छोटी टोलियोंमें बाँटकर नाना प्रकारके गुप्त भेषोंमें धीरे-धीरे इस घाटीसे गोआ राज्यमें भेज दिया, और उन्हें सिखला दिया कि जब इस प्रकार एक हजार आदमी इकट्ठे हो जायँ, तब वे एक रातको एकाएक पुर्तगाली पहरेदारोंको मारकर पहाड़की एक घाटीपर दखल जमा लें; फिर उसी रास्ते शिवाजी दल-बलके साथ इस राज्यमें घुसकर देश जीतेंगे। परन्तु, या तो किसीने षड्यन्त्रका भेद खोल दिया अथवा पुर्तगाली गवर्नरको स्वयं ही सन्देह हो गया, जिससे उसने अपने इलाकेके सब शहरोंमें कड़ी खानातलाशी लेकर इन छिपे हुए मराठे सिपाहियोंको गिरफ्तार कर लिया, और पीट-पीटकर उन लोगोंसे सच्ची बातका पता लगा लिया। इसके बाद उसने शिवाजीके दूतको बुलाया और अपने हाथसे उसकी कनपटीपर दो-तीन घूँसे जमाकर उसे तथा अन्य कैदी मराठे सिपाहियोंको गोआ राज्यके बाहर निकाल दिया !

बारहवाँ अध्याय

शिवाजीकी जीवन-सन्ध्या

स्त्रियोंकी वीरता

पूर्वीय कर्णाटक-विजयके बाद शिवाजी मैसूर होते हुए सन् १६७८ ई० के शुरूमें ही पश्चिम कनाड़ा बालाघाट, अर्थात् महाराष्ट्रके दक्षिणमें वर्तमान धारवाड़ जिलेमें जा पहुँचे। इस प्रदेशके लक्ष्मीश्वर इत्यादि नगर लूटकर और वहाँसे चौथ वसूलकर जब वे उसके उत्तरमें बेलगाँव किलेके तीस मील दक्षिण-पूर्वमें बेलवाड़ी नामक गाँवपर होकर जा रहे थे तब उस गाँवकी पटेलिन (जमींदारिन) सावित्रीबाई नामकी कायस्थ विधवाके नौकरोंने मराठी फौजके माल लादनेके कितने ही बैल छीन लिये। इस कारण गुस्सा होकर शिवाजीने बेलवाड़ीका किला जा घेरा। सावित्रीबाईने इतने बड़े विजयी वीर और उनकी अगणित सेनाके विरुद्ध अदम्य साहससे भिड़कर सत्ताईस दिनतक अपने छोटे किलेकी रक्षा की। अन्तमें उसकी रसद और बारूद खतम हो गई। मराठोंने बेलवाड़ीपर कब्जा कर लिया। वीर नारी पकड़ी गई। एक ऐसे छोटे स्थानमें इतने दिनतक कुछ कर-धर न सकनेके कारण शिवाजीकी बड़ी भद्द उड़ी। अँग्रेजी कोठीके साहब (२८ फरवरी, १६८७ ई० को) लिखते हैं—"शिवाजीके ही आदमी वहाँसे आकर कहते हैं कि बेलवाड़ीमें उन्हें जितनी हैरानी उठानी पड़ी उतनी मुगलों या बीजापुरके साथ लड़नेमें भी नहीं उठानी पड़ी थी। जिन्होंने इतने राज्य जीते हैं, वे क्या अन्तमें एक जमींदार औरतको भी नहीं हरा सकते!"

बीजापुर दुर्ग पानेकी कोशिश बेकार

इसी बीचमें शिवाजीने घूँस देकर बीजापुरका किला लेनेकी चाल चली। बात यह थी कि वजीर बहलोल खाँकी मृत्यु (२३ दिसम्बर, १६७७ ई०) के बाद उसके गुलाम जमशेद खाँको इस किले और बालक राजा सिकन्दर आदिलशाहकी देख-रेखका भार सौंपा गया था; किन्तु जब उसने देखा कि उनकी

रक्षा कर सकनेकी उसमें शक्ति नहीं है, तब वह तीस लाख रुपयोंके बदलेमें नाबालिग सुलतान और राजधानीको शिवाजीके हाथ सौंपनेके लिए राजी हो गया। यह खबर सुन अडोनीके नवाब सिद्दी मसऊदने (मृत सिद्दी जौहरका दामाद) चुपकेसे यह प्रचार कर दिया कि वह सख्त बीमार है। अन्तमें उसने अपने मरनेका हल्ला भी मचवा दिया, यहाँतक कि एक पालकीमें उसका नकली ताबूत (लाश रखनेका बक्स) रखाकर कई हजारकी गारदके साथ कब्रमें दफनानेके लिए अडोनी भेज दिया गया! उसकी बाकी फौज,—चार हजार सवारोंने बीजापुर जाकर जमशेदसे कहा—"हमारे मालिकके मर जानेसे हमें रोटी नहीं मिलती, आप हमें अपनी खिदमतमें रख लें।" उसने भी उन लोगोंको भर्ती कर किलेके भीतर स्थान दे दिया। उन लोगोंने दो-दिन बाद जमशेदको कैदकर बीजापुरका फाटक खोल सिद्दी मसऊदको भीतर बुलाया। मसऊद (२१वीं फरवरीको) वजीर बना। शिवाजी इस अन्तिम लाभकी आशामें विफल हो पश्चिमकी ओर मुड़े और फिर उन्होंने (अन्दाजन १६७८ ई० की ४ अप्रैलको) अपने पनहालेके किलेमें प्रवेश किया।

मराठोंकी अन्य लड़ाइयाँ और देश जीतना

कर्णाटककी चढ़ाईमें जिस समय शिवाजी पन्द्रह महीनेतक अपने देशसे गैरहाजिर थे, उस समय उनकी फौजने गोआ और दामनके अधीन पुर्तगालियों-के प्रदेशपर आक्रमण किये, पर इनका कोई फल न हुआ। सूरत और नासिक जिलोंको पेशवाने तथा पश्चिम-कनाड़ाको दत्ताजीने कुछ दिनतक लूटा, किन्तु इसपर भी वे देश नहीं जीते जा सके।

सन् १६७८ ई० के अप्रैलके आरम्भमें शिवाजीने देश लौटकर कोपल प्रदेश,—अर्थात् विजयनगर शहरके उत्तरमें तुंगभद्रा नदीके उस पार और उसके पश्चिममे गदग महाल जीतनेके लिए सेना भेजी। हुसेन खाँ और कासिम खाँ मियाना, दोनों भाई बहलोल खाँकी ही जातिके थे। कोपल प्रदेश इन दोनों अफगान उमराओंके अधीन था। शिवाजीने सन् १६७८ ई० में गदग और दूसरे साल मार्चके महीनेमें कोपलपर अधिकार कर लिया। कोपल दक्षिण देशका 'प्रवेशद्वार' है। यहाँसे तुंगभद्रा नदी पारकर उत्तर-पश्चिमके कोनेसे सहज ही मैसूर जाया जा सकता है। इस रास्तेसे घुसकर मराठोंने इस नदीके दक्षिणमें

बेलारी और चितलदुर्ग जिलोंके अनेक स्थानोंपर अपना अधिकार जमाया और पालेगारोंको वशमें कर लिया। इस प्रान्तके जीते हुए देशोंको मिलाकर शिवाजीने उसे अपने राज्यका एक नया प्रदेश बनाया और उसके हाकिम हुए जनार्दन नारायण हनुमन्ते।

शिवाजीके देश लौटनेके एक महीने बाद ही उनकी सेनाने फिर रातको शिवनेर दुर्गपर आक्रमण किया, किन्तु बादशाही किलेदार अब्दुल अजीज खाँ जागता था। उसने आक्रमणकारियोंको मारकर भगा दिया, कैदी शत्रुओंको भी छोड़ दिया और उसके द्वारा शिवाजीको कहला भेजा कि जितने दिन मैं किलेदार हूँ, उतने दिनोंतक इस किलेपर अधिकार करना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं।

इधर बीजापुरकी हालत बड़ी ही खराब हो चली थी। वजीर सिद्दी मसऊद ही सर्वेसर्वा था, बालक सुलतान उसके हाथकी कठपुतली था। चारों ओर शत्रुओंके उत्पातसे वजीर घबरा उठा। मृत बहलोल खाँका अफगान-दल रोज उसका अपमान करता और उसे डराता था। राज्यके चारों ओर शिवाजी बिना रोक-टोक लूट-मार करते और प्रदेशोंपर दखल जमाते जाते थे। राज-कोषमें रुपया नहीं था। दलबन्दीके कारण राज-शक्तिमें कुछ दम रहा न था। कुछ दिन पहले जिन शर्तोंपर मुगल सेनापतिके साथ गुलबर्गेमें सन्धि हुई थी, उन्हें बीजापुर-राजवंशके हकमें बहुत अपमानजनक और हानिकारक बताकर सब लोग मसऊदको धिक्कारने लगे। चारों ओर अँधेरा देख किंकर्तव्यविमूढ़ मसऊदने शिवाजीसे मदद माँगते हुए कहा, "आपने (शिवाजीने) भी आदिलशाही वंशका नमक खाया है, और हम दोनों एक ही देशके रहनेवाले हैं। मुगल दोनोंके शत्रु हैं। दोनोंको मिलकर मुगलोंको दबाना उचित है।" इस सन्धिकी बातचीत सुनकर दिलेर खाँने गुस्सेमें भरकर (सन् १६७८ के अन्तमें) बीजापुर-पर आक्रमण कर दिया।

शम्भूजीका भागकर दिलेर खाँसे जा मिलना

शिवाजीके बड़े लड़के मानो पिताके पापके फलस्वरूप जन्मे थे। इक्कीस वर्षकी ही उम्रमें वे उद्धत, मनमौजी, नशेबाज और लम्पट हो गये थे। एक सधवा ब्राह्मणीका धर्म नष्ट करनेके कारण न्यायपरायण पिताके आदेशसे वे पनहाला-किलेमें बन्द कर दिये गये थे। वहाँसे शम्भूजी अपनी स्त्री

येसूबाईको साथ ले चुपचाप भागकर दिलेर खाँसे (१३ दिसम्बर १६७८ को) जा मिले। शम्भूजीको पाकर तो दिलेर मारे खुशीके फूल गया। "इसी बीचमें मानों उसने सारा दाक्षिणात्य जीता हो ऐसी उछल-कूद करने लगा। उसने यह खुशखबरी बादशाहके पास भी भेजी।" औरंगजेबकी ओरसे शम्भूजीको सात हजारकी मनसबदारी, राजाकी उपाधि और एक हाथी दिया गया। उसके बाद दोनों बीजापुरका कब्जा करने चले।

इसी आफतके समय सिद्दी मसऊदने शिवाजीकी शरण ली थी। शिवाजीने चटपट छ-सात हजार अच्छे-अच्छे सवार बीजापुरकी रक्षाके लिए भेजे। उन लोगोंने जाकर राजधानीके बाहर खालापुरा और खसरूपुरा गाँवोंमें अड्डा जमाया, और कहला भेजा कि बीजापुर किलेका एक दरवाजा और बुर्ज उनके अधिकारमें कर दिया जाय। मसऊदने उनके ऊपर विश्वास न किया। तब मराठोंने बीजापुरपर दखल करनेकी एक और चाल सोची। उन्होंने कुछ हथियार चावलके बोरोंमें छिपाकर उन्हें बैलोंकी पीठपर लाद दिये और अपने कुछ सिपाहियोंको बैल हाँकनेवालोंकी पोशाकमें बाजार भेजनेके बहाने किलेके भीतर घुसानेकी चेष्टा की; लेकिन वे पकड़े गये और खदेड़ दिये गये। उसके बाद मराठोंने मित्रके इन गाँवों को लूटना आरम्भ किया। मसऊदने आजिज आकर दिलेर खाँके साथ निपटारा कर लिया। उसने बीजापुरमें मुगल फौजको बुलाकर मराठोंको भगा दिया।

दिलेरका भूपालगढ़ जीतना

उसके बाद शम्भूजीको साथ ले दिलेर खाँने शिवाजीका भूपालगढ़ नामक किला तोपके जोरसे छीन लिया। वहाँ उसने प्रचुर अन्न, धन, जायदाद आदि लूटे और बहुत-से लोगोंको कैद किया। इन कैदियोंमेंसे कुछको उनका एक-एक हाथ कटवाकर छोड़ दिया, बाकी सब गुलाम बनाकर बेच दिये गये (२ अप्रैल, १६७६ ई०)। किलेकी दीवारें और बुर्ज तोड़ डाले गये। उसके बाद छोटी-मोटी लड़ाइयाँ और बीजापुर-दरबारकी अनन्त दलबन्दी और षड्यन्त्र कई महीनोंतक चलते रहे; किसीकी कुछ व्यवस्था न हो सकी।

जजियाके विरुद्ध शिवाजीका पत्र

सन् १६७९ ई० की २ अप्रैलको औरंगजेबने हुक्म जारी किया कि मुगल-

राज्यमें सर्वत्र हिन्दुओंकी गिनती की जाय और हर एकके लिए हर साल आमदनीके हिसाबसे तीन श्रेणीका १३।-), ६॥-) और ३।-) 'जजिया कर' लिया जाय। बादशाहके इस नये और अन्यायपूर्ण प्रजापीड़नका समाचार पाकर शिवाजीने उनको नीचे लिखा हुआ एक पत्र लिखा। नीलोजी प्रभु मुंशीने सुललित फारसीमें इस पत्रकी रचना की थी।

"बादशाह आलमगीर ! सलाम ! मैं शिवाजी आपका पक्का शुभचिंतक और चिरहितैषी हूँ। ईश्वरकी दया और सूर्य-किरणसे भी उज्ज्वलतर बादशाहके अनुग्रहके लिए धन्यवाद प्रदान कर निवेदन करता हूँ कि—

"यद्यपि यह शुभाकांक्षी दुर्भाग्यवश आपकी महिमामंडित सन्निधिसे बिना अनुमति लिए ही आनेको बाध्य हुआ था, तथापि मैं जितना सम्भव और उचित हो सकता है, सेवकके कर्त्तव्य और कृतज्ञताका दावा सम्पूर्ण रूपसे पूरा करनेमें हमेशा तत्पर रहता हूँ।

"सुनता हूँ, मेरे साथ लड़ाई लड़नेके कारण आपका धन और राज्य-कोष खाली हो गया है, और इसी कारण आप हुक्म दे बैठे हैं कि जजिया नामक कर हिन्दुओंसे वसूल किया जाय कि वह आपके अभावको पूर्ण करनेमें काम आवे।

"बादशाह सलामत ! इस साम्राज्य-रूपी भवनके निर्माता बादशाह अकबरने पूर्ण गौरवसे ५२ (चान्द्र) वर्ष राज्य किया। उन्होंने क्रिश्चियन, यहूदी, मुसलमान, दादूपन्थी, नक्षत्रवादी (फलकिया = गगनपूजक ?), परीपूजक (मालाकिया), विषयवादी (आनसरिया), नास्तिक, ब्राह्मण, श्वेताम्बर-दिगम्बर, आदि सब धर्म-सम्प्रदायोंके प्रति सार्वजनीन मैत्री (सुलह-इ-कुल = सबके साथ शान्ति) की सुनीतिको ग्रहण किया था। सबकी रक्षा और पोषण करना ही उनके उदार हृदयका उद्देश्य था। इसीलिए वे 'जगद्गुरु' कहलाये।

"उसके बाद बादशाह जहाँगीरने २२ वर्षतक अपनी दयाकी छाया जगत् और जगतवासियोंके सिरके ऊपर फैलाई। उन्होंने बन्धुओंके तथा प्रत्यक्ष कार्य करनेमें अपना हृदय लगा दिया, और इस प्रकार मनकी इच्छाओंको पूर्ण किया। बादशाह शाहजहाँने भी ३२ वर्ष राज्य कर सुखी पार्थिव जीवनके फल-स्वरूप अमरता अर्थात् सौजन्य और सुनाम कमाया। फारसीका पद्य है—

'जो आदमी जीवनमें सुनाम अर्जन करता है वह अक्षय धन पाता है, क्योंकि मृत्युके उपरान्त उसके पुण्य-चरित्रकी कथा ही उसके नामको बनाये रखती है।'

"अकबरकी उदारताका ऐसा पुण्य-प्रभाव था कि वह जिस ओर जाते, विजय और सफलता आगे बढ़कर उनका स्वागत करती थी। उनके शासन-कालमें बहुत-से देश और किले जीते गये। इसीसे शुरूके सम्राटोंकी शक्ति और उनका ऐश्वर्य सहज ही समझमें आता है। जिनकी राजनीतिका अनुसरणमात्र करनेमें ही आलमगीर बादशाह विफल और व्यग्र हो गये हैं, उन बादशाहोंमें भी जजिया-कर लगानेकी शक्ति थी; परन्तु उन लोगोंने अन्ध-विश्वासको हृदयमें स्थान नहीं दिया, क्योंकि वे जानते थे कि ईश्वरने ऊँच-नीच, सब आदमियोंका भिन्न-भिन्न धर्मोंमें विश्वास और उनकी विभिन्न प्रवृत्तियोंके दृष्टान्त दिखानेके लिए ऐसी सृष्टि की है। उनके दया-दाक्षिण्यकी ख्याति उनकी स्मृतिके रूपमें चिर कालतक इतिहासमें लिखी रहेगी, और छोटे-बड़े सभी आदमियोंके कंठों और हृदयमें इन तीन पवित्र आत्माओं (सम्राटों) के लिए प्रशंसा और मंगल-कामना बहुत दिनतक वास करेगी। लोगोंकी हृद्‌गत आकांक्षाके कारण ही सौभाग्य और दुर्भाग्य आते हैं, अतएव उनकी धन-सम्पत्ति दिनपर दिन बढ़ती ही गई। ईश्वरके प्राणी उनके सुशासनके कारण शान्ति और निर्भयतासे शय्यापर आराम करने लगे, और उनके सब काम सफल हुए।

"और आपके शासन-कालमें? बहुत-से किले और प्रदेश आपके हाथसे निकल गये और बाकी भी शीघ्र ही चले जायँगे, क्योंकि उनके नाश और छिन्न-भिन्न करनेमें मेरी ओरसे कोशिशमें कमी न होगी। आपके राज्यमें रिआया कुचली जा रही है। हर एक गाँवकी आमदनी कम हो गई है। एक लाखकी जगह एक हजार और एक हजारके स्थानमें दस ही रुपये वसूल होते हैं और वे भी बड़े कष्टसे। बादशाह और राजपूतोंके दरबारमें आज दरिद्रता और भिक्षा-वृत्तिने अड्डा जमा लिया है। उमरावों और अमलोंकी हालत तो सहजमें ही सोची जा सकती है। आपकी अमलदारीमें सेना अस्थिर है, और बनिये अत्याचारसे पिसे हुए हैं। मुसलमान रोते हैं। हिन्दू जलते हैं। प्रायः सारी प्रजाको

ही रातको रोटी नसीब नहीं होती है, और दिनमें मनके सन्तापके कारण हाथ मारनेसे उनके गाल लाल हो जाते हैं।

"ऐसी दुर्दशामें प्रजाके ऊपर जजियाका बोझ लाद देनेके लिए आपके राज-शाही दिलने आपको कैसे प्रेरित किया? बहुत जल्दी ही पश्चिममें पूर्व-तक यह अपयश फैल जायगा कि हिन्दुस्तानके बादशाह भिक्षुकोंकी थालियोंपर लुब्ध दृष्टि डालकर ब्राह्मण पुरोहित, जैन यति, योगी, संन्यासी, वैरागी, दिवालिया, निर्धन और अकालके मारे हुए लोगोंसे जजिया ले रहे हैं और भिक्षाकी झोलीकी छीना-झपटीमें आपका विक्रम प्रदर्शित हो रहा है! आपने तैमूरवंशके नाम और मानको डुबा दिया है!

"बादशाह सलामत! यदि आप खुदाकी किताब (=कुरानशरीफ) में विश्वास करते हों, तो उसे देखें; आपको मालूम होगा कि वहाँ लिखा है कि ईश्वर सबका मालिक है (रब्-उल्-आलमीन्) केवल मुसलमानोंका ही मालिक (रब्-उल्-मुसलीन्) नहीं है। यथार्थमें इसलाम और हिन्दू-धर्म दो भिन्नता-वाचक शब्दमात्र हैं, मानों ये दो भिन्न रंग हैं जिनसे स्वर्गस्थ चित्रकारने रंग देकर मानव-जातिके (नाना वर्णपूर्ण) चित्रपटको पूरा किया है।

"मसजिदमें उसके स्मरणके लिए अजान दी जाती है। मन्दिरमें उसकी खोजमें हृदयकी व्याकुलता प्रकाशित करनेके लिए घंटा बजाया जाता है। अतएव अपने धर्म और कर्मकाण्डके लिए कट्टरपन दिखाना ईश्वरके ग्रन्थकी बातोंको बदल देनेके सिवा और कुछ नहीं है। चित्रके ऊपर नई रेखा खींचकर हम लोग दिखाते हैं कि चित्रकारने भूल की है!

"यथार्थमें धर्मके अनुसार जजिया किसी प्रकार भी न्यायसंगत नहीं है। राजनीतिके पहलूसे देखनेसे भी जजिया केवल उसी युगमें न्याय हो सकता है जिस युगमें सुन्दरी स्त्रियाँ सोनेके गहने पहनकर बेखटके एक जगहसे दूसरी जगह सहीसलामत जा सकती हैं; परन्तु आजकल जब आपके बड़े-बड़े शहर लूटे जा रहे हैं, तब गाँवोंकी तो बात ही क्या? ऐसी हालतमें तो जजिया न्याय-विरुद्ध है ही। उसके सिवा इस भारतमें यह एक नया अत्याचार है, और पूरी तरह हानिकारक भी है।

"अगर आप खयाल करें कि रिआयाके ऊपर जुल्म करनेसे और

हिंदुओंको डर दिखाकर दबा रखनेसे ही आपका धर्म प्रमाणित होगा, तो पहले हिन्दुओंके सिरमौर महाराणा राजसिंहसे जजिया वसूल कीजिए। उसके बाद मुझसे वसूल करना कठिन न होगा, क्योंकि मैं तो आपकी सेवाके लिए हर दम हाजिर हूँ। परन्तु इन मक्खियों और चींटियोंको तकलीफ देनेमें कोई पुरुषार्थ नहीं है।

"मेरी समझमें नहीं आता कि आपके कर्मचारी क्यों ऐसे अद्भुत प्रभुभक्त बने हैं कि वे आपको देशकी असली अवस्था नहीं बताते, बल्कि उलटे जलती हुई आगको तिनकोंसे दबाकर छिपाना चाहते हैं।

"आपका राजसूर्य गौरवके गगनमें क्रान्ति विकीर्ण करता रहे।"

दिलेरका बीजापुरपर आक्रमण करना
और
शिवाजीका आदिलशाहके पक्षमें जा मिलना

सन् १६७९ के १८ अगस्तको दिलेर खाँने भीमा नदी पारकर बीजापुर राज्यके ऊपर चढ़ाई की। मसऊदने निरुपाय हो शिवाजीके पास हिन्दूराव नामक दूत द्वारा यह करुण निवेदन भेजा कि, "इस राज्यकी हालत आपसे छिपी नहीं है, रुपये नहीं हैं, रसद नहीं है—किलेके बचावके लिए कुछ भी सामान नहीं है। मुगल शत्रु प्रबल और हमेशा लड़नेके लिए तैयार हैं। आप इस वंशके दो पुश्तके नौकर हैं। इन सुलतानोंके हाथसे आपने मान-मर्यादा पाई है, अतएव इस राजवंशके लिए दूसरोंकी अपेक्षा आपको ज्यादा दुःख-दर्द होना चाहिए। आपकी सहायता बिना हम लोग इस देश और इस किलेकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। नमकहलाली कीजिए। हम लोगोंके पक्षमें आइए। आप जो चाहेंगे, हम देंगे।"

इसपर शिवाजीने बीजापुरकी रक्षाका भार लिया। मसऊदकी सहायताके लिए उन्होंने दस हजार सवार और दो हजार बैलोंपर रसद लादकर राजधानीमें भिजवाया, तथा अपनी प्रजाको हुक्म दिया कि जिससे जितना हो सके, वह

---

१. लन्दनकी 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' में रक्षित हस्तलिखित फारसी प्रतिलिपिका अनुवाद।

उतनी खानेकी चीजें, कपड़े इत्यादि बीजापुरमें बेचे। उनके दूत बिसाजी नीलकंठने जाकर मसऊदको ढाढ़स दिया—"आप किले की रक्षा कीजिए। हमारे प्रभु जाकर दिलेरको उचित शिक्षा देंगे।"

१५ सितम्बरको भीमाके दक्षिण किनारे धूलखेड़ गाँवसे चलकर दिलेर खाँ ७ अक्टूबरको बीजापुरसे उत्तर में छः मीलकी दूरीपर जा पहुँचा। इस महीनेके आखिरमें शिवाजी अपनी दस हजार फौज लेकर बीजापुरसे लगभग पचास मील पश्चिमकी ओर सेलगुड़ नामक स्थानपर पहुँचे। इससे पहले उनके जो दस हजार सवार बीजापुरकी ओर थे, वे भी यहाँ उनसे आ मिले। सेलगुड़से शिवाजी खुद आठ हजार सवार ले सीधे उत्तरकी ओर, और उनके दूसरे सेनापति आनन्दराव दस हजार घुड़सवार लेकर उत्तर-पूर्वकी ओर मुगल राज्य लूटने और भस्म करनेके लिए चले। उन्होंने सोचा कि दिलेर अपने प्रदेशकी रक्षा करनेके लिए जल्द ही बीजापुर राज्य छोड़कर भीमा पार होकर उत्तरकी ओर लौटेगा, परन्तु दिलेरने बीजापुरकी राजधानी और सुलतानको अपने अधिकारमें करनेके लोभमें पड़कर अपने मालिकके राज्यकी दुर्दशाकी ओर दृष्टि भी न डाली।

दिलेरकी निष्ठुरता और शम्भूजीका पनहाले लौटना

बीजापुरके समान मजबूत और बड़े किलेको जीतना दिलेरका काम न था। स्वयं जयसिंह भी यहाँ आकर विफल हुए थे। एक महीना व्यर्थ नष्ट करके १४ नवम्बरको दिलेर खाँने बीजापुर शहरसे हटकर उसके पश्चिमके धनशाली नगरों-ग्रामोंको लूटना आरम्भ किया। इस ओर मुगल आकर हमला करेंगे, इसका आशंका किसीको भी न थी, क्योंकि मुगलके पीछेकी ओर राजधानी तब भी जीती नहीं गई थी। इसलिए इस ओरके शहर और गाँवोंके लोग भागे न थे, और न उन्होंने अपने स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति आदिको ही किसी निरापद स्थानमें हटाया था। इस प्रकार अचानक दुश्मनोंके हाथमें पड़कर उनकी बड़ी मिट्टी-पलीद हुई। "हिन्दू और मुसलमान स्त्रियोंने छातीसे बच्चोंको चिपटाकर घरके कुओंमें कूद-कूदकर अपना सतीत्व बचाया। गाँवके गाँव लूटकर उजाड़ दिये गये। एक बड़े गाँवके तीन हजार हिन्दू-मुसलमान,

जिनमें बहुत-से नजदीकके छोटे-छोटे गाँवके भागे हुए शरण खोजनेवाले भी थे, गुलाम बनाकर बेच डाले गये !"

इस प्रकार बहुत-से स्थानोंको ध्वंस करता हुआ दिलेर खाँ बीजापुरसे ४६ मील पश्चिमकी ओर आथनी पहुँचा। उसने इस बड़े धन-जनपूर्ण शहरको लूटकर जला डाला और २० नवम्बरको वहाँके बाशिन्दोंको गुलाम बनाना चाहा। वे सबके सब हिन्दू थे, एवं शम्भूजीने इस अत्याचारमें बाधा डाली, परन्तु उनके मना करनेपर भी दिलेर न माना। इसपर शम्भूजी उसी रातको अपनी स्त्रीको पुरुषकी पोशाक पहनाकर घोड़ेपर सवार हो, केवल दस सवारोंको साथ ले दिलेर खाँके शिविरसे चुपचाप बाहर निकले और दूसरे दिन बीजापुर पहुँचकर उन्होंने मसऊदके यहाँ आश्रय लिया। यहाँ रहना भी निरापद न जानकर वे फिर भागे। रास्तेमें पिताके कुछ सैनिकोंसे भेट हुई, और उनकी मददसे (४ दिसम्बर, १६७९ ई० को) वे पहनाला पहुँचे।

शिवाजीका जालना लूटना और आफतसे बचना

इसी बीचमें शिवाजी ४ नवम्बरको सेलगुड़से बाहर निकलकर मुगल राज्यमें घुस गये, और रास्तेके दोनों ओरके स्थानोंको लूटते-पाटते और जलाते हुए आगे बढ़ने लगे। करीब १५ नवम्बरको उन्होंने (औरंगाबादसे ४० मील पूर्व) जालना शहर लूटा। परन्तु इस धन-जनपूर्ण वाणिज्यके केन्द्रमें उतना धन नहीं मिला जितना मिलना चाहिए था। बादमें उनको मालूम हुआ कि यहाँके महाजनोंने अपना-अपना रुपया-पैसा शहरके बाहर सैयद जानमहम्मद नामक मुसलमान साधुके आश्रममें छिपा रखा है, क्योंकि यह सभी जानते थे कि शिवाजी मन्दिरों, मसजिदों, मठों और पीरोंके स्थानोंकी इज्जत करते हैं, और उनपर हाथ नहीं डालते। इसपर सब मराठे सिपाही उस आश्रममें घुस गये और उन्होंने भगोड़ोंके रुपये-पैसे छीन लिये। इस लूट-पाटमें मराठोंने किसी-किसीको तो घायल भी किया। जब साधुने आश्रमकी शान्ति भंग करनेको मना किया, तब वे सब उसको गाली देने लगे और मारनेको भी तैयार हो गये। इसपर गुस्सा होकर उस महानशक्तिवान् पुण्यात्माने शिवाजीको शाप दिया। इसके पाँच महीने बाद ही शिवाजीकी मृत्यु हुई। लोगोंका कहना था कि पीरके क्रोधके कारण ही ऐसा हुआ।

मराठी फौज चार दिनतक जालना नगर और उसके आसपासके गाँव और बगीचे लूटकर पश्चिमको अपने देशकी ओर लौटी। साथमें लूटके असंख्य रुपये, गहने, हीरे-जवाहरात, कपड़े, हाथी और घोड़े थे, इसलिए वे धीरे-धीरे जा रहे थे। रणमस्त खाँ नामक एक साहसी और तेज मुगल फौजदारने उस समय पीछेसे आकर मराठी फौजपर आक्रमण किया। शिधोजी निम्बालकरने पाँच हजार फौज ले उसकी ओर मुड़कर उसे रोका। तीन दिनतक लड़ाई चली। शिधोजी और उनकी दो हजार फौज मारी गई। इसी बीच रणमस्त खाँकी सहायताके लिए मुगलोंकी दाक्षिणात्यकी राजधानी औरंगाबादसे बहुत-सी फौज आ रही थी। तीसरे दिन नई मुगल सेना लड़ाईकी जगहसे छः मीलकी दूरीपर पहुँचकर रातको वहीं ठहर गई। अब तो शिवाजी चारों ओरसे घिर गये और उनके पकड़े जानेमें कोई संशय नहीं रहा, लेकिन इस नई फौजके सरदार केसरीसिंहने चुपचाप उसी रातको शिवाजीको कहला भेजा कि सामनेका रास्ता बन्द होनेसे पहले ही आप सर्वस्व छोड़कर इसी दम देश भाग जायँ। हकीकतमें बहुत बुरी हालत देखकर शिवाजी लूटका माल, दो हजार घोड़े इत्यादि सब सामान उसी जगह छोड़कर केवल पाँच सौ चुने हुए सवार लेकर स्वदेशकी ओर रवाना हो गये। उनके चालाक प्रधान चर बहिरजीने एक अज्ञात रास्ता दिखाकर, तीन-दिन तीन-रात लगातार कूच करके उन्हें एक निरापद स्थानमें पहुँचा दिया। इस प्रकार शिवाजीके प्राणोंकी रक्षा हुई। लेकिन इस लड़ाईमें और भागनेमें उनके चार हजार सैनिक मारे गये। सेनापति हम्बीरराव घायल हुए; और बहुत-से मराठे योद्धा मुगलों द्वारा कैद कर लिये गये।

लूटका सब माल छोड़कर केवल पाँच सौ रक्षकोंके साथ शिवाजी थके-माँदे (२२ नवम्बरको) पट्टादुर्गमें पहुँचे। यह किला नासिक शहरसे २० मील पूर्वमें है। यहाँ कुछ दिन आराम करनेके बाद ही वे चलने-फिरने योग्य हुए, इसीलिए पट्टादुर्गका नाम 'विश्रामगढ़' रख दिया गया।

इसके बाद दिसम्बर महीनेके शुरूमें उन्होंने रायगढ़ जाकर तीन सप्ताह बिताये। शम्भूजीके (४ दिसम्बर) पनहाला लौट आनेपर शिवाजी खुद जनवरीके आरम्भमें उस किलेमें गये। पिछले नवम्बरके आखिरी सप्ताहमें मराठी फौजके एक दलने खानदेशमें प्रवेश कर धारणगाँव, चोपरा आदि बड़े-बड़े बाजार लूटे।

परिवारकी अन्तिम व्यवस्था

बड़े लड़केकी दुश्चरित्रता और दुर्बुद्धिकी बात सोचकर शिवाजी अपने राज्य और वंशके भविष्यके सम्बन्धमें बहुत हताश हो गये थे। उनके उपदेशों और मीठी बातोंका कुछ भी फल न हुआ। शिवाजीने पुत्रको अपने विशाल राज्यके सब महल, किले, धन-भाण्डार, हाथी, घोड़े और फौजकी सूची दिखाई, और सज्जन और उच्चाकांक्षी राजा बननेके लिए उसे अनेक उपदेश दिये। शम्भूजीने पिताकी बातें चुपचाप सुनी और अन्तमें कहा—"आपकी जैसी इच्छा है, वही हो।" अपनी मृत्युके बाद महाराष्ट्र राज्यकी क्या दशा होगी, यह बात शिवाजी-को स्पष्ट माल्रूम हो गई थी। इसी दुर्भावना और चिन्ताने उनकी आयुका ह्रास किया। शम्भूजी फिर पनहाले-किलेमें कैद रखे गये। शिवाजी (फरवरी १६८० में) रायगढ़ लौट आये। अन्त निकट आ गया है, यह समझकर शिवाजीने जल्दी-जल्दी अपने दस वर्षके छोटे लड़के राजारामका उपनयन और विवाह (७ और १५ मार्चको) कर दिया।

शिवाजीकी मृत्यु

२३ मार्चको शिवाजीको बुखार और रक्त-आमाशय माल्रूम हुआ। बारह दिनतक तकलीफ कम न हुई। धीरे-धीरे उनके बचनेकी कोई आशा न रही। उन्होंने भी अपनी अन्तिम दशा समझ कर्मचारियोंको बुलाकर उपदेश दिया। उन्होंने अपने रोते हुए स्वजन, प्रजा और सेवकोंसे कहा—"जीवात्मा अविनाशी है। हम युग-युगमें फिर भी पृथ्वीपर आवेंगे।" उसके बाद चिरयात्राके लिए प्रस्तुत हो, अन्तिम समयके उपयुक्त क्रियाकर्म दान-पुण्य आदि कर्म करवाये।

आखिरमें चैत्र-पूर्णिमाके दिन (रविवार, ४ अप्रैल, १६८० ई० को) सवेरे उनकी चेतनाका लोप हो गया, वे मानो सो गये। दोपहरको वह बेहोशी अनन्त निद्रामें परिणत हो गई। मराठा-जातिके नवजीवनदाता कर्मक्षेत्र शून्य कर वीरवांछित धामको चले गये! मृत्यु समय शिवाजीकी उम्र पूरे ५३ वर्षकी भी नहीं हुई थी, छः दिन तब बाकी रहे थे।

सारा देश स्तम्भित और वज्राहत हो गया। हिन्दुओंकी अन्तिम आशा भी लोप हो गई।

तेरहवाँ अध्याय

शिवाजीका राज्य और उनकी शासन-प्रणाली

शिवाजीके राज्यका फैलाव और विभाग

तीस वर्षके लगातार परिश्रम और कठिन उद्योगके द्वारा शिवाजीने जो राज्य निर्माण किया था, उसका संक्षेपमें विवरण देना असम्भव है। कारण यह है कि भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उनका अधिकार भिन्न-भिन्न प्रकारका था और उनका प्रभाव भी विभिन्न परिमाणमें था।

पहले लीजिए उनका अपना देश। इसको मराठीमें 'शिवस्वराज' और फारसीमें 'पुराना राज' (ममालिक-ए-कदीमी) कहते थे। यहाँ उनका अधिकार और क्षमता स्थायी रूपसे थी और उसको सब मानते थे। उसका फैलाव सूरत शहरसे साठ मील दक्षिणमें कोली देशसे लेकर गोआके दक्षिणमे कारवार शहरतक था। इस बीचमें पश्चिम किनारेपर केवल पुर्तुगालियोंके दो प्रदेश गोआ और दामन, छूट जाते थे। इस देशकी पूर्वीय सीमाकी रेखा बगलाना होती हुई दक्षिणकी ओर नासिक और पूना जिलेके मध्य-भागको भेदती, सतारा और कोल्हापुर जिलोंमें घूमकर उत्तर-कर्णाटकके किनारे गंगावती नदीपर जाकर समाप्त होती थी। अपनी मृत्युके दो वर्ष पहले शिवाजीने पश्चिमी कर्णाटकमें बेलगाँवसे पूर्वमें तुंगभद्रा नदीके तटवर्ती कोपल आदि जिलोंपर भी अधिकार कर लिया था। ये भी उनके स्थायी अधिकारमें आ गए थे।

यह 'शिव-स्वराज' तीन सूबेदारोंके अधीन तीन प्रदेशोंमें विभक्त था—

(१) देश, अर्थात् खास महाराष्ट्र; पेशवाके अधीन था।

(२) कोंकण, अर्थात् सह्याद्रिसे पश्चिमका प्रदेश; अण्णाजी दत्तोके अधीन था।

(३) दक्षिण-पूर्व-विभाग, अर्थात् दक्षिणी महाराष्ट्र और पश्चिमी कर्णाटक; दत्ताजी पन्तके अधीन था।

द्वितीयत; यद्यपि पूर्वीय कर्णाटक यानी मद्रासकी (१६७७-७८ ई०) दिग्विजयके फलस्वरूप जिंजी, बेलूर आदि जिले उनके हाथमें आ गये थे, परन्तु वहाँ उनकी सत्ता स्थायी नहीं हो पाई थी। जितनी जमीनपर उनकी फौज कब्जा कर सकती थी अथवा जहाँ राजस्व वसूल कर सकती थी, उतनेहीसे उनको सन्तोष करना पड़ता था। अन्यत्र सब जगह अराजकता और पुराने छोटे-छोटे सामन्तोंके झगड़े थे। मैसूर प्रदेशमें जीते हुए कई स्थानोंकी भी यही दशा थी। उनकी मृत्युके पहलेतक कर्णाटक-अधित्यकामें, यानी वर्तमान बेलगाँव और धारवार जिलोंमें तथा सोन्दा और विदनौर राज्योंमें लड़ाई जारी थी। वहाँ उनकी सत्ता डाँवाडोल अवस्थामें ही थी।

तृतायतः, इन सब स्थानोंसे बाहर आसपासके पड़ोसी प्रदेशोंमें उनकी सेना हर साल शरद ऋतुसे छः महीने रहकर चौथ वसूल किया करती थी। यह कर राजाका प्राप्य राजस्व नहीं था। यह डाकुओंको खुश रखनेका उपाय-मात्र था, इसके मराठी नाम 'खंडनी' ('यह रुपये लेकर हमें रिहाई दो, बाबा!') से ही यह बात स्पष्ट मालूम हो सकती है। और चौथ वसूल करनेपर भी मराठे लोग दूसरे शत्रुओंके आक्रमणसे उस देशकी रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं मानते थे, इससे भी यही बात प्रकट होती है। चौथके बदलेमें स्वयं उस देशको न लूटनेका ही वे अनुग्रह दिखाते थे।

राजस्व और धन-भांडार

शिवाजीके सभासद कृष्णाजी अनन्तने सन् १६९४ ई० में लिखा था कि उनके मालिकके राजस्वका परिमाण प्रतिवर्ष एक करोड़ होंण और चौथ अस्सी लाख होंणतक थी। होंण सोनेकी बहुत छोटी मुद्रा होती थी। उसका दाम पहले चार रुपयेके बराबर था और बादमें पाँच रुपयेके बराबर हो गया था। इस हिसाबसे इन दोनों मदोंसे शिवाजीकी आय प्रतिवर्ष सातसे लेकर नौ करोड़ रुपयोंतककी होती थी; परन्तु वास्तवमें वसूल बहुत कम होता था, और वह भी प्रतिवर्ष समान रूपसे प्राप्त नहीं होता था। उनकी मृत्युके बाद उनके भांडारमें जो धन-दौलत मिली, उसका परिमाण मराठी भाषाके 'सभासद बखर' और फारसी इतिहास 'तारीख-ए-शिवाजी' में विस्तृत रूपसे दिया गया है। इसमें सोनेके सिक्कोंकी तादाद थी छः लाख मोहर और प्रायः पचास

लाख होंण। इसके अतिरिक्त साढ़े बारह खण्डी वजनके सोनेके डले थे। चाँदीके ५७ लाख रुपये थे और ५० खंडी वजनकी चाँदी थी। इनको छोड़कर हीरा, मणिमुक्ता आदि रत्न लाखोंके मूल्यके थे। (एक खंडी कलकत्तेके सात मनसे कुछ कम, ६·८ मनके बराबर होती थी)।

अष्ट प्रधान

सन् १६७४ ई० में राज्याभिषेकके समय शिवाजीके आठ मन्त्री थे। राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें उनके पदोंकी उपाधियाँ फारसीसे संस्कृतमें बदल दी गई थीं।

(१) मुख्य प्रधान (फारसी, पेशवा); यही प्रधान मन्त्री, राजाके प्रतिनिधि और दाहिने हाथ थे। नीचेके पदके कर्मचारियोंमें मतभेद होनेपर ये ही उसका फैसला करके राज-काजको सुविधापूर्वक चलाते थे, परन्तु अन्य सात प्रधान उनके अधीन अथवा उनकी आज्ञामें नहीं थे। उनमेंसे प्रत्येक अपने-अपने विभागमें केवल राजाको छोड़कर और किसीको अपना प्रभु नहीं मानता था।

(२) अमात्य (फारसी, मजमुआदार) या हिसाब जाँचनेवाले (आडिटर या एकाउण्टेण्ट-जनरल); उनके हस्ताक्षरके बिना राज्यके आय-व्ययके हिसाबके कागज-पत्र ग्राह्य नहीं होते थे।

(३) मन्त्री (फारसी, वाकियानवीस); ये राजाके रोजमर्राके काम-काज और दरबारकी घटनाओंको लिखते थे। गुप्त रूपसे कोई राजाकी हत्या करने अथवा उनपर विष प्रयोग करनेकी चेष्टा न करे, इसलिए राजाके संगियों, दर्शन चाहनेवाले आगन्तुकों और खाने-पीनेकी चीजोंके ऊपर इस मन्त्रीको सतर्क दृष्टि रखनी पड़ती थी।

(४) सचिव (फारसी, शुरूनवीस); इनका काम था कि वे देखें कि सरकारी चिठ्ठी-पत्रीकी भाषा ठीक हुई या नहीं; जाली राजपत्रकी सृष्टि न हो, इसलिए सचिवको हर एक फर्मान और दान-पत्रकी पहली पंक्ति स्वयं अपने हाथोंसे लिखनी पड़ती थी।

(५) सुमन्त (फारसी, दबीर) या परराज्य-सचिव (फारेनसेक्रेटरी); ये विदेशी दूतोंकी खातिरदारी और विदाई करते थे; और गुप्तचरोंकी सहायतासे दूसरे राज्योंकी खबरें मंगाते थे।

(६) सेनापति (फारसी, सर-ए-नौबत)।

(७) दानाध्यक्ष;—इसका मराठी भाषामें पुकारनेका नाम 'पंडितराव' था (फारसी, सदर और मुहतसिबका पद मिलाकर था); ये राज्यकी ओरसे ब्राह्मण-पण्डितोंकी दक्षिणा तय करते, धर्म और जाति-सम्बन्धी झगड़ोंका विचार करते, पापाचार एवं धर्मभ्रष्टताकी सजा देते और प्रायश्चित्त-विधिकी आज्ञा देते थे।

(८) न्यायाधीश (फारसी, काजी-उल-कुजात्) या प्रधान विचारपति (चीफ-जस्टिस); धर्म-सम्बन्धी मामलोंको छोड़कर और सब विवादोंके विचार-भार इनके हाथमें था।

इन लोगोंमेंसे सेनापतिको छोड़कर और सबके सब प्रधान जातिके ब्राह्मण थे; किन्तु ब्राह्मण होनेपर भी दानाध्यक्ष और न्यायाधीशको छोड़कर अन्य पाँचों मंत्रियोंको समय-समयपर फौजका नेता बनकर लड़ाईमें जाना पड़ता था, और वे क्षत्रियोंकी अपेक्षा किसी अंशमें भी कम वीरत्व अथवा रणचातुरी नहीं दिखाते थे। फर्मान, दानपत्र, सन्धिपत्र इत्यादि सम्पूर्ण बड़े-बड़े सरकारी कागजोंपर पहले राजाकी मोहर, उसके बाद पेशवाकी छाप और सबके नीचे आमात्य, मन्त्री, सचिव और सुमन्त—इन चार प्रधानोंके हस्ताक्षर रहते थे।

वर्तमान युगमें विलायतकी मन्त्री-सभा (कैबिनेट) ही सचमुच सारे देशपर शासन करती है। वे सब विभागोंमें अपनी आज्ञा चलाते हैं, और लड़ाई, सन्धि, राजस्व, शिक्षा इत्यादि सब बातोंमें राज्यकी नीति स्थिर करते हैं। बादशाहको भी उनका मत मानना ही पड़ता है, क्योंकि देशके अधिकांश लोग उनका समर्थन करते हैं। यदि बादशाह उनकी सम्मतिके अनुसार काम न करे तो मन्त्रीगण अपने पद त्याग देंगे, साधारण जनता बिगड़ उठेगी और दबना पड़ेगा।—सम्भव है कि बादशाहको सिंहासन भी छोड़ना पड़े; परन्तु शिवाजीके ऊपर मराठे अष्ट प्रधानोंका ऐसा कुछ भी अधिकार न था। वे राजाके मुहर्रिर या मुंशी (सेक्रेटरी) मात्र थे। उनका कर्तव्य होता था राजाकी आज्ञाओंका पालन करना। अष्ट प्रधानोंका कोई उपदेश सुनना या न सुनना, राजाकी इच्छापर निर्भर था। प्रधान लोग किसी विषयमें भी राज्यकी नीति निर्धारित नहीं कर सकते थे—यहाँतक कि उनके निम्न कर्मचारी भी अपने विभागके मन्त्रीके विरुद्ध राजाके पास अपील कर सकते थे। फिर इन अष्ट

प्रधानोंमेंसे प्रत्येक खुदमुख्तार था। वे अँग्रेजोंकी कैबिनेटके सदस्योंकी तरह एक सुसंगठित शृंखला अथवा दलमें बँधे हुए न होते थे।

मुहर्रिर लोग और बहुत-से स्थानोंमें हिसाब-किताब रखनेवाले भी प्रायः सबके सब ही जातिके कायस्थ थे (चिटनवीस, फर्दनवीस इत्यादि)। फौजका हिसाब लिखता था 'सबनीस' उपाधिधारी श्रेणीका एक कर्मचारी। इन लोगोंका पद सामान्य होनेपर भी प्रभाव बहुत अधिक था। शिवाजीके कर्मचारीगण (विशेषकर सूबेदार, थानेदार आदि) बड़ी निर्लज्जताके साथ लोगोंको कष्ट देकर घूस लेते थे और राजस्वको अपना धन बनाकर जमा करते थे।

अँग्रेजोंके आनेके पहले हमारे देशमें दो प्रकारके घुड़सवार फौजमें भर्ती किये जाते थे। एक तो वे जो राजाके नौकर होते थे और जो सरकारकी ओरसे हथियार, कवच और घोड़े आदि साज-सामान पाते थे। उनका नाम था 'पागा'। दूसरे किरायेके घुड़सवार होते थे जो अपने निजके हथियार, कवच और घोड़ा आदि सामान रखते थे और बुलाये जानेपर अनेकों राज्योंमें वेतन लेकर लड़ा करते थे। वे 'सिलेदार' कहलाते थे। पागा सैन्यको फारसीमें 'बारगीर' (भारवाही) कहते थे। इसीसे बंगाली भाषाके 'बर्गी' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। जिस साल अथवा जिस चढ़ाईमें जितने लोगोंकी आवश्यकता होती थी, उसीके अनुसार राजा कम या अधिक सिलेदार किरायेपर बुला लेते थे।

शिवाजीकी सेनाकी संख्या

राज्य-स्थापनके आरम्भमें शिवाजीके अधीन एक हजार (अथवा बारह सौ) पागा और दो हजार सिलेदार घुड़सवार थे। उसके बाद राज्य फैलने और दूर-दूरके देशोंपर आक्रमण करनेके कारण उनका सैन्य-दल क्रमशः बढ़ते-बढ़ते उनके जीवनके अन्तिम कालमें निम्नलिखित-संख्यातक पहुँच गया था—

४५,००० पागा—२९ सेनापतियोंके अधीन, २९ दलोंमें विभक्त थे।

६०,००० सिलेदार—३१ सेनापतियोंके अधीन थे।

१,००,००० मावले सिपाही—३६ सेनापतियोंके अधीन थे।

ये सिपाही आजकलके सभ्य संसारके सिपाहियोंकी तरह बारहों महीने कूच या कवायद नहीं किया करते थे। वे खेती-बारीके समय अपने गाँवोंमें जा-जाकर खेती करते थे और विजयादशमीके दिन विदेश-आक्रमणके लिए अथवा युद्धकी आशंका होनेपर उससे पहले ही छावनीमें आकर इकट्ठे हो जाते थे। तब उनको हथियार, कवच आदिसे सुसज्जित करके नेताओंके अधीन दलोंमें बाँट-कर फौजका संगठन किया जाता था। किलेकी रक्षा करनेवाले सिपाही इनसे भिन्न होते थे। उन लोगोंको खेती करनेके लिए किलेके नीचे जमीन मिलती थी, और वे अपने परिवारको किलेमें और कभी-कभी किलेके नीचेके गाँवोंमें रखते थे। वे बारहों महीने नौकर रहते थे। उन्हें घर छोड़कर दूर जाना नहीं पड़ता था।

शिवाजीके पास अपने निजके १२६० (किसी-किसीके मतानुसार तीन सौ) हाथी, ३००० ऊँट और ३७००० घोड़े थे।

सैन्य-विभागकी शृंखला

राजाके निजी घुड़सवारोंके दल (पागा) का संगठन इस प्रकार था—पचीस साधारण सिपाहियों (बर्गी) के ऊपर एक हवलदार (सार्जेन्ट), पाँच हवल-दारोंके (१२५ साधारण सवारोंके) ऊपर एक हजारी (कर्नल) होता था। उनके ऊपर पाँच हजारी (ब्रिगेडियर-जनरल) और सबके ऊपर सर-ए-नौबत (कमाण्डर-इन-चीफ) होता था। हर पचीस घुड़सवारोंके लिए एक भिश्ती और एक नालबन्द नियत रहता था।

पैदल सिपाहियोंके विभागमें नौ सिपाहियों अथवा 'पाइक'के ऊपर एक हवलदार, दो अथवा तीन हवलदारोंके ऊपर एक जुमलादार और दस जुमला-दारोंके ऊपर (९००—१३५० पाइकोंके) ऊपर एक हजारी होता था।

राजाके शरीर-रक्षक (गार्ड ब्रिगेड) दो हजार चुने हुए मावले प्यादा थे। ये लोग चमक-दमकवाली पोशाकों और अच्छे-अच्छे हथियारोंसे सजे रहते थे।

हर एक सैन्यदल (रेजिमेण्ट) के साथ एक-एक हिसाब जाँचनेवाला (मजमुआदार), सरकार (कारभारी) और आमदनी लिखनेवाला (जमा-नवीस) रहता था।

पागा जुमलादारका	वार्षिक वेतन		५०० होंण
,, मजमुआदारका	,,	,,	१०० से १२५ होंण
,, हजारीका	,,	,,	१००० होंण
,, जमानवीस आदि तीन मनुष्योंका कुल	,,	,,	५०० होंण
पागा पाँच हजारीका	प्रति वर्ष वेतन		२००० होंण
प्यादा जुमलादारका	,,		१०० ,,
,, सबनीसका	,,		४० ,,
,, हजारीका	,,		५०० ,,
,, हजारी सबनीसका	,,		१०० से १२५ होंण

शिवाजीकी रण-नीति

शिवाजीकी फौज वर्षाकालमे अपने ही देशम छावनीमें चली जाती थी। वहाँ घास, घोड़ोंका चारा, औषध, फूसकी कुटियाँ, घोड़ोंके अस्तबल आदिका बन्दोबस्त रहता था। विजयादशमीके दिन फौज छावनीसे कूच कर बाहर निकलती थी। उसी समय फौजके छोटे-बड़े सब आदमियोंकी सम्पत्तिकी तालिका लिखकर रख ली जाती थी। उसके बाद वे देश लूटने जाते थे। आठ महीने-तक फौज पराये देशोंमे पेट भरती और चौथ वसूल करती रहती थी। औरतें, दासियाँ और नाचनेवाली स्त्रियाँ फौजके साथ नहीं जा सकती थीं। जो सिपाही इस नियमको भंग करता था उसका सिर काटनेका हुक्म था। "शत्रुओंके देश-की स्त्रियों और बच्चोंको मत पकड़ो; केवल मर्दोंको हो कैद करो। गाय मत पकड़ो। हाँ, बोझा ढोनेके लिए बैल ले सकते हो। ब्राह्मणोंके ऊपर अत्याचार मत करो। चौथके लिए किसी ब्राह्मणकी जमानत मत लो। कोई भी कुकर्म मत करो। आठ महीनेतक परदेशोंपर चढ़ाई करनेके बाद वैशाख मासमें लौटकर पहुँचते ही फौजकी सब चीजोंकी तलाशी ली जायगी। पहलेकी तालिकासे मिलान करनेपर जो माल अधिक निकलेगा, उसका दाम उनके वेतनसे काटा जायगा। कीमती चीज होनेपर उसे सरकारमें जमा कराना पड़ेगा। अगर कोई सिपाही धन, रत्न आदि छिपाये और उसके सरदारको यह मालूम हो जाय, तो उसे सजा मिलेगी।

"छावनीमें फौजके पहुँचनेपर हिसाब करके लूटका सोना, चाँदी, रत्न, वस्त्रादि लेकर सब सरदार राजाके दर्शनके लिये जायँगे। वहाँ वे हिसाब समझ-कर सारा माल राज-भांडारमे जमा करके फौजकी तनख्वाहका जो हिसाब पाना होगा, उसे राजकोषसे लेंगे। अगर नकद रुपयेके बदले कोई चीज लेनेकी इच्छा हो, तो हुजूरसे माँग कर लेंगे। पिछली चढ़ाईसे जिसने जैसा काम किया अथवा कष्ट सहन किया होगा, उसीके अनुसार उसको इनाम दिया जायगा। किसीने यदि नियम-विरुद्ध काम किया होगा, तो उसकी खुलेआम जाँच होगी और उसके ऊपर विचार कर उसे निकाल दिया जायगा। उसके बाद चार महीने (दशहरेतक) फौजोंको छावनीमें रहना पड़ेगा।"—(सभासद-बखर)

किलेका बन्दोबस्त

शिवाजीने हर एक किले और थानेको तीन श्रेणियोंके हाकिमोंके हाथमें रखा था। उनमेंसे हर एक अपने-अपने विभागमें स्वतन्त्र था। प्रत्येक व्यक्ति अन्य दो आदमियोंके ऊपर ईर्ष्याभाव और सतर्क दृष्टि रखता था, इसीलिए उन लोगों-का एक साथ मिलकर मालिकका किला और सम्पत्ति नाश करनेका षड्यन्त्र रचना असम्भव था। ये तीन व्यक्ति थे—(१) हवलदार, (२) सर-ए-नौबत और (३) सबनीस। इनमेंसे पहले दो जातिके मराठा होते थे और तीसरा ब्राह्मण, इसलिए जाति भेदके झगड़ेसे भी उन तीनों आदमियोंके गुप्त दल बननेका भय न था। किलेका रसद-पानी एक कायस्थ लेखक (कारखाना-नवीस) के जिम्मे रहता था। प्रत्येक बड़े किलेकी दीवारें चार-पाँच टुकड़ोंमें बाँट दी गई थीं। हर एक टुकड़ा एक रक्षण (तट सर-ए-नौबत) के हाथमें रहता था। किलेके बाहर पारवारी और रामुशी (वंशगत चोर), इन दो जातियोंके लोग पहरा देते थे।

किलेका हवलदार अपने नीचेके अमलदारोंको बरखास्त कर सकता था। सरकारी चिट्ठी-पत्री उसीके नाम आती थी, और सरकारी पत्रोंपर वह अपनी मोहर लगा कर भेजता था। उसका काम था रोज शामको किलेके फाटकका ताला बन्द करना और सबेरे उसे खोलना। फाटककी चाबियोंको वह हमेशा साथ रखता था। रातको भी उन्हें अपने तकियेके नीचे रख कर सोता था। वह बराबर चारों ओर घूम-घूमकर यह देखता था कि किलेके भीतर-बाहर सब

ठीक है कि नहीं। वक्त-बेवक्त बिना खबर दिये हुए सहसा चुपके-से पहुँचकर वह यह देखता था कि पहरेदार सो रहे हैं अथवा खबरदारीसे पहरा दे रहे हैं। सर-ए-नौबत रातको चौकीदारोंका काम देखता था।

जमीनकी मालगुजारी और शासन-प्रणाली

"देशकी सारी जमीन नापकर खेतोंका भाग किया जायगा। अट्ठाईस अंगुलका एक हाथ; पाँच हाथ और पाँच मुट्ठीका एक कट्ठा; बीस कट्ठा लम्बा और बीस कट्ठा चौड़ाईका एक बीघा; १२० बीघोंका एक चावर। इसी नापसे हर एक गाँवमें जमीन नापी जायगी। हरएक बीघेकी पैदावार निश्चित करके उसके दो भाग राजा लेंगे और तीन भाग प्रजाको मिलेगा।

"नई रिआयाको बसाकर उसके खानेके लिए और गाय, बैल तथा बीज खरीदनेके लिए पेशगी रुपया दिया जायगा, जो दो-चार वर्षके भीतर वापस वसूल कर लिया जायगा। रिआयासे फसल काटते समय पैदावारके अनुसार राज-कर लिया जायगा।

"प्रजा जमींदार, देशमुख और देसाइयोंके अधीन न रहेगी। ये लोग प्रजाके ऊपर कोई अधिकार न चला सकेंगे। दूसरे राज्योंमें ये सब पुश्तैनी भूस्वामी लोग (मिरासदार) धन, क्षमता और सैन्य-बल बढ़ाकर प्रायः स्वाधीन हो उठे थे। बेचारी असहाय प्रजा उनके हाथमें थी। वे देशके राजाको नहीं मानते थे और प्रजासे जो राज-कर वसूल करते थे उसे खुद खा जाते थे; राज्य-कोषमें बहुत कम रुपया जमा करते थे। शिवाजीने इस श्रेणीके जमींदारोंका दर्प चूर्ण कर दिया। मिरासदारोंके किले तोड़कर, केन्द्रस्थानोंमें अपनी फौजका थाना स्थापित करके जमीदारोंके हाथसे सब अधिकार छीन लिये और उनकी प्राप्य आयकी एक दर निश्चित कर दी। इस प्रकार उन्होंने जमींदारोंके प्रजा-पीड़न और राजस्व लूटनेका रास्ता ही बन्द कर दिया। जमींदारोंको अपने गढ़ बनानेकी मनाई कर दी गई। हर एक गाँवके कर्मचारीको अपने कर्म एवं परिश्रमके अनुसार उचित हिस्सेके सिवा (अन्नके अंशके सिवा) और कुछ न मिलेगा।" (सभासद)।

उसी प्रकार जागीरदार लोग भी अपनी-अपनी जागीरके महालोंमें खाली मालगुजारी वसूल करते थे। प्रजाके ऊपर भूस्वामी अथवा शासनकर्ताकी तरह

उनको किसी भी प्रकारके अधिकार नहीं थे। किसी भी सिपाही, अफसर या रैयतको जमीनपर स्थायी स्वत्व (मोकासा) नहीं दिया जाता था; क्योंकि ऐसा होनेपर वे स्वाधीन होकर विद्रोह करते थे और देशमें राजाकी सत्ता ही लोप हो जाती थी।

"लगभग एक लाख होंण वसूल होनेवाले महालके ऊपर एक सूबेदार (वार्षिक वेतन चार सौ होंण) और एक मजमुआदार (वार्षिक वेतन १०० से १२५ होंण) रखे जाते थे। पालकी-खर्चके लिए सूबेदारको चार सौ होंण और मिलते थे। ये सब सूबेदार जातिके ब्राह्मण होते थे और पेशवाके निरीक्षणमें रहते थे।" (सभासद)।

धर्म-विभाग

"राज्यमें जहाँ-जहाँ देव-मन्दिर थे, शिवाजी वहाँ-वहाँ दीप, नैवेद्य, नित्य-पूजा-पाठ, इत्यादिका बन्दोबस्त करते थे। मुसलमान पीरोंके स्थानों और मसजिदोंमें प्रदीप इत्यादि जलानेके लिए उन स्थानोंके नियमानुसार धनकी सहायता देते थे। उन्होंने बाबा याकूत नामके एक पीरको भक्तिपूर्वक अपने खर्चसे केलशी नामक शहरमें बसाकर जमीन दान की थी। प्रत्येक ग्रामके वेद-क्रियामें निपुण ब्राह्मणोंके योगक्षेमके लिए और विद्यावन्त, वेदशास्त्र जाननेवाले ज्योतिषी, अनुष्ठानी, तपस्वी तथा सत्पुरुष ब्राह्मणोंको चुन-चुनकर उनके परिवारकी सख्याके हिसाबसे जितना अन्न-वस्त्र आवश्यक होता था, उसीके अनुकूल आमदनीवाले महाल गाँव-गाँवमें दिये जाते थे। हर साल सरकारी हाकिम लोग यह सहायता उनके यहाँ पहुँचा देते थे।" (सभासद)।

"लुप्त वेदचर्चा शिवाजीके अनुग्रहसे फिर जाग उठी। जो ब्राह्मण विद्यार्थी एक वेद कण्ठस्थ करता, उसे हर साल एक मन चावल; जो दो वेद कण्ठस्थ करता था, उसे दो मन; इस प्रकार दान होता था। हर साल उनके पंडितराव श्रावणके महीनेमें छात्रोंकी परीक्षा ले उनकी वृत्तिको घटा-बढ़ा देते थे। विदेशी पण्डितोंको सामग्री और महाराष्ट्र देशके पण्डितोंको खानेकी चीजें दक्षिणा-स्वरूप दी जाती थीं। बड़े-बड़े पण्डितोंको बुलाकर उनकी सभा करके उन्हें विदाईमें नकद रुपये दिये जाते थे।" (चिटनीस बखर)।

चौदहवाँ अध्याय

शिवाजीके गुरु और शिव-परिवार

शिवाजीके गुरु रामदास स्वामी (जन्म १६०८ ई०, मृत्यु १६८१ ई०) महाराष्ट्र देशके बड़े प्रसिद्ध और सर्वमान्य साधु पुरुष थे। उनकी भक्तिरसपूर्ण शिक्षाकी वाणी अत्यन्त सरल, सुन्दर और पवित्र है। शिवाजीने सन् १६७३ ई० में सताराका किला जीतकर उससे चार मील दूर पारली-दुर्गपर अधिकार कर लिया। इसी पारली-दुर्गको सज्जन-गढ़ (साधुओंका गढ़) नया नाम देकर शिवाजीने वहीं अपने गुरुके लिए एक आश्रम बना दिया आर रामदास स्वामीको वहीं लाकर रखा तथा उनके लिए मन्दिर, मठ आदि बनवा दिये। संन्यासियों और भक्तोंके भरण-पोषणके लिए नजदीकके गाँवमें देवोत्तर जमीन दी। अब भी लोग कहते है कि सताराके फाटकके ऊपरकी चोटीके एक पत्थर-पर बैठकर शिवाजी पारली-स्थित गुरुके साथ दैवबलसे बातचीत किया करते थे। रामदास अन्य संन्यासियोंकी भाँति रोज भिक्षाको निकलते थे। शिवाजी इससे हैरान थे। उन्होंने सोचा—"गुरुजीको हमने इतना धन और ऐश्वर्य दान दिया, तब भी वे भिक्षाटन क्यों करते हैं? क्या करनेसे उनके मनकी तृष्णा मिटेगी?" इसी खयालसे उन्होंने दूसरे दिन एक कागजपर महाराष्ट्रका अपना सारा राज्य और समस्त राजकोषका दानपत्र रामदास स्वामीके नाम लिखकर उसपर अपनी मोहर लगा दी और भिक्षाके रास्तेपर गुरुको पकड़ कर उस दानपत्रको उनके चरणोंमें अर्पित कर दिया।

रामदास उसे पढ़कर मन्द मुसकानके साथ बोले—"अच्छी बात है। यह सब हमने ले लिया। आजसे तुम हमारे गुमाश्तामात्र रहे। अब यह राज्य तुम्हारे लिए अपने भोग-विलास और मनमानी करनेकी वस्तु न रहा। तुम्हारे ऊपर एक बड़ा मालिक है। उसीकी यह जमींदारी है जिसे तुम उसके विश्वासी नौकरके रूपमें चला रहे हो, इसी दायित्वके विचारसे आगे राज-काज चलाना।"

राज्यके मालिक संन्यासी होनेके कारण उनका गेरुआ वस्त्र ही शिवाजीकी

राज-पताका हुई, जिसका नाम रक्खा गया 'भगवा झंडा'। यह मनोरम दन्त-कथा महाराष्ट्र देशमें खूब प्रचलित है।

'समर्थ' रामदासकी जीवन-चरित और उनके उपदेश

सन् १६०८ ई० के चैत्र मासके शुक्लपक्षकी नवमीको एक सूर्योपासक ब्राह्मण-वंशमें रामदासका जन्म हुआ था। उनके पिता उन्हें 'नारायण' कहकर पुकारते थे। बचपनसे ही वे बड़े धर्मप्रेमी थे। बड़े भाईके मन्त्र ग्रहण करनेके समय उन्होंने भी मन्त्र लेनेके लिए बहुत जिद की। पितृहीन बालकने माताके अत्यन्त अनुरोध करनेपर बारह वर्षकी आयुमें विवाह करना तो स्वीकार किया, परन्तु मन्त्र पढ़ते समय विवाह-मंडपसे भागकर संसार त्याग दिया। उसके बाद नासिक शहरके पास गोदावरी नदीके किनारे पंचवटीमें आश्रय ले बारह वर्षतक धर्म-शिक्षा ग्रहण करनेपर 'रामदास' नामसे दीक्षा ली। महाराष्ट्रके लोगोंको विश्वास है कि वे पूर्वजन्ममें हनुमान थे। लोग उनके आजानुलम्बित बाहुको इसका प्रमाण मानते थे। तुकाराम और दूसरे साधु लोग विष्णुके अन्य अवतार 'विठोबा' की पूजाका प्रचार करते थे, लेकिन रामदास हनुमान्‌की तरह श्रीरामचन्द्रके परम भक्त थे, और उसी अवतारको उन्होंने अपने धर्मके उपास्य देवताके रूपमें माना था।

दीक्षाके बाद रामदास भी और साधुओंकी तरह बारह वर्षतक भारतके सब तीर्थोंमें घूमे। लोग कहते हैं कि स्वयं भगवान् रामचन्द्रने प्रकट होकर उनसे कहा—"संसारमें प्रवेश करो और एक नया भक्त-सम्प्रदाय चलाओ।" तीर्थाटन समाप्त कर ३६ वर्षकी उम्रमें (१६४४ ई० में) स्वामी रामदास अपनी जन्मभूमिको लौटे, और सतारा जिलेके चाफल ग्राममें कुटी बनाकर वहाँ उन्होंने राम और हनुमान्‌के दो मन्दिर (१६४९ ई० में) में बनवाये। असाधारण चातुरीसे उन्होंने बड़ी जल्दी 'रामदासी' नामका एक नया सम्प्रदाय खड़ा कर दिया। उनके अनेकों शिष्य हुए, जिनके लिए स्थान-स्थानपर मठ स्थापित हुए। इस प्रकार दस वर्ष बीत गये।

उसके बाद फिर दस वर्षतक उन्होंने रायगढ़ किलेके पास शिवतर गाँवमें एकान्तवास किया। बहुत कुछ चिन्तन और मनन करनेके बाद उन्होंने 'दासबोध' नामक (२० सर्गका) ग्रन्थ तैयार किया। उसमें उन्होंने अपने

धर्मके उपदेश लिपिबद्ध किये। वे संस्कृत और प्राचीन मराठी साहित्यके बड़े पंडित थे, इसलिए यह ग्रन्थ बहुत उपादेय हुआ है।

रामदासके पुण्यके प्रभावसे मोहित होकर शिवाजीने उनसे 'श्रीराम, जय राम जय जय राम', इस मन्त्रकी दीक्षा ली। गुरुने उन्हें बहुत संक्षेपमें महान् उपदेश दिया, परन्तु जब शिवाजीने भक्तिके आवशमें कहा, "मैं आपके चरणोंके समीप रहकर आपकी सेवा करूँगा।" तब रामदासने उनको धमकाकर मना किया, और कहा, "क्या इसीलिए तुम हमारे पास प्रार्थी होकर आये हो? तुम हो कर्मवीर क्षत्रिय; तुम्हारा काम है देश और प्रजाको विपदसे बचाना और देव-ब्राह्मणोंकी सेवा करना। तुम्हारे करने योग्य बहुत-सा काम पड़ा है। म्लेच्छोंने देशपर पूरा आधिपत्य जमा लिया है। तुम्हारा काम उनके हाथसे देशका उद्धार करना है। यही श्रीरामचन्द्रका अभिप्राय है। भगवद्गीतामें अर्जुनको श्रीकृष्णने जो उपदेश दिया था, उसको याद करो, 'योद्धाके कर्त्तव्य मार्गसे चलो, कर्म-योगकी साधन करो'।"

रामदास शिवाजीको उत्तम कर्मयोगी कहकर सर्वदा उनकी प्रशंसा करते थे। सबके सामने उनको आदर्श राजाके रूपमें उपस्थित करते थे। रामदास द्वारा कवितामें लिखी हुई शिवाजीके नामकी एक चिट्ठी महाराष्ट्र देशमें खूब प्रचलित है। उसमें गुरुने राजाको सम्बोधन करके कहा है, "निश्चयके हे महा-मेरू, अनेक लोगोंके सहायक, दृढ़प्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, दानवीर, अतुलगुणसम्पन्न, नरपति, अश्वपति, गजपति, समुद्र और पृथ्वीके अधीश्वर, सदा प्रबल विजयी, प्रसिद्ध धर्मवीर, पृथिवी डावाँडोल हो रही है, धर्मलोप हो गया है। गो, ब्राह्मण, देवता और धर्मकी रक्षाके निमित्त नारायणने तुमको भेजा है। धर्म-संस्थापनके निमित्त अपनी कीर्ति अमर करो।"

वृद्धावस्थामें भी शिवाजी राजकाजके विषयमें स्वामीजीसे सदा उपदेश लेते थे। रामदासकी शिक्षामें भक्तियोग और कर्मयोगका बहुत अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। उन्होंने जीवनके दृष्टान्तों और जटिल राजनीतिक समस्याओं-पर शिवाजीको जो उपदेश दिये थे, उन उपदेशोंने महाराष्ट्रवासियोंकी स्वाधी-नताकी साधनाके पथको सुगम कर दिया था। रामदासकी धर्म-शिक्षाको

'फलित भगवद्गीता' कहा जा सकता है। उनके शिष्य गीताके एक जीवित उदाहरण थे।

शिवाजी और रामदासके सम्बन्धमें विभिन्न मत

स्वामी रामदास शिवाजीके आध्यात्मिक गुरु तो थे ही, परन्तु आजकल कई लोगोंका कहना है कि उन्हींकी सलाहसे शिवाजीने स्वराज्य-स्थापना की थी; लेकिन इस बातको साबित करनेके लिए जो प्रमाण पेश किये जाते है, वे सशयमूलक हैं। मतलब यह कि राजकाजके बारेमें रामदास स्वामीका शिवाजीके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता है। काम-क्रोधादि षड्रिपुओंको जीतना और इस लोकके सुख-दुःखके विषयमें उदासीन रहना, यही हिन्दू साधुओंके मुख्य लक्षण होनेके कारण रामदासका किसी भी राज-काजमें प्रत्यक्ष रूपसे भाग लेना सम्भव न था और न इस प्रकार उनके भाग लेनेकी बात ही सिद्ध होती है। इतना ही नहीं, बल्कि उनके शिष्यसम्प्रदायमें राज-काजकी परम्परा नहीं दिखाई देती, जिससे यह बात साबित होती है कि रामदास स्वामी राजनीतिक साधु न थे।

रामदासका राजनीतिक उपदेश

शिवाजीके बाद जब नवयुवक शम्भूजी राजा हुए, तब वृद्ध गुरु रामदासने अपनी मृत्यु निकट देखकर नये राजाको अनेक उपदेश देते हुए एक पत्र पद्यमें लिखा था। उसमें उन्होंने लिखा है—

"अनेक लोगोंको इकट्ठा करो,
विचार करके लोगोंको काममें लगाओ,
परिश्रमपूर्वक आक्रमण करो,
म्लेछके ऊपर। १४
जो है (पहले) उसका यत्न करो,
बादमें और भी (राज्य) बढ़ाना,
महाराष्ट्र-राज्य (विस्तार) करना
यत्र-तत्र। १५

लोगोंको साहस दो,
बाजी रखकर तलवार चलाओ,
'बढ़-चढ़' के (धीरे-धीरे) अधिक नाम
पैदा करो। १६

शिव राजाको याद रखो,
जीवनको तृणवत् समझो,
इस लोक और परलोकको पार करना
कीर्तिरूपमें। १७

शिव राजाके रूपको याद रखो,
शिव राजाकी दृढ़ साधनाको याद रखो,
शिव राजाकी कीर्तिको स्मरण करो
भूमण्डलमें। १८

शिव राजाकी बोलचाल कैसी थी,
शिव राजाका चलना कैसा था,
शिव राजाकी मैत्री करनेकी क्षमता कैसी थी,
ठीक वैसे ही हो। १९

सब सुख त्यागकर,
योग साधकर,
राज्य-साधनामें जैसे वे
जल्दी आगे बढ़े थे। २०

तुम उनसे भी अधिक करना;
तभी तो तुम पुरुष कहकर जाने जाओगे। २१"

शिवाजीका परिवार

शिवाजीके पाँच विवाह हुए थे:—

१ सईबाई (निम्बालकरकी कन्या)—मृत्यु ५ सितम्बर १६५९। शम्भूजी इन्हींके पुत्र थे।

२ सोयराबाई (शिर्केकी कन्या)—शिवाजीको विष पिलाकर मार डालनेका अपवाद लगाकर शम्भूजीने इनकी हत्या की थी (अक्टूबर १६८१ ई०)। इनके पुत्र थे राजाराम।

३ पुतलाबाई (मोहितेकी कन्या)—इन्होंने स्वामीके साथ जलकर चितामें प्राण विसर्जन किये।

४ साकोवारबाई (गायकवाड़की कन्या)—इनका विवाह सन् १६५६ ई० में हुआ था। सन् १६८९ ई० में मुगलोंके रायगढ़पर अधिकार करनेके बाद ये कैद हो गई थीं, और इन्हें कई वर्षतक औरंगजेबके शिविरमें कैद रहना पड़ा था।

५ काशीबाई—सन् १६७४ ई० के मार्चमें मृत्यु।

शिवाजीके दो पुत्र और तीन कन्याएँ थीं—

१ शम्भूजी—जन्म १४ मई १६५७ ई०। ये २८ जून १६८० ई० को राजा हुए। औरंगजेबने इन्हें ११ मार्च सन् १६८९ ई० को मरवा डाला।

२ राजाराम—जन्म २४ फरवरी १६७० ई०। ये ८ फरवरी १६८९ ई० को राजा हुए, और इनकी मृत्यु २ मार्च १७०० ई० को हुई।

३ सखुबाई—महादजी निम्बालकरकी स्त्री।

४ अम्बिकाबाई—हरजी महाडिककी स्त्री।

५ राजकुमारीबाई—गणोजीराज शिर्केकी स्त्री।

शिवाजीकी शकल-सूरत

३७ वर्षकी उमरमें (सन् १६६४ में) शिवाजीको देखकर सूरतके कुछ अँग्रेजोंने लिखा था—"वे मझोले कदके आदमी थे, परन्तु उनका शरीर खूब गठीला था। उनके चलने-फिरनेमें तेजी और फुर्ती थी। मुँहपर हमेशा मुसकराहट दिखाई देती थी। दोनों आँखें बड़ी तेज थीं और चारों ओर घूमती रहती थीं। उनका रंग साधारण दक्षिणियोंकी अपेक्षा कुछ गोरा था।"

सन् १६६६ ई० में जब शिवाजी औरंगजेबके दरबारमें आगरा गए थे तब उनको पाससे देखनेवाले आम्बेर राज्यके एक कर्मचारीने उनकी शकल-सूरतका वर्णन यों किया था,—"शिवाजीका शरीर दिखनेमें तो तुच्छ, छोटा-सा ही जान पड़ता है, परन्तु उसकी सूरत बहुत ही विलक्षण गोरे रंगकी है। बिन-

पूछे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक राजवंशीय व्यक्ति है। हिम्मत और मरदानगी तो उसकी रग-रगमें झलकती है। वह बहुत ही मरदाना, भारी हिम्मतवाला आदमी है। शिवाजीके डाढ़ी है।" शिवाजीको देखकर राजपूतोंने भी स्वीकार किया—"शिवाजी बहुत सयाना है। जो बात कहता है सो ठीक ही होती है; कोई क्या कहे, क्योंकि तब कोई बात कहनेकी जरूरत ही नहीं रह जाती है। सचमुच ही वह भला राजपूत है; जैसा सुना था वैसा ही उसे देखा। राजपूतपनेकी ऐसी बातें कहता है कि यदि याद रहें तो समय पड़ने-पर काम आवें।"

फ्रेंच यात्री तेव्हेनोंने भी उसी साल लिखा था, "इस राजाका कद छोटा है, रंग गोरा, आखें खूब तेज और चंचल।"

शिवाजीकी विश्वास करने योग्य तीन तसवीरें उपलब्ध हैं। इस बातका प्रमाण भी मिलता है कि ये तसवीरें उनके जीवन-कालमें ही खींची गई थीं।

(१) लंदनके ब्रिटिश म्यूजियममें सुरक्षित तसवीर। इसको एक डच सज्जनने औरंगजेबके जीवन-कालमें (सन् १७०७ ई० से पहले) भारतवर्षमें खरीदा था।

(२) हालैंडमें रक्षित प्रतिकृतिको सन् १७१२ ई० में जहाँदार शाहके पास लाहौर जाते समय डच दूतने खरीदा था। सन् १७२४ ई० में वैलेण्टाइनने इनका एक एंग्रेविंग अपनी पुस्तकमें प्रकाशित किया था। इसी तसवीरका एक सुन्दर (परन्तु कुछ परिवर्तित) स्टील एंग्रेविंग ओर्मने अपने 'हिस्टोरिकल फ्रैगमेंट्स' (Historical Fragments) नामक ग्रन्थमें सन् १७८२ में छापा था, और वही बादमें अनेकों स्थानोंमें छपकर भारतमें सर्वत्र प्रचलित हुआ है।

(३) शाहजादा मुअज्जमके चित्रकार मीर अहमदने शिवाजीकी घोड़ेपर सवार एक तसवीर खींचकर सन् १६८६ ई० में मनुचीको उपहारस्वरूप दी थी। वह तसवीर आजकल पेरिसके राष्ट्रीय पुस्तकालयमें सुरक्षित है। इसकी सुन्दर प्रतिलिपि अर्विन द्वारा सम्पादित 'Storia do Mogor' नामक ग्रन्थके तृतीय खंडमें है। इसके अलावा अन्य दो चित्र, जो अच्छे नहीं हैं, (सम्भवतः काठपर खुदे ब्लाकसे छापे गये हैं), सन् १८२१ और १८४५

में दो फ्रेंच ग्रन्थोंमें छपे थे, परन्तु चातुरीके अभावसे यह चित्रकार उन चित्रोंमें शिवाजीके मुखपर उनके चरित्रकी विशेषताको स्पष्ट रूपसे अंकित नहीं कर सका।

बम्बई-म्यूजियममें और पूनाके इतिहास-संशोधक मंडलके पास भी शिवाजी-की दो तसवीरें हैं। पहलेमें शिवाजी हाथमें तलवार लिये खड़े हैं। दूसरीमें घोड़ेपर सवार तलवार लिये सिंहके शिकारमें लगे हैं (मिनिएचर)। यद्यपि ये तसवीरें मुगल-समयकी हैं, फिर भी इनके खींचनेका समय ठीक-ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता।

सभी तसवीरोंमें शिवाजीका मुख एक ही प्रकारका है, परन्तु पहले दो चित्रोंमें ही उनका तेजपूर्ण व्यक्तित्व ठीक तरहसे अंकित हुआ है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

इतिहासमें शिवाजीका स्थान

शिवाजी और औरंगजेब

शिवाजीकी कीर्तिके प्रकाशसे भारतका गगनमण्डल उज्ज्वल हो उठा था। उत्तर और दक्षिणभारतका चक्रवर्ती सम्राट् शाहंशाह औरंगजेब अतुल ऐश्वर्य और विपुल सैन्य-बलका अधिकारी होते हुए भी बीजापुरके एक मामूली जागीर-दारके इस त्याज्य पुत्रको किसी भी प्रकार दबा नहीं सका। बीच-बीचमें जब कभी उसके खुले दरबारमें दाक्षिणात्यका समाचार पढ़कर सुनाया जाता था कि 'आज शिवाजीने अमुक जगह लूटी है,' 'कल अमुक फौजदारको हराया है,' तब औरंगजेब उसे सुनकर, निरुपाय हो, चुप रह जाता था। वह बड़ी घबराहटसे मन्त्रणागारमें जाकर अपने विश्वस्त मन्त्रियोंसे पूछता कि 'शिवाजीको दबानेके लिए अब किस सेनापतिको भेजा जाय; प्रायः सभी महारथी तो दक्षिणसे हार-कर लौट आये?' इसी बातपर एक रातको महाबत खाँने छेड़कर कहा था—'हुजूर, सेनापतिकी क्या जरूरत है? काजी साहबके एक फतवा भेज देनेसे ही शिवाजीका ध्वंस हो जायगा।' यह बात सबको मालूम थी कि धर्म-ध्वजी बाद-शाह काजी अब्दुल वहाबके कहनेके अनुसार ही उठते-बैठते थे।

फारसके राजा द्वितीय शाह अब्बासने औरंगजेबको धिक्कारते हुए सन् १६६७ ई० में एक पत्र लिखा था—"तुम अपनेको राजाओंका राजा यानी शाहंशाह—बादशाह—कहते हो, और शिवाजी जैसे एक जमींदारको दुरुस्त नहीं कर सकते! हम फौज लेकर भारत आते हैं, और तुमको राज-काज चलाना सिखायेंगे।"

शिवाजीकी याद औरंगजेबको जिन्दगी-भर काँटेकी तरह चुभती रही। मरनेके पहले बादशाहने अपने लड़केको जो आखिरी उपदेश दिया था, उसमें लिखा था—"देशकी सब खबरें रखना ही राज-काजका सबसे बड़ा अंग है। एक क्षणकी लापरवाही जिन्दगी-भर मनको तकलीफ देती रहती है। देखो,

लापरवाहीके ही कारण अभागा शिवाजी हमारे हाथसे निकल गया, और उसका नतीजा यह हुआ कि हमको मरते दमतक यह मेहनत और अशान्ति भोगनी पड़ी।"

अपनी आश्चर्यजनक सफलता और अतुल प्रसिद्धिसे मण्डित हो, शिवाजी उस युगमें समूचे भारतवर्षके हिन्दुओंकी दृष्टिमें एक नवीन आशापूर्ण नक्षत्रके समान देख पड़े। केवल वही एक ऐसा व्यक्ति था, जो हिन्दुओंकी जाति, उनके तिलक, उनकी चोटी और उनके जनेऊका रक्षक था। सब लोग उन्हींकी ओर आशासे टकटकी लगाये देखते थे, उन्हींके नामपर समग्र हिन्दू-जाति गर्वसे अपना सिर ऊँचा कर सकती थी। इसी प्रसंगमें कवि भूषणने कहा था—

"राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवानको तिलक राख्यौ,
स्मृति-पुरान राखे, वेद-बिधि सुनी मैं;
राखी रजपूती, रजधानी राखी राजनकी,
धरामें धरम राख्यौ गुन राख्यौ गुनी में।
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्ठनकी,
देस-देस कीरति बखानी तब सुनी मैं;
साहके सपूत सिवराज, समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबिकै दिवाल राखी दुनी मैं।"

शिवाजीकी राजनीति कहाँतक पुरानी थी?

शिवाजीकी राजनीति उनकी राज्य-व्यवस्थाकी तरह कुछ नई नहीं थी। पुराने जमानेसे ही हिन्दुओंकी यह सुनिश्चित राजनीति रही है कि राजागण दशहरा समाप्त होते ही अपनी सीमा लाँघकर, पड़ोसी राजाओंके देशपर चढ़ाई कर अपना राज बढ़ायें। क्षत्रिय राजाओंके लिए मनु आदि स्मृति-कारोंने यह बात स्थिर कर दी थी। अर्वाचीन कालमें उत्तरभारत और दक्षिणके मुसलमानोंने भी यह क्रम जारी रखा, परन्तु मुसलमानोंके लिए तो पड़ोसी राजाके ऊपर चढ़ाई करना उनके धर्मके अनुकूल ही है। कुरान शरीफके अनुसार मुसलमान राजा अपने पड़ोसके काफिर राजाको शान्तिसे नहीं रहने दे सकता है। ऐसे राजाको कुरानमें दारुलहर्ब (लड़ाईका पात्र) कहा गया है।

ऐसे राजाको मारना और उसके देशको छीनना मुसलमान राजाका धर्म है। पड़ोसी राजा जब मुसलमान हो, तो उसका राज्य दारुल-इसलाम होगा, तब उनमें मेल और बचावकी बात आ जाती है और उस हालतमें युद्ध नहीं करना चाहिए। यह उनके धर्मका नियम है।

मुसलमानी धर्ममें बताई हुई पर-राष्ट्रनीति और शिवाजीकी परराष्ट्रनीतिमें आश्चर्यजनक समानता है। इस नीतिके लिए दोनोंके इतिहासमें एक शब्द 'मुल्कगीरी' का प्रयोग किया गया है। भेद सिर्फ इतना ही है कि मुसलमानी धर्मशास्त्रके अनुसार एक मुसलमान राजा दूसरे मुसलमान राजाका प्रदेश न लूटे और न रक्तपात करे। यद्यपि सब मुसलमान राजा इस नियमके अनुसार नहीं चलते थे, परन्तु उनका शास्त्र ऐसा ही कहता है, यह बात निर्विवाद है। शिवाजीकी मुल्कगीरीमें ऐसा कोई भी नियम न था। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान—सबसे कठोरताके साथ समान भावसे धन वसूल किया जाता है। कट्टर मुसलमान काफिर राजाको जीतकर उसे मुसलमान बनाना अपना धर्म समझता था, और लड़ाई समाप्त होनेके बाद वह पराजित राजा मुसलमानी राज्यका एक अंग होकर शान्तिपूर्वक राज्य करता था, परन्तु शिवाजीका उद्देश्य इस प्रकार राज्य बढ़ानेका नहीं था। उनका ध्येय तो केवल लूट-पाट करना ही रहता था, अथवा 'सभासद' के शब्दोंमें—"मराठी फौज हर साल आठ महीनेतक पराये मुल्कोंमें लूट-पाट करके पेट भरे और कर वसूल करे, उगाहे।" सारांश यह कि शिवाजीकी राजनीति हूबहू मुसलमानोंकी राजनीतिसे मिलती थी। अन्तर सिर्फ इतना ही था कि शिवाजी अपने राजमें सब जातिकी प्रजाको समान भावसे देखते थे, सबके लिए एक-सा न्याय था और सबकी रक्षा एक ही प्रकारसे होती थी। इन बातोंमें उनकी राजनीति उदार थी, इस बातको हम पहले ही कह आये हैं।

मराठा-राज्यके पतनके कारण

शिवाजी जब ऐसे वीर, पराक्रमी और न्यायी थे, तब उनका राज्य स्थायी क्यों न हुआ? उनकी सृष्टि उनकी मृत्युके आठ ही वर्षके भीतर क्यों नष्ट होने लगी? मराठे एक राष्ट्र (नेशन) क्यों न बन सके? भारतके अन्य राजाओं और जातियोंकी भाँति वे भी विदेशियोंके विरुद्ध क्यों खड़े न रह सके? इतिहासकी छान-बीन करनेसे इन प्रश्नोंका निम्नलिखित उत्तर मिलता है—

पहला कारण—जाति-भेदका विष

जिस समय मराठे शिवाजीके नेतृत्वमें स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए खड़े हुए, उस समय वे विजातीयोंके अत्याचारसे पीड़ित, गरीब और परिश्रमी थे। वे सीधे-सादे ढंगपर अपना व्यवहार चलाते थे, उनके समाजमें एकता थी और उनमें जात-पाँतका भेद तथा झगड़ा न था; परन्तु शिवाजीके अनुग्रहसे राज्य मिलने तथा अन्य देशोंकी लूटके धनसे धनी होनेपर उनकी स्मृतिसे उस अत्याचारकी याद और उनके समाजसे उस सरलता तथा एकताका लोप हो गया। साहसके साथ-साथ घमण्ड और खुदगरजीकी भी प्रवृत्ति हुई। धीरे-धीरे समाजमें जाति-भेदका झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

बहुत दिनोंसे कम उपजाऊ, महाराष्ट्र देशके अनेकों ब्राह्मण शास्त्र-चर्चा और यजन-याजन छोड़कर, हिन्दू-मुसलमान राजाओंके यहाँ नौकरी करके धन-मानका उपभोग करते आते थे। मराठा जाति निरक्षर थी। वह अपनी जीविका तलवार अथवा हलसे चलाती थी, परन्तु कायस्थोंकी जाति सदासे ही 'लेखकों' की जाति थी। वे लोग लिखा-पढ़ीका काम करके सरकारी नौकरी पाने लगे, और उनका धन-मान बढ़ने लगा। इस बातसे ब्राह्मण लोग ईर्ष्यासे जलने लगे। उन लोगोंने कायस्थोंको शूद्र और अन्त्यज कहकर घोषणा कर दी। वे जनेऊ ग्रहण करनेके अपराधमें (प्रभुओं) कायस्थोंकी निन्दाका प्रचार करने लगे। उनके नेताओंको समाजसे बाहर भी घोषित कर दिया।

यहाँतक कि शिवाजीके अभिषेकके समय भी ब्राह्मणोंने एक स्वरसे मराठा-जातिके क्षत्रियत्वको अस्वीकार कर दिया और कहा कि शिवाजीको वैदिक क्रिया और मन्त्र-पाठ आदि करनेका कोई अधिकार नहीं है। उनके इस गर्व और कट्टरपनसे आजिज आकर शिवाजीने एक बार (सन् १६७४ में) कहा था—"ब्राह्मण-जातिका अपना पेशा शास्त्र-चर्चा और पूजा है। भूखे रहना और दरिद्रता झेलना ही उनका व्रत है। सरकारी नौकरी करना उनके लिए पाप है, इसलिए समस्त ब्राह्मण मन्त्रियों, हाकिमों, सेनापतियों और दूतोंको नौकरीसे छुड़ाकर शास्त्रविहित कामोंमें लगाना हिन्दू राजाका कर्तव्य है। हम भी वैसा ही करेंगे।" तब तो ब्राह्मणोंने रो-गाकर बड़ी मुश्किलसे उनसे क्षमा प्राप्त की।

इस प्रकार ब्राह्मण लोग अधिकार पाकर अब्राह्मणोंके ऊपर सामाजिक अत्याचार और अन्याय करने लगे। उधर ब्राह्मणोंमें भी आपसमें मेल नहीं था। उनमें भी श्रेणी-विभाग और कुलीनताको लेकर घोर दलबन्दी और झगड़ा शुरू हो गया। पेशवा लोग कोंकणनिवासी ('चितपावन' शाखाके) ब्राह्मण थे। जिस समय पेशवा देशके शासक थे, उस समय भी पूना-प्रान्तके ('देशस्थ' शाखाके) ब्राह्मण कोंकणस्थ ब्राह्मणोंको नीच और अशुद्ध ब्राह्मण कहकर घृणा करते थे। उनके साथ एक पंगतमे बैठकर भोजन नहीं करते थे। इसी प्रकार चितपावन ब्राह्मण 'कह्नाड़े' शाखाके ब्राह्मणोंसे खिचे रहते थे। पेशवा लोगोंने अपर श्रेणीके ब्राह्मणोंका गौरव नष्ट करनेमें अपनी राजशक्तिका उपयोग किया था। गोआ प्रदेशके निवासी गौड़ सारस्वत (शेणवी) शाखाओंके ब्राह्मण अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले और कार्यकुशल थे, परन्तु अन्य श्रेणीके ब्राह्मण प्रायः बंगालके बंगाली ब्राह्मणोंकी तरह उनकी उपेक्षा करते और उन्हें कष्ट देते थे। इस प्रकार एक जातिका दूसरी जातिके साथ, और एक ही जातिके भीतर भी एक शाखाका दूसरी शाखाके साथ झगड़ा चलता था। इसका फल यह हुआ कि समाज छिन्न-भिन्न हो गया, राष्ट्रीय एकता लोप हो गई और शिवाजीका किया-कराया सारा प्रयत्न धूलमें मिल गया।

मराठोंने राज्य खोया। उनका भारतव्यापी प्राधान्य लोप हो गया। उन्हें फिर विजातीयोंके पैरोंतले पड़ना पड़ा, तब भी उन्हें चैतन्य नहीं हुआ। उनमें जात-पाँतका झगड़ा अब भी जारी है। जाति-भेदका विष कितना भयंकर होता है!

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने ठीक कहा है—"शिवाजीने जिस समाजको मुगल-आक्रमणके विरुद्ध विजयी बनानेकी चेष्टा की थी, उस समाजकी जड़में आचार-विचारगत विभाग-विच्छेद थे। ऐसे विभाग-मूलक समाजको ही उन्होंने सारे भारतमें विजयी बनानेकी कोशिश की थी। इसीको कहते हैं बालूकी भीत—यही है असाध्य साधन।

"शिवाजीने ऐसी किसी भावनाको न तो आश्रय दिया और न उसका प्रचार ही किया, जिससे हिन्दू-समाजके मूलमें पड़े हुए ये छिद्र दुरुस्त हो सकते। अपना धर्म बाहरसे पीड़ित और अपमानित हो रहा है, इसी क्षोभसे प्रेरित

होकर उन्होंने सारे भारतवर्षको विजयी बनानेकी इच्छा की थी, जो स्वाभाविक होनेपर भी सफल होनेवाली न थी। क्योंकि जहाँ धर्म भीतरसेही पीड़ित हो रहा है, जहाँ उसके भीतर ही ऐसी बाधाएँ हैं, जो मनुष्यको केवल भिन्न-भिन्न कर अपमानित करती हैं, वहाँ उनकी ओर कुछ विचार ही न करके, बल्कि उस भेद-बुद्धिको ही खास धर्म-बुद्धि समझकर, उस शतधा विदीर्ण समाजका स्वराज्य इस विशाल भारतमें स्थापित करना किसी भी आदमीके लिए असम्भव था। क्योंकि ऐसा होना विधाताके विधानके विरुद्ध होता।"

दूसरा कारण—राष्ट्रीय संगठनकी चेष्टाका अभाव

मराठोंके प्राधान्यके समय राष्ट्र (नेशन) की शिक्षा और अर्थबल, एकता और संघबद्ध उद्यम वृद्धि करनेकी बातोंपर स्थिर होकर कोई विचार नहीं करता था। उसके लिए बड़ी कोशिश नहीं की जाती थी। सब कोई बिना विचारे लकीरके फकीर बने काम करते थे। जहाँ हिन्दू-संसार मानों आँख मूँदकर काल-स्रोतमें बहा चला जाता था, वहाँ उसके विपरीत यूरोपकी जातियाँ शताब्दियोंसे विचार करके, मेहनत करके और प्रचार करके अवि-श्रान्त रूपसे उन्नतिकी ओर आगे बढ़ रही थीं। इस प्रकारकी लगातार उन्नतिपर चढ़ती हुई संघबद्ध जातिके साथ भिड़ते ही विशाल मराठा-साम्राज्य चूर-चूर हो गया। यही है प्रकृतिकी कृति।

यूरोपके साथ भारतकी यह विभिन्नता आज भी है। भारत दिनपर दिन पीछे पड़ रहा है—रणमें, वाणिज्यमें, शिल्पमें। मिलकर कोशिश करनेमें यूरोपकी अपेक्षा दिनोंदिन अधिकारहीन और असमर्थ होता जा रहा है। मराठोंके इतिहाससे साफ यह मालूम होता है—

"दिन-दै-दिन बनि सब भाँति दीन,
भारतभुवि ह्वै रही पराधीन।"

यह हम लोगोंकी जातीय दुर्दशाका कारण नहीं है—यह तो केवल नैतिक अवनतिका दुष्परिणाम है।

तीसरा कारण—सुशासनकी स्थायी व्यवस्थाका अभाव

मराठा-शासनमें समय-समयपर कहीं-कहीं सुन्दर राज्य व्यवस्था और प्रजाकी सुख-समृद्धिका परिचय मिलता है, परन्तु इस प्रकारके उदाहरण व्यक्तिगत और

यदा-कदा ही मिलते थे। किसी खास राजा अथवा मन्त्रीकी योग्यतासे या यत्नसे ही यह सुफल देख पड़ता था; पर उसके आँख मूँदते ही पहलेका सब कुशासन और सारी अराजकता एकबारगी लौटकर सारे जीवन-कार्यको नष्ट कर देती थी। शिवाजीके बाद शम्भूजी, और माधवराव पेशवाके बाद रघुनाथराव इसके दृष्टान्त हैं। इसी कारण मराठोंके शासनमें चातुरी का अभाव, घूसका दौरदौरा और आकस्मिक आमूल परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। इसी अव्यवस्थाके कारण ही बुन्देलखंडकी ओर 'मराठी घिस-घिस' का मुहावरा प्रचलित हो गया है। इससे प्रजाकी सुख-सम्पतिका नाश हुआ, और समस्त जातिके नैतिक बलका भी लोप हो गया।

चौथा कारण—स्वदेशकी अपेक्षा स्वार्थके प्रति अधिक प्रेम

उस जमानेमें समाजकी हालत और लोगोंके मनकी प्रवृत्ति जिस प्रकारकी थी, उससे लोग जातिके हितोंकी अपेक्षा अपने यशको, और स्वदेशकी अपेक्षा अपने बाप-दादोंकी जायदाद (मराठी भाषामें 'वतन' को) कहीं बढ़कर समझते थे। देशमें राजाओं और राजवंशोंके जल्दी-जल्दी बदलने के कारण अनेक जगहोंमें जमीनका अधिकार बहुत अनिश्चित और गड़बड़-सा हो गया था। एक ही गाँवपर तीन-चार भूस्वामी अपने-अपने अधिकारका दावा करते थे—जैसे, देसाई, दलवी, सावन्त और इन सबपर देशका राजा। ये लोग आपसमें लड़कर, अथवा विदेशी आक्रमणकारियोंको अपने पक्षमें मिलाकर, अपना अधिकार जमानेकी कोशिश करते थे। यदि अपनी जातिका राजा अथवा देशका विचारालय इनके व्यक्तिगत स्वार्थोंके प्रतिकूल होता था तो ये लोग फौरन उनकी उपेक्षा कर देशके शत्रुओंको बुला लाते थे। बात यह थी कि 'वतन' ही मराठोंका प्राण था, और जन्मभूमि उनकी कुछ न थी। 'वतन' की रक्षा या वृद्धि करनेके लिए मराठे कोई भी पाप करनेसे न हिचकते थे। उस युगके हिन्दू अपनी जाति या श्रेणीसे बढ़कर किसी बड़ी राष्ट्रीय एकताके बन्धनकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। अपने वंश या जातिके स्वार्थसे देशका हित बड़ा और श्रेय है, इस बातको राजा-प्रजा, ऊँच-नीच कोई भी न समझता था, और न कोई ऐसा विचार ही करता था। अपने राज्यमें हो, अथवा पराये राज्यमें हो, सब लोग

इसी कोशिशमें थे कि समाजमें अपना व्यक्तिगत धन और बल, मान और मर्यादा बढ़े।

इतना बड़ा लोकसमूह अपने स्वार्थसे बढ़कर किसी बड़े उद्देश्यको, और अपनी इच्छासे बढ़कर किसी बड़ी संचालन-शक्तिको नहीं मानता था। अपने जीवनको शृंखलाबद्ध करनेको लोग दुःख, और नियम-पालनको गुलामी समझते थे। जब देशका प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थोंको दबाकर, एक सर्वव्यापी सत्ता और सबसे बड़े एक मालिकको माने, तभी जाकर कहीं जाति एकतामें बँधकर अजेय और शक्तिसम्पन्न तथा सभ्यतामें शीघ्रतासे उन्नति कर सकती है। इसी प्रकार जिस जातिकी सम्पूर्ण जनता एक ही अनुशासन और नियमसे (जिसे अँग्रेजीमें 'डिसिप्लिन' या 'रेन आफ् ला' कहते हैं) नहीं चलती, वह जाति कभी स्वाधीन नहीं हो सकती। अपनी-अपनी मनमानी करके, अनाचारी बन और अराजकता बढ़ानेसे आखिरमें लोग किसी-न-किसी बड़ी जातिकी गुलामी स्वीकार करनेको बाध्य होते हैं और यों अपनी पराधीनताकी जंजीर आप ही तैयार करते हैं। संसारका इतिहास युग-युगसे इसी सत्यका प्रचार करता है। अनेकों बड़े-बड़े मराठा नेता इसी प्रकार उच्छृंखल, स्वार्थी, लम्पट और जातीयताके कर्तव्य-ज्ञानसे रहित थे। इसी कारण शिवाजीके समस्त परिश्रमका फल, उनके न रहनेपर एकबारगी नष्ट हो गया। उन्होंने जिस महान् कार्यका सूत्रपात किया था, उसको स्थायी बनाना और एक सुसंगठित जातिको जन्म देना सम्भव न हो सका।

पाँचवाँ कारण—अर्थनीतिकी अवनति

मराठा-शासनका प्रधान दोष अर्थनीतिकी उपेक्षा थी। खेती और व्यापारकी उन्नति, प्रजा और दूकानदारोंको अत्याचारसे बचाना और घूसखोरी बन्द करना, सड़कों, घाटों और आमद-रफ्तके लिए रास्तोंको बनाना और उन्हें अच्छी हालतमें रखना, कचहरीमें झगड़ोंका चटपट फैसला करना, स्थायी रूपसे देशकी धन-वृद्धि और उसके द्वारा राजशक्तिकी उन्नति करना, इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयोंमेंसे किसी भी विषयपर राजा अथवा मन्त्रियोंकी दृष्टि न जाती थी। उन लोगोंका एकमात्र ध्यान था 'मुल्कगीरी' के ऊपर, अर्थात् दूसरोंके राज्यको लूटकर धन-दौलत लानेपर। उसीमें उन लोगोंकी सारी चिन्ता,

समूचा यत्न और तमाम लोक-बल होता था। इस कारण मराठे अन्य सब जातियोंके—हिन्दू, मुसलमान, राजपूत, जाट, कनाड़ी, बंगाली—और दक्षिणसे लेकर उत्तरतकके सारे भारतके राजा तथा प्रजाके पीड़क[1] और शत्रु समझे जाने लगे। उन्होंने संसारमें किसीको भी अपना मित्र बनाकर न रखा।

इस अन्धी और असत् राजनीतिका फल यह हुआ कि सभी लोग मराठोंके पतनके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करने लगे। उनकी लगातारकी लूट-पाटके कारण देशमें सब ओर धनागम बन्द हो गया, खेती और व्यापारका काम शीघ्र ही शिथिल पड़ने लगा, अनेकों उपजाऊ खेत जंगलमें परिणत हो गये, और फलते-फूलते शहर जलकर तथा लुटकर तहस-नहस हो गये। लोगोंने धन संचय करनेकी और बढ़ानेकी कोशिश छोड़ दी। अन्तमें दशा यहाँतक पहुँची कि मराठे पहले-की चौथका दसवाँ हिस्सा भी न पाते थे। सिर्फ राज्यको लूटके बलसे जो जाति बलवती होनेका यत्न करती है, उसका अर्थ-बल इसी प्रकारकी मरीचिकामात्र है।

छठा कारण—सत्यप्रियता तथा राष्ट्रीय बलका अभाव

यद्यपि मराठोंमें वीर और योद्धा बहुत थे, परन्तु उनके नेतागण राजनीतिक क्षेत्रमें चालाकी और भुलाओंपर ही ज्यादा भरोसा रखते थे। उन लोगोंको यह मालूम न था कि झूठी बात दो-एक बार चल सकती है—हमेशा नहीं चला करती। बात न रखनेसे, विश्वासघाती होने और सच्चा व्यवहार न करनेसे कोई भी राज्य कभी टिक नहीं सकता। मराठोंके सेनापति और मंत्री फायदेका मौका देखनेपर सन्धिभंग करते थे, अपने वादोंके विरुद्ध चलते थे, और इसमें वे लेशमात्र भी लज्जित न होते थे। कोई भी उनकी बातका जरा भी भरोसा या विश्वास नहीं कर सकता था।

राज्य बचानेके लिए लड़ाई और चालाकी (डिप्लोमेसी) दोनोंकी जरूरत होती है। लड़ाई भी समयका विचार कर और पहलेसे तैयारी करके करना उचित है, लेकिन मराठ-नीति तो हर साल किसी-न-किसी देशपर, चढ़ाईके लिए फौज

---

१. एक बंगाली कविने संस्कृतमें वर्गियोंको,'कृपामें कृपण, गर्भवती स्त्रियों और बच्चोंका पीड़क' कहकर वर्णन किया है (सन् १७४१ ई०)।

भेजनेकी थी। इस सालाना युद्धमें कुछ धन तो अवश्य मिलता था, परन्तु सेनाके नाश और शत्रुओंकी वृद्धिसे लाभके बदले हानि ही अधिक होती थी। इन सब अदूरदर्शितापूर्ण चढ़ाइयों, कुटिल परराष्ट्रनीति और षडयंत्रोंके अनुसरणके कारण मराठोंकी राजशक्ति धीरे-धीरे निर्बल होने लगी। दूसरी ओर उसी समय चालाक दृढ़ संकल्पवाले विदेशी बनिये स्थिर बुद्धिसे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। क्रमशः अपनी शक्ति और प्रभाव बढ़ाकर अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें वे भारतके सार्वभौम प्रभु बन बैठे, और मराठा जाति अँग्रेजोंके अधीन हो गई। यह प्रकृतिकी अपरिहार्य कृति थी।

शिवाजीका चरित्र

मराठोंके गौरवका अन्त चाहे जब हुआ हो, परन्तु उसके लिए शिवाजी जिम्मेवार नहीं। इस जातीय पतनने उनकी कीर्तिको मलिन नहीं किया बल्कि उलटा दृष्टान्त दिखाकर, उसे और भी अधिक धवल कर दिया है। शिवाजीका चरित्र अनेक सद्गुणोंसे भरा था। उनकी मातृ-भक्ति, सन्तान-प्रीति, इन्द्रिय-निग्रह, धर्मानुराग, साधु-सन्तोंके प्रति भक्ति, विलासवर्जन, श्रमशीलता और सब सम्प्रदायोंके ऊपर उदार भाव उस युगके अन्य किसी राजवंशमें ही नहीं, अनेक गृहस्थोंके घरोंमें भी अतुलनीय था। वे अपनी राज्यकी सारी शक्ति लगाकर स्त्रियोंकी सतीत्व-रक्षा करते, अपनी फौजकी उद्दंडताका दमन करके सब धर्मोंके उपासना-घरों और शास्त्रोंके प्रति सम्मान दिखलाते और साधु-सन्तोंका पालन-पोषण करते थे।

वे स्वयं निष्ठावान् भक्त हिन्दू थे, भजन और कीर्तन सुननेके लिए अधीर रहते थे, साधु-संन्यासियोंकी पद-सेवा करते थे और गो-ब्राह्मणके प्रतिपालक थे। युद्ध-यात्रामें कहीं 'कुरान' मिलनेसे उसे नष्ट या अपवित्र न करते, बल्कि बड़े यत्नसे रख देते और पीछे किसी मुसलमानको दान कर देते थे। मस्जिद और इसलामी मठ (खानका) पर वे कभी आक्रमण न करते थे। कट्टर मुसलमान इतिहासकार खाफीखाँने भी शिवाजीकी मृत्युका उल्लेख करते समय लिखा था—"काफिर जहन्नुममें गया।" परन्तु उसने भी शिवाजीके सच्चरित्र, पर-स्त्रीको माताके समान मानना, दया, दाक्षिण्य और सब धर्मोंको समान प्रतिष्ठासे देखना, आदि दुर्लभ गुणोंकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। शिवाजीका राज्य

था 'हिन्दवी स्वराज,' पर अनेक मुसलमान उनके अधीन नौकरी पाते थे, और ऊँचे पदोंपर प्रतिष्ठित होते थे। [दृष्टान्तके लिए अँग्रेजी भाषामें लिखे हुए हमारे ग्रन्थ शिवाजीके तृतीय संस्करणका पृष्ठ ४०२ देखिए।]

उनके राज्यमें सब जातियाँ और सब धर्म-सम्प्रदाय अपनी-अपनी उपासनाकी स्वाधीनता और संसारमें उन्नति करनेका समान सुयोग पाते थे। देशमें शान्ति और सुविचार, सुनीतिकी जय और प्रजाके धन-मानकी रक्षाके एकमात्र कारण वे ही थे। भारतवर्षके समान नाना वर्ण और धर्मके लोगोंसे भरे हुए देशमें शिवाजी द्वारा संचालित इस राजनीतिसे बढ़कर उदार और कल्याण करनेवाली किसी भी दूसरी नीतिकी कल्पना नहीं की जा सकती।

शिवाजीको प्रतिभा और मौलिकता

आदमीको देखते ही उसके चरित्र और ताकतको ठीक समझकर हरएकको उसकी योग्यताके अनुसार काममें लगाना प्रकृत राजाके गुण हैं; शिवाजीमें भी यह आश्चर्यजनक गुण था। उनके चरित्रकी आकर्षणशक्ति चुम्बककी तरह थी। देशके जो अच्छे, चालाक और बड़े लोग उनके यहाँ आ जुटते थे, उनके साथ भाईकी तरह व्यवहार कर, उनको सन्तुष्ट रखकर, वे उनसे आन्तरिक भक्ति और सोलहों आना विश्वास एवं सेवा पाते थे। इसीलिए वे हमेशा सन्धि-विग्रह, शासन और राजनीतिमें इतने सफल होते थे। फौजके साथ हमेशा हिल-मिलकर, उनके दुःखके साथी होकर, फ्रेंच फौजके नेपोलियनकी तरह, वे पूर्ण-रूपसे उनके बन्धु और उपास्य देवता हो गये थे।

जंगी बन्दोबस्तमें—शृंखला, दूरदर्शिता, सब बातोंके ऊपर सूक्ष्म दृष्टि डालना, अपने हाथोंमें अनेकों कामोंकी बागडोर रखनेकी शक्ति, मौलिक विचार और कार्यनैपुण्य—इन सब गुणोंकी उन्होंने पराकाष्ठा दिखा दी। देशकी यथार्थ हालत और उनकी फौजके जातीय स्वभावके लायक किस प्रणालीकी लड़ाई सबसे अधिक फल देनेवाली थी, यह सब बातें निरक्षर शिवाजी-ने केवल अपनी प्रतिभाके जोरसे ही मालूम की थीं, और उनका ही आश्रय लिया था।

शिवाजीकी प्रतिभा कैसी मौलिक थी, कितनी बड़ी थी, इसे समझनेके

लिए यह याद रखना चाहिए कि उन्होंने मध्ययुगके भारतमें एक अनहोनी बात कर दिखाई थी। उनके पहले कोई भी हिन्दू मध्याह्नके सूर्यकी तरह प्रचण्ड तेजवाले बलवान् मुगल-साम्राज्यके विरुद्ध खड़े होनेमें समर्थ नहीं हुआ था। सभी हारकर पिस गये, और लोप हो गये थे। यह देखकर भी एक साधारण जागीरदारका यह पुत्र नहीं डरा, वह विद्रोही बना, और अन्ततक जयलाभ ही करता गया। इसका कारण था शिवाजीके चरित्रमें साहस और स्थिर विचारोंका अपूर्व समावेश। किस जगह कितना आगे बढ़ना उचित है; कहाँपर रुकना चाहिए; किस समय कैसी नीतिका अवलम्बन करना चाहिए; इतने आदमी और इतने धनसे ठीक-ठीक कौन-कौन काम करना सम्भव है— ये सब बातें वे एक क्षणमें ही समझ जाते थे। यही सब बातें उनकी ऊँची राजनीतिक प्रतिभाकी परिचायक थीं। यही कार्यकुशलता और अनुभवपूर्ण बुद्धि उनके जीवनकी आश्चर्यजनक सफलताका मुख्य कारण थी।

शिवाजीका राज्य लोप हो गया। उनके वंशके लोग आज जमींदारमात्र हैं, परन्तु मराठा-जातिको नवजीवन प्रदान करनेके कारण उनकी कीर्ति अमर है। उनके जीवनव्यापी परिश्रमके कारण ही एक छितराई हुई पराधीन जाति दृढ़ हुई, उसने अपनी शक्तिको समझा और वह उन्नतिके शिखरपर पहुँची। इन सब कारणोंसे हम शिवाजीको हिन्दू जातिका अंतिम मौलिक संगठनकर्ता और राजनीतिक्षेत्रका श्रेष्ठ कर्मवीर कह सकते हैं। शासन-पद्धति, सैन्य-संगठन और कार्यकलाप, सब अपना ही उत्पन्न किया हुआ था। रणजीतसिंह अथवा महादजी सिन्धियाकी तरह उन्होंने फरासीसी सेनापतियों अथवा शासनकर्ताओंकी सहायता नहीं ली थी। उनकी राज्य-व्यवस्था बहुत दिनतक स्थायी रही और पेशवाओंके समयमें भी आदर्श गिनी जाती रही।

निरक्षर गँवार बालक, शिवाजीने कितना मामूली मसाला लेकर, चारों ओरके कैसे भिन्न-भिन्न प्रतापी शत्रुओंसे लड़कर अपनेको—साथ ही साथ उस मराठा-जातिको—स्वाधीनताके आसनपर बैठाया था, यह कहानी भारतके इतिहासमें अमर रहेगी। उस आदि युगके गुप्त और पाल साम्राज्यके बाद शिवाजीको छोड़कर और किसी दूसरे हिन्दूने इतना बड़ा पराक्रम नहीं दिखाया।

बिखरे हुए, अनेकों राज्योंमें बँटे हुए, मुसलमान शासकोंके अधीन और दूसरोंके नौकर मराठोंको बुलाकर शिवाजीने पहले अपने कामके द्वारा यह दिखा दिया कि वे स्वयं अपने मालिक होकर लड़ सकते हैं। उसके बाद स्वाधीन राज्यकी स्थापना कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वर्तमान समयके हिन्दू भी राष्ट्रके सब विभागोंके काम चला सकते हैं; राज-काजके बन्दोबस्त करनेमें, जल या स्थलयुद्ध करनेमें, साहित्य और शिल्पकी पुष्टि करनेमें, व्यापारी जहाज तैयार करके संचालन करनेमें और अपने धर्मकी रक्षा करनेमें वे समर्थ हैं और देशकी राष्ट्रीयताको पूर्णता प्रदान करनेकी शक्ति अब भी उनमें विद्यमान है।

शिवाजीके चरित्रके ऊपर विचार करनेसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि प्रयागके अक्षयवटकी तरह हिन्दू-जातिका प्राण अमर है। सैकड़ों वर्षतक बाधाओं और विपत्तियोंको झेलकर भी पुनः सिर ऊँचा करनेकी और नये शाखा-पल्लव फैलानेकी ताकत उसमें छिपी है। धर्मराज्य-स्थापन करनेसे, चरित्रको दृढ़ रखनेसे, नीति और नियमके ऊपर चलनेकी विधिको अन्तरात्मासे मान लेनेसे, जन्मभूमिको अपने स्वार्थसे बढ़कर समझनेसे, बातूनी होनेके बजाय चुपचाप कार्य करनेका लक्ष्य रखनेसे ही—जाति अमर और अजेय होती है।

परिशिष्ट

घटनावली और महत्त्वपूर्ण तारीखें

[इस ग्रन्थमें सब तारीखें पुराने ईसवी कैलेण्डरके अनुसार ही दी गई हैं। यह पुराना कैलेण्डर इंग्लैण्डमें सन् १७५२ ई० तक जारी रहा। शिवाजीके समय नये कैलेण्डरकी तारीखें प्रायः दस दिन आगे रहती थीं। फारसी, पुर्तगाली और डच ग्रन्थोंमें तारीखें नए कैलेण्डरके अनुसार ही दी गई हैं, उन्हें मैंने पुराने कैलेण्डरकी तारीखोंमें बदल दिया है। परन्तु हिजरी या हिन्दू संवतोंको ईसवी सन्‌की तारीखोंमें परिणत करनेके कई एक तरीके हैं, जिनसे कहीं-कहीं एकाध दिनका फर्क पड़ जाता है। मैंने तो स्वामी कन्नू पिल्लाई-कृत 'इण्डियन एफीमेरीज' में दी गई तालिकाओंका ही उपयोग किया है।]

शि०—शिवाजी, ल०—लगभग।

१६२६

१४ मई—मलिक अम्बरकी मृत्यु; फतह खाँ निजामशाहीका वजीर बना।

१० अप्रेल—शिवाजीका जन्म।

१२ सितम्बर—इब्राहीम आदिलशाहकी मृत्यु; मुहम्मद आदिलशाहका गद्दीपर बैठना।

२९ अक्टूबर—जहाँगीर बादशाहकी मृत्यु।

१६२८

४ फरवरी—शाहजहाँका तख्तपर बैठना।

ल० नवम्बर—शाहजीका मुगल खानदेशपर आक्रमण; वहाँसे उनका खदेड़ा जाना।

१६३०

ल० दिसम्बर—शाहजीका मुगलोंसे आ मिलना; जून १६३२ ई० में शाहजीने मुगलोंका साथ छोड़ दिया।

१६३३

१७ जून—मुगलोंका दौलताबाद लेना (दौलताबादमें हुसेन निजामशाहका पकड़ा जाना)।

अगस्त—शाहजीका नाममात्रके एक निजामशाहको गद्दी बिठाना।

१६३५

जनवरी-फरवरी—मुगल-सेनापति खानदौरानका शाहजीका पीछा करना। ३० अक्टूबर—बीजापुरमें वजीर खवास खाँकी हत्या।

१६३६

जुलाई-अक्टूबर—बीजापुरियोंकी मदद लेकर खान जमानका माहुलीतक शाहजीका पीछा कर उन्हें बुरी तरह हराना। नाममात्रके निजामशाहको छोड़कर शाहजीका बीजापुरकी नौकरी स्वीकार करना।

१६३७

२५ फरवरी—आदिलशाहका शाहजीको पूना जागीरमें देना।

१६३८

शिवाजी एवं उनकी माताका शिवनेरसे पूना लाया जाना।

१६४०

शिवाजी अपने पिताके पास बंगलौर गए, परन्तु वहाँसे पीछे पूना भेज दिए गए।

१६४६

मुहम्मद आदिलशाह सख्त बीमार हो गया एवं अपनी मृत्युतक (१६५६ ई०) असहाय बना रहा।

? शिवाजीका तोरना किला लेना।

१६४७

७ मार्च—दादाजी कोण्डदेवकी मृत्यु।

? शिवाजीका कोण्डाना (किला) लेना।

१६४८

१५ जुलाई—मुरादबख्शका मुगलोंके दक्षिणी सूबेका सूबेदार नियुक्त होना।

२५ जुलाई—आदिलशाही सेनापतिका जिजीके सामने शाहजीको कैद करना।

अक्टूबर—शिवाजीका पुरन्दर किला लेना।

१६४९

१६ मई—शाहजीका बीजापुरी कैदसे छुटकारा।

सितम्बर—मुरादबख्शके बजाय शायस्ता खाँका मुगलोंके दक्षिणी सूबेका सूबेदार नियुक्त होना। मुराद दिसम्बर महीनेमें दक्षिणसे लौटकर दिल्ली पहुँचा।

१६५६

१५ जनवरी—शिवाजीका जावली लेना।

६ अप्रैल—शिवाजीका रायगढ़ आकर उस किलेको लेना।

२८ अगस्त—बाजी चन्द्रराव मोरेका शिवाजीके पाससे भाग जाना।

२४ सितम्बर—शिवाजीने मोहितेको कैदकर सूपापर दखल किया।

४ नवम्बर—मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु; अली (द्वितीय) का गद्दीपर बैठना।

१६५७

२८ फरवरी—औरंगजेबका बीदरके पास पहुँचना। २ मार्चको घेरा डाला एवं २९ मार्चको बीदलका किला ले लिया।

२७ अप्रैल—औरंगजेबका कल्याणीके लिए रवाना होना; वहाँके अधिकारियोंने १ अगस्तको आत्मसमर्पण कर दिया।

ल० २७-२८ अप्रेल—अहमदनगर लूटनेका शि०का विफल प्रयत्न।

३० अप्रैल—शिवाजीका जुन्नर लूटना।

१४ मई—शम्भाजीका जन्म।

४ जून—अहमदनगरके पास नासिरी खाँका शिवाजीको हराना।

२४ अक्टूबर—शिवाजीका कल्याण-भिवण्डी लेना।

११ नवम्बर—वजीर खाँ मुहम्मदकी बीजापुरमें हत्या।

१६५८

८ जनवरी—शिवाजीका माहुली लेना ।

१४ जनवरी—शि०का रायगढ़ जाना ।

२५ जनवरी—शाही तख्तके लिए आपसी युद्धमें भाग लेनेके लिए औरंगाबादमे औरंगजेबका रवाना होना । २० मार्चको वह बुरहानपुरसे आगे बढ़ा ।

२१ जुलाई—औरंगजेबकी प्रथम तख्तनशीनी ।

३० अगस्त—शि०का दूत सोनजीको दिल्ली भेजना ।

१६५९

१० मार्च—शि०का राजगढ़से शिवपाटन जाना ।

ल० अप्रैल—अफजल खाँकी सहायता करनेके लिए आदिलशाहका मावलके देशमुखोंको हुक्म देना ।

११ जुलाई—शि० का जावली जाना ।

५ सितम्बर—शिवाजीकी पत्नी, सईबाईकी मृत्यु ।

११ नवम्बर—अफजल खाँका मारा जाना, एवं उसकी सेनाकी हार ।

२८ नवम्बर—शि० पनहालाके लिए रवाना हुए और २ दिसम्बरको वहाँ पहुँच गये ।

? शिवाजीका दण्डा शहर लेना ।

२८ दिसम्बर—रुस्तम खाँ और फजल खाँकी कोल्हापुरके पास शि०के हाथों हार ।

१६६०

ल० ५ जनवरी—शि०का डाभोलपर धावा ।

ल० १० जनवरी—शि०का राजापुर बन्दरपर पहला धावा ।

१४ जनवरी—शि०का गदगकी ओरके बीजापुरी प्रदेशपर धावा ।

२५ फरवरी—शायस्ता खाँ अहमदनगरसे रवाना हुआ ।

२ मार्च—शि० का पनहालामें प्रवेश एवं सिद्दी जौहरका पनहालाका घेरा डालना ।

९ मई—शायस्ता खाँका पूना पहुँचना।

६ जून—शि०का वसोता लेना।

२१ जून—शायस्ता खाँका चाकण पहुँचना, वहाँ घेरा डालकर १५ अगस्तको उसे लेना।

१३ जुलाई—शि० का पनहालासे निकल भागना।

ल० २६ अगस्त शायस्ता खाँका चाकणसे पूना लौटना।

२२ सितम्बर—जौहरका पनहाला देना।

२० नवम्बर—बीजापुरी किलेदार गालिबका रुपया लेकर परेण्डाके किलेको मुगलोंको सौंप देना।

१६६१

३ फरवरी—शि०का कारतलब खाँको उम्बरखिंडमें हराना।

फरवी—शि०का निजामपुर लूटना एवं डाभोल प्रभावलीको लेना।

ल० ३ मार्च—शि०का राजापुर दखल करना एवं वहाँ अँग्रेजी व्यापारियोंको कैद करना। ये व्यापारी ल० ५ फरवरी, १६६३, को छूटे।

२९ अप्रैल—शि० का शृंगारपुरमें प्रवेश।

ल० मई—मुगलोंका शि०से कल्याण ले लेना।

ल० ३ जून—शि०का महाड़में दो दिन ठहरना। शिवाजीने गर्मीका मौसिम वर्धनगढ़में ही बिताया।

२१ अगस्त—बुलाकी द्वारा देइरीपर डाले गए घेरेका कावजी कोधलकर द्वारा उठवाया जाना।

१६६२

जनवरी-मार्च (?)—शि०का मिर्यां डोंगरमें नामदार खाँको हराना; और पेनपर शि०का धावा।

१६६३

मार्च—मुगलोंने बहुत दूरतक नेताजीका पीछा किया।

३० मार्च—शि०का रायगढ़ (या राजगढ़, जो अधिक सम्भव है) में निवास।

५ अप्रैल—रातके समय पूनाके डेरेमें शि० का शायस्ता खाँपर धावा।
मई—शि० का कुडाल होता हुआ वेंगुर्ला (ल० १८ मईके) जाना और वहाँसे शीघ्र ही लौटना।
नवम्बर—जसवंतका कोण्डानाका घेरा डालना।

१६६४

६–१० जनवरी—शिवाजीका पहली बार सूरत बन्दर लूटना।
ल० १५ जनवरी—शायस्ता खाँका औरंगाबादसे बदली होकर रवाना होना एवं उसके बजाय शाहजादा मुअज्जमका सूबेदार बनाया जाना।
२३ जनवरी—शाहजीकी मृत्यु।
५ फरवरी—शि० का राजगढ़को लौट जाना।
ल० फरवरी—बेदनूरके राजा, भद्राप्पाकी हत्या।
२८ मई—जसवंतका कोण्डाना किलेका घेरा उठा लेना, और ३० मईको शिवाजीका कोण्डाना किलेमें जाना।
जुलाई—शि०का अहमदनगरपर धावा।
अक्टूबर—शि० का मुधोलके घोरपड़ोंको मरवाना।
ल० १५ अक्टूबर—बीजापुरी खवास खाँका शिवाजीको हराना, और जल्द ही शि०का अपनी शक्ति फिर बढ़ा लेना।
नवम्बर—शि०का सावन्तवाड़ी जीतना।
५ दिसम्बर—शि०का वेंगुर्ला जीतना।
ल० १० दिसम्बर—मराठोंका पहली बार हुबलीको लूटना।

१६६५

८ फरवरी—मालवणसे जहाजमें बैठकर शि०का जाना और बसरूर लूटना; लौटते समय गोकर्णमें स्नान करना। २२ फरवरीको कारवार पहुँचना और २३ फरवरीको भीमगढ़के लिए रवाना हो जाना।
३ मार्च—जयसिंहका पूना पहुँचना।
१४ मार्च—शि० भीमगढ़में (यह स्थान कारवारसे २५ मील उत्तरमें है)।
३० मार्च—दिलेर खाँका पुरन्दरके पास डेरा डालकर उस किलेका घेरा डालना।

१४ अप्रैल—रुद्रमालका मुगलोंके हाथ आना ।

११ जून—पुरन्दरके सामने शि० की जयसिंहसे भेंट; १५ जूनको शि० की दिलेर खाँसे भेंट ।

१२-१३ जून—पुरन्दरकी सन्धि ।

१४ जून—शि०का मुगल लश्करसे राजगढ़के लिए रवाना होना ।

१८ जून—शम्भूजीका जयसिंहके पास पहुँचना ।

जून-जुलाई—बीजापुरके मंत्री, बहलोल (प्रथम), की मृत्यु ।

२७ सितम्बर—शि०का पुरन्दरके पास जयसिंहके लश्करमें लौट आना, और ३० सितम्बरको उनका शाही फरमान पाना ।

अक्टूबर-नवम्बर—शि०का बीजापुरियोंके पाससे कुडाल और वेंगुर्लाके सिवाय सारे दक्षिण कोंकणको पुनः जीत लेना ।

२० नवम्बर—बीजापुरपर आक्रमणके लिए जयसिंह और शि०का रवाना होना ।

२५ दिसम्बर—बीजापुरियोंके साथ प्रथम युद्ध; २८ दिसम्बरको दूसरा युद्ध ।

५ जनवरी—बीजापुरके पाससे जयसिंहका पीछे हटना ।

१६६६

११ जनवरी—पनहालापर आक्रमणके लिए जयसिंहका शि०को भेजना ।

१६ जनवरी—पनहालापर शि०के आक्रमणका विफल होना ।

फरवरी-मार्च—फोण्डा किलेपर शि० के प्रथम आक्रमणका विफल होना ।

५ मार्च—शि० का आगराके लिए रवाना होना ।

२० मार्च—बीजापुरियोंको छोड़कर नेताजी पालकरका पुनः जयसिंहके साथ आ मिलना ।

१२ मई—शि०का आगरेके पास जा पहुँचना ।

१३ मई—शि० का औरंगजेबके दरबारमें हाजिर होना ।

१८ अगस्त—शि०का आगरासे भागना ।

२० अगस्त—रघुनाथ कोर्डेका आगरामें कैद होना ।

ल० १३ सितम्बर—शि० का लौटकर राजगढ़ पहुँचना ।
दिसम्बर—देवरुखमें मराठोंने पीर मियाँ और ताज खाँकी हत्या की ।

१६६७

२३ मार्च—जयसिंहका दक्षिणसे वापस बुलाया जना, और उसकी जगह मुअज्जमको सूबेदार बनाकर भेजना ।

अप्रैल—शिवाजीका पत्र लिखकर औरंगजेबकी अधीनता स्वीकार करना ।

३ अप्रेल—त्र्यम्बक और रघुनाथका आगरासे भाग निकलना ।

ल० १–८ मई—बीजापुरकी तरफसे बहलोल और व्यंकोजीका रांगनाके किलेका घेरा डालना; शिवाजीका उस घेरेको उठवाना ।

२८ अगस्त—जयसिंहकी बुरहानपुरमें मृत्यु ।

अगस्त—शि० का आदिलशाहसे सधि करना ।

२७ अक्टूबर—शम्भूजीका औरंगाबाद पहुँचना, २८ अक्टूबरको जसवंतसे और ४ नवम्बरको मुअज्जमसे मिलकर ५ नवम्बरको औरंगाबादसे वापस रवाना हो जाना ।

१६६८

९ मार्च—मुअज्जमका शि० को लिखना कि बादशाह औरंगजेबने शि० को राजाकी उपाधि प्रदान की है ।

५ अगस्त—औरंगाबादमें शाही सेनाके साथ रहनेको प्रतापरावका मराठी सेना लेकर जाना ।

अक्तूबर—गोआ (Goa) पर अचानक धावा करनेके शिवाजीके इरादेका जाहिर और विफल हो जाना ।

ल० २० अक्टूबर—चोलके नजदीक अष्टमी नगरमें शिवाजीका निवास ।

नवम्बर—रत्नागिरी प्रदेशके किलोंकी देख-भाल कर दिसम्बरके प्रारम्भ-में शिवाजीका रायगढ़ लौट आना ।

१६६९

ल० १ मार्च—शिवाजीका शान्तिपूर्वक रायगढ़में निवास ।

अप्रैल—सिद्दियोंका शिवाजीके कुल किलोंपर घेरा डालना ।

९ अप्रैल—सारे मुगल साम्राज्यमें मन्दिर तोड़नेके लिए औरंगजेबका एक आम हुक्म जारी करना । बनारसका विश्वेश्वरका मंदिर अगस्त १६६९ ई० में तोड़ा गया; मथुरामें केशवरायका मन्दिर १६७० ई० में तोड़ा गया ।

मई-अक्टूबर—जंजीराके सिद्दियोंपर शिवाजी पूरे बलके साथ आक्रमण करते रहे ।

अक्टूबर—लूदी खाँका कल्याणकी रक्षा करना ।

ल० १ नवम्बर—शिवाजीका पुर्तगाली जहाजोंको जीतना, एवं पुर्तगालियोंका शिवाजीसे बदला लेना ।

१६७०

ल० १ जनवरी—शिवाजीका मुगलोंके साथ युद्ध छेड़ना ।

प्रतापरावका औरंगाबादसे देशको लौटना ।

४ फरवरी—तानाजीका कोंडाना (सिंहगढ़) जीतना व मृत्यु ।

२४ फरवरी—राजारामका जन्म । शिवाजीका पुनः पुरन्दर जीतना—८ मार्च; कल्याण जीतना—ल० १५ मार्च; लोहगढ़ जीतना—१३ मई; माहुली जीतना—१६ जून; करनाला जीतना—२२ जून; रोहिड़ा जीतना—२४ जून ।

अगस्त—शिवाजीका मुगल प्रदेशपर आक्रमण; शिवनेरपर आक्रमणका विफल होना; जंजीरापर पूरे बलके साथ आक्रमण ।

३-५ अक्टूबर—शिवाजीका दूसरी बार सूरतको लूटना ।

१७ अक्टूबर—डिण्डोरीका युद्ध ।

ल० २५ अक्टूबर—मोरोपंतका त्र्यम्बक किला लेना ।

ल० २४ नवम्बर—शिवाजीका सेना लेकर बम्बईके उत्तरमें जाना एवं २६ नवम्बरको पीछे लौट पड़ना ।

दिसम्बर—शिवाजीका अहिवन्त आदि किलोंको लेना, खानदेश एवं बरार और कारंजाको लूटना।

१६७१

ल० ५ जनवरी—शि० का साल्हेर लेना।

ल० १५ फरवरी—सिद्दी कासिमका दण्डा वापिस ले लेना।

शुरू फरवरी—महाबत और दिलेर खाँके अहिवन्तका घेरा डाला।

मई—महाबतका अहिवन्त आदि किलोंको छीन लेना।

जून—बहादुर और दिलेरका साल्हेरका घेरा डालना। अक्टूबरमें उन्होंने घेरा उठाया।

सितम्बर—शि० के दूतका बम्बई जाना।

अक्टूबर—शि० का रायगढ़में ठहरना।

दिसम्बर—दिलेर खाँका पूना लूटना व कत्ले-आम करना।

१६७२

ल० १० जनवरी—दिलेर खाँका सामना करनेके लिए महाड़में शि० का सेना इकट्ठी करना।

ल० १–७ फरवरी—इखलास खाँ, मुहकमसिंह आदि मुगल सेना-पतियोंको हराकर मोरोपंतका साल्हेरके तले (मराठीमें 'माची') का घेरा उठाना, और बादमें मुल्हेर लेना।

ल० १५ फरवरी—शि० रायगढ़में।

ल० १५ मार्च ८ मई—लेफ्टिनेण्ट उस्टिकका दूत बनकर शि० के पास रायगढ़ जाना, और उसका मनोरथ विफल होना।

२१ अप्रैल—अब्दुल्ला कुतुबशाहकी मृत्यु; अबुलहसनका गद्दीपर बैठना।

जून—मुअज्जमका दक्षिणसे लौट जाना। अगस्त १६७७ तक बहादुर खाँ ही सूबेदारीका काम करता रहा।

५ जून—मोरोपंतका जौहर शहर और रामनगर (ल० १९ जूनके) लेना।

जुलाई—मोरोपन्तकी नासिक प्रदेशपर चढ़ाई।

२४ नवम्बर—अली (द्वितीय) की मृत्यु; सिकन्दर आदिलशाहका गद्दीपर बैठना और खवास खाँका (तीन वर्षके लिए) वजीर बनना।

नवम्बर-दिसम्बर—बरार और तेलिंगानेपर मराठोंके आक्रमणोंको मुगलोंका विफल बना देना।

२९ दिसम्बर—बीजापुरके साथ शि० की संधिका अन्त, और शि० की बीजापुरपर चढ़ाई।

१६७३

६ मार्च—शि० द्वारा भेजे गए अनाजीका पनहाला किला ले लेना।

९ मार्च—शि० का रायगढ़से रवाना होकर ल० १६ मार्चको पनहाला पहुँचना।

१ अप्रैल—शि० का पार्ली किला ले लेना।

ल० १५ अप्रैल—उमराणीका युद्ध।

शुरू मई—प्रतापरावका दूसरी बार हुबलीको लूटना। बहलोलका मराठे आक्रमणकारियोंको कनाड़ा-बालाघाटसे बाहर करना, और फिर कोल्हापुरमें अपना अड्डा जमाकर जूनसे अगस्ततक मराठोंको खूब दबाना।

२ जून—तीर्थयात्रा करके शि० का रायगढ़ लौट आना।

२७ जुलाई—शि० का सतारा ले लेना।

१० अक्टूबर—(दशहरा-विजयादशमी) शि० का स्वयं कनाड़ापर चढ़ाईके लिए रवाना होना; १३ अक्टूबर (शिवपुर यादीके अनुसार ७ अक्टूबर) को पाण्डवगढ़ लेना और बंकापुर लूटना।

ल० १५ अक्टूबरसे १२ दिसम्बर—शि० कनाड़ापर चढ़ाईमें लगे रहे।

नवम्बर—युद्धमें शर्जा खाँका विठोजी शिंदेको मारना।

४–८ दिसम्बर—शि० काडरामें, आदिलशाही सेनाके हाथों उनकी सेनाकी दो बार हार।

१६ दिसम्बर—शि० का कनाड़ासे लौटना।

१६७४

ल० २० जनवरी—कोंकणपर चढ़ाई करनेका दिलेर खाँका विफल प्रयत्न।

२४ फरवरी—नेसरीमें प्रतापरावका मारा जाना ।

ल० १ मार्च—शि० की पत्नी काशीबाईकी मृत्यु ।

२३ मार्च—आनन्दरावका साँपगाँवके बाजारको लूटना :और बादमें खिजिर खाँसे युद्ध ।

मार्च —दौलत खाँका मुचकुण्डी खाड़ीमें सिद्दियोंके जहाजी बेड़ेको हराना ।

३ अप्रैल—नारायण शेणवीकी रायगढ़में शिवाजीसे भेंट ।

८ अप्रैल—शिवाजीका चिपलूणमे अपनी सेनाका निरीक्षण करना; २२ अप्रैलको कारवारके पास पहुँचना; और ४ अप्रैलको केलंजा लेना ।

७ अप्रैल—खैबरघाटीके विद्रोहको दबानेके लिए हसन अब्दल जानेको औरंगजेबका दिल्लीसे रवाना होना । २७ मार्च १६७६ को वापस दिल्ली लौट आना ।

१२ मई—चिपलूणकी यात्रा कर शिवाजीका रायगढ़ लौटना ।

१६ मई—शि० का तीर्थयात्राके लिए प्रतापगढ़ जाना और वहाँसे लौटकर २१ मईको रायगढ़ पहुँचना ।

२८ मई—शिवाजीका जनेऊ पहनना: २९ मईको वैदिक रीतिसे शि० का विवाह हुआ ।

६ जून – शिवाजीका राज्याभिषेक; राज्याभिषेक शकका प्रारम्भ ।

८ जून—शिवाजीका पुनः विवाह; इस बार कोई भी वैदिक विधि-न हुई ।

१८ जून—जीजाबाईकी मृत्यु ।

ल० १५ जुलाई—शिवाजीका पेडगाँवमें बहादुर खाँके लश्करको लूटना ।

ल० २६ अगस्त—अनाजीका कुडाल जा पहुँचना; एवं मुहम्मद खाँका अनाजीके इरादोंको विफल करना ।

२४ सितम्बर—शिवाजीका द्वितीय राज्याभिषेक ।

नवम्बर-१५ दिसम्बर—बगलाना और खानदेशपर शिवाजीका आक्रमण ।

१६७५

आखिर जनवरी—कोल्हापुर प्रदेशपर दत्ताजीका आक्रमण ।

४ फरवरी—शम्भूजीको जनेऊ पहिनाना ।

ल० १५ फरवरी—मुगलोंका कल्याण लूटना।

६ मार्च—शिवाजीका आक्रमणके लिए रवाना होना; कोल्हापुर लेना, २२ मार्चको राजापुर पहुँचकर वहाँ चार दिन ठहरना; अंग्रेज व्यापारियोंकी शि० से भेंट; बादमें शि० का कुडालकी ओर बढ़ना।

८ अप्रैल—शिवाजीका फोण्डा किलेका घेरा डालना, और ६ मईको उसे ले लेना। शि० के सेनापतिका २६ अप्रैलको कारवार शहर जलाना।

मई—शिवाजीका शिवेश्वर, अंकोला, कारवार किला आदि ले लेना।

मार्च-मई—सन्धिके बाबत झूठे प्रस्तावों द्वारा शिवाजीका बहादुर खाँको बेवकूफ बनाना।

१२ जून—रायगढ़ लौटते समय राजापुरके पाससे शिवाजीका गुजरना।

जून-अगस्त—सुण्डा प्रदेशपर मरहठोंकी चढ़ाई।

जुलाई-दिसम्बर—जंजीरापर बड़ी चढ़ाई एवं उसका विफल होना।

७ सितम्बर—शिवाजी रायगढ़में, आस्टेनका अँग्रेज दूत बनकर वहाँ जाना।

नवम्बर—बहादुर खाँकी उत्तरी कोंकणपर चढ़ाई।

११ नवम्बर—बहलोलका खवास खाँको पकड़कर कैद करना और (आगामी दो वर्षोंके लिए) बीजापुरका वजीर बनना।

१६७६

१८ जनवरी—बहलोलका खवास खाँकी हत्या करना। बीजापुरमें गृह-युद्ध।

जनवरी-मार्च—शिवाजीका सख्त बीमार पढ़ना; उनके पूरी तरह चंगे हो जानेका उल्लेख अप्रैलमें लिखे सूरतके पत्रमें है।

मई—मोरोपन्तका रामनगर ले लेना; मई महीनेके अन्तमें रायगढ़ वापस लौट आना।

३१ मई—बहलोल पर आक्रमण करनेके लिए हलसंगीके पास बहादुर खाँका भीमाको पार करना।

१ जून—हलसंगीमें बहलोलका बहादुर खाँको हराना; इस्लाम खाँका

मारा जाना (मासीर-इ-आलमगीरीके अनुसार १३ जूनको ये घटनाएँ घटीं।)

१९ जून—प्रायश्चित्त करवाकर नेताजी पालकरको पुनः हिन्दू बनाना।

जून दिसम्बर—जंजीरापर पुनः आक्रमण।

शुरू अक्टूबर—नारायण शेणवीका रायगढ़में होना।

१ नवम्बर—शम्भूजीका शृंगारपुर जाना।

दिसम्बर—सिद्दी सम्बालका जैतापुर जलाना।

जनवरी—येलबुर्गाके पास हम्बीररावका हुसेन खाँ मियानाको हराना।

ल० ५ फरवरी—शि० का हैदराबाद पहुँचना; वहाँ एक मासतक ठहरकर मार्चमें कर्नाटक जानेके लिए वहाँसे रवाना होना।

ल० २४ मार्च-१ अप्रैल—शिवाजी श्रीशैलमें।

४ मई—तिरुपतिमें पूजाके लिए एक ब्राह्मणको शिवाजीने दान-पत्र दिया।

ल० ५ मई—मद्रासके पास पेड्डापोलम नामक स्थानपर शि०का पहुँचना; उनके घुड़सवारोंका ९ मईको कांजीवरम होते हुए जिंजी जाना।

ल० १३ मई—रुपया पाकर जिंजीके किलेदारका शिवाजीको किला दे देना; ल० १५ मईके शिवाजीका जिंजी पहुँचना।

ल० २३ मई—शिवाजीका वेलूर पहुँचकर वहाँका घेरा डालना।

२६ जून—शिवाजीका तिरुवंडी पहुँचना, शेर खाँ लोदीको हराना; शेर खाँका भागकर २७ जूनको बोनगिरपटनको जाना और शिवाजी-का उस किलेका भी घेरा डालना।

५ जुलाई—शेर खाँका सन्धिकर शिवाजीको अपने प्रदेश दे देना।

ल० १२ जुलाई—कोलेरुण नदी किनारे तिरुमलवाड़ी स्थानपर शिवाजीका पहुँचना।

ल० २३ जुलाई—व्यंकोजीका शिवाजीके लश्करसे भागना।

ल० २७ जुलाई—शिवाजीका तिरुमलवाड़ीसे लौटकर ३१ जुलाईको तुंदुमगुर्ती, १–३ अगस्तको वृद्धाचलम, २२ सितम्बरको वणिकम्-

वाड़ी और ३ अक्टूबरको मद्रासते दो मंजिलकी दूरीतक जा पहुँचना।

ल० २ सितम्बर—दमनके पुर्तगालियों और मरहटोंकी मुठभेड़।

अक्टूबर—अर्नी किलाका शिवाजीके हाथमें आना।

ल० ५ नवम्बर—कोंकणको लौटते समय शिवाजीका मैसूरके पठारपर चढ़ना।

१६ नवम्बर—अहिरीके पास व्यंकोजीका संताजीपर आक्रमण।

नवम्बर—दत्ताजीका तीसरी बार हुबलीको लूटना।

दिसम्बर—शिवाजीके दूत, पीताम्बर शेणवीका गोआ पहुँचना।

२३ दिसम्बर—लम्बी बीमारीके बाद बहलोल खाँकी मृत्यु।

७ जुलाई—बहादुर खाँका कुलबर्गा लेना, और २ अगस्तको (मासीर-इ-आलमगीरीके अनुसार १४ मईको) नलदुर्ग लेना।

अगस्त—बहादुरका दक्षिणसे वापस बुलाया जाना; सूबेदारीका काम दिलेर खाँको सौंपा जाना।

सितम्बर—दिलेरकी गोलकुण्डापर चढ़ाई; मालखेड़में हराया जाकर नलदुर्गतक खदेड़ा जाना।

नवम्बर—बीजापुरकी ओरसे मसूदका दिलेरके साथ लज्जाजनक सन्धि करना।

१६७८

जनवरी—मोरोपन्त त्र्यम्बकका नासिक आदि लूटना।

ल० १६ जनवरी—शि० लक्ष्मीश्वरमें।

२६ जनवरी-२३ फरवरी—शिवाजीका बेलवाड़ीका घेरा डालना।

२१ फरवरी—सिद्दी मसूदका बीजापुरका वजीर बनना।

ल० ४ अप्रैल—शिवाजीका पनहाला पहुंचना।

ल० २५ अप्रैल—मराठोंका मुंगी-पट्टण लूटना।

मई (?)—शिवनेर जीतनेको शिवाजीके दूसरे प्रयत्नका विफल होना।

मई—शिवाजीका रायगढ़ लौटना।

२१ जुलाई—वेलूरका शिवाजीके अधीन होना।

ल० १ सितम्बर—पीताम्बर शेणवीकी कुडालमें मृत्यु।

१८ सितम्बर—मुअज्जम (बहादुरशाह) की दक्षिणकी सूबेदारीपर पुनः नियुक्ति ।

अक्टूबर—दौलत खाँका जंजीरापर गोले बरसाना ।

दिसम्बर—रघुनाथ शेणवी कोठरीका गोआसे दूत बनाकर शिवाजीके पास भेजा जाना ।

१३ दिसम्बर—शम्भूजीका भागकर दिलेर खाँसे जा मिलना ।

१६७९

२५ फरवरी—शाह आलमका औरंगाबाद पहुँचना ।

३ मार्च—मोरोपन्तका कोपल किला लेना ।

२ अप्रैल—दिलेर खाँका भूपालगढ़ लेना ।

२ अप्रैल—औरंगज़ेबका हिन्दुओंपर पुनः जजिया कर लगाना ।

९ अप्रैल—आनन्दरावका बालापुर लेना ।

१८ अगस्त—बीजापुरपर आक्रमण करनेके लिए दिलेर खाँका भीमा पारकर १६ सितम्बरतक धूलखेड़में मुकाम करना ।

सितम्बर—मुगलोंका मगलबीड़ा लेना ।

ल० १० सितम्बर—शि०का खाण्डेरी टापूको लेकर वहाँ किला बनाना ।

१९ सितम्बर—अँग्रेजों और शि०की नौसेनाओंके बीच पहली लड़ाई; दूसरी लड़ाई १८ अक्टूबरको हुई ।

७ अक्टूबर—दिलेरका बीजापुर किलेके पास पहुँचना; १४ नवम्बरको वहाँसे वापस रवाना होना ।

३० अक्टूबर—आदिलशाहकी मदद करनेके लिए शि०का सेलगुर आना ।

४ नवम्बर—मुगल-प्रदेशपर आक्रमण करनेके लिए शि० का सेलगुरसे रवाना होना ।

ल० १५–१८ नवम्बर—शि०का जालना लूटना, रणमस्त खाँके साथ तीन दिनतक युद्ध ।

ल० २१ नवम्बर—शि०का पट्टा पहुँचना; और वहाँ पन्द्रह दिनतक मुकाम करना ।

२० नवम्बर—दिलेरका अथनी लूटना; २१ नवम्बरको शम्भूजीका उसके लश्करसे निकल भागना।

३० नवम्बर—शम्भूजीका बीजापुरसे भागना, और ल० ४ दिसम्बरके पनहाला पहुँचना।

ल० ४–२५ दिसम्बर—शि०का रायगढ़में निवास (?)

१६८०

ल० १ जनवरी—शि०का पनहाला पहुँचना।

१३ जनवरी—पनहालामें शि०की शम्भूजीसे भेंट।

२६ जनवरी—उंदेरी टापूपर दौलत खाँके आक्रमणका विफल होना।

फरवरी (?)—शि०का पनहालासे रायगढ़को लौटना।

७ मार्च—राजारामको जनेऊ पहनाना।

१५ मार्च—राजारामका विवाह।

२३ मार्च—शि०की आखिरी बीमारीका आरंभ।

४ अप्रैल—शि०की मृत्यु।

3916

परिशिष्ट

२

ऐतिहासिक सामग्रीका निर्देश

सन् १९०५ ई० में मैंने शिवाजी सम्बन्धी अप्रकाशित ऐतिहासिक सामग्रीकी खोज कर उसे छापना शुरू किया था। वह कोशिश और खोज आज भी जारी है। उसीका फल है कि शिवाजीकी जीवनी एवं उनके चरित्रसम्बन्धी हमारे ज्ञानने आज नया एवं पूरी तरह विशुद्ध स्वरूप धारण कर लिया है। अब यह पूरी तरह प्रमाणित हो चुका है कि सन् १८२६ ई० में प्रकाशित ग्राण्ट डफ-कृत 'मराठा जातिके इतिहास' में दिया गया शिव-चरित्र दन्तकथाओंके आधारपर लिखा हुआ और सर्वथा अप्रामाणिक है।

मराठी भाषामें शिवाजीके समयकी कोई भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्य नहीं है; न तो हमें मराठी भाषामें लिखा हुआ समसामयिक कोई इतिहास ही मिलता है और न कोई सरकारी कागजात, राजनीतिक पत्र या युद्ध-विषयक विवरणका ही पता लगता है। इन पिछले ४०—५० बरसोंमें हजारों मराठी खत या कागजात छपे हैं, परन्तु वे सब कोरे खानगी दान-पत्र, सनदें या किसी खास घरानेके कागजात ही हैं, उनमें ऐतिहासिक महत्त्वका कोई भी राजकीय कागज नहीं है।

शिवराज-युगकी कुछ घटनाओंकी कमोबेश सच्ची जानकारी प्राप्त करके और तब प्रचलित दन्तकथाओंको सुनकर मराठी भाषामें शिवाजीकी दो जीवनियाँ तैयार की गई थीं—

(१) ९१ कलमी बखर—मलकरे रचित (वाकसकर द्वारा सम्पादित) सन् १६८५ ई० के लगभग।

(२) सभासद बखर (साने द्वारा सम्पादित) सन् १६९७ ई० में यह जीवनी बनकर तैयार हो गई थी।

इनके सिवाय मराठी भाषामें तीसरा आधार-ग्रन्थ है 'जेधे वंशकी शकावली'। परन्तु इसमें सिर्फ तारीखें और सन्-संवत् दिये गये हैं, जिनमेंसे बहुत-से गलत भी साबित हुए हैं। तथापि यह शकावली इतिहासकारके लिए काफी उपयोगी है।

इतने वर्षोंकी खोजके बाद मैंने पाया है कि शिवाजी-सम्बन्धी सबसे अनमोल और सच्चा-सच्चा समकालीन वृत्तान्त एवं उनकी सही तारीखें तथा उनकी विस्तृत
९१ कहानी हमें फारसी तथा अँग्रेजी भाषामें प्राप्य सामग्रीमें मिलती है। ऐतिहासिक महत्त्वके लम्बे-लम्बे खत और हाथका लिखा हुआ शाही दरबारकी कार्यवाहीका दैनिक विवरण (जो अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला कहा जाता था) हमें फारसी भाषामें बहुत-सा मिलता है। उधर सूरत, राजापुर, वेंगुर्ला, कारवार और पश्चिमतटके बंदरोंमें स्थित अँग्रेजोंकी कोठियोंके बनियोंके लिखे हुए पत्र, डायरी और सूचियाँ आज भी लंदनके इंडिया आफिसमें सुरक्षित हैं।

साथ ही जहाँ-जहाँ मराठोंका गोआके पुर्तगाली लोगोंसे कोई सम्पर्क आया, या उनके बीच कोई झगड़ा उठ खड़ा हुआ, वहाँ-वहाँका सब ठीक-ठीक विवरण हमें पुर्तगाली भाषामें लिखा मिलता है। पुर्तगाली भाषामें प्राप्त इस सारी सामग्रीको ग्राण्ट डफने एक नजर भी न देखा था। केवेलियर पांडुरंग पिस्सुर-लेंकर नामक भारतीय विद्वान्ने इन सब कागजोंको खोजकर निकाला है और 'Portuguesas e Maratas' नामक ग्रंथमें उन्हें प्रकाशित किया है।

शिवाजीकी 'दक्षिण-दिग्विजय' की सच्ची हकीकत और तत्सम्बन्धी ठीक तारीखें पाण्डिचरीके तत्कालीन गर्वनर मार्टिनं साहिबकी डायरीमें हमें मिलती हैं। इसके सिवाय एक-दो और ग्रंथ भी हमें फ्रेंच भाषामें लिखे मिलते हैं जिनमें मराठोंके इतिहासपर प्रकाश पड़ता है।

राजस्थानी भाषामें उन्हीं दिनों लिखी गई कई एक चिट्ठियोंका जयपुर-दरबारके दफ्तरखानेमें गत साल पता लगा था। शिवाजीके इतिहासके लिए ये सब अनमोल हैं। शिवाजी सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्रीकी खोजमें किस प्रकार सौभाग्य हमेशा साथ देता रहा, और कैसे दूर-दूर प्रदेशोंमें बिखरी हुई इस अज्ञात सामग्रीको मैंने ढूँढ़ निकाला, इसका पूरा-पूरा हाल और इधर पिछले दिनोंमें प्राप्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्रीका अँग्रेजी अनुवाद मैंने अपने नवीन

ग्रन्थ House of Shivaji : Documents and Studies in Maratha History' में प्रकाशित किया है।

हिन्दीमें हमें 'भूषण-ग्रंथावली' मिलती है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे वह किसी भी कामकी नहीं। इतिहासकरोंने खोजके बाद यह निश्चित कर दिया है कि शिवाजीके मृत्युके कोई दो वर्ष बाद भूषणका जन्म हुआ था!

संस्कृत भाषामें भी समकालीन लिखे हुए कमोबेश ऐतिहासिक महत्त्वके तीन ऐतिहासिक ग्रन्थ हमें मिलते हैं:—

(१) 'शिव-भारत'—शिवाजीके कवीन्द्र परमानन्दने इस ग्रन्थकी रचना की थी। यह काव्य अपूर्ण ही प्राप्य है। सर्ग ३२ श्लोक ९ पर ही यह एकाएक समाप्त हो जाता है। इसमें सन् १६६१ ई० तक की घटनाएँ ही वर्णित हैं। ऐतिहासिक जानकारीके लिए यह ग्रन्थ किसी भी कामका नहीं है। (देखिये—मेरा ग्रन्थ 'House of Shivaji' दूसरा संस्करण)

(२) जयरामकृत 'पर्णाल-पर्वतग्रहणमाख्यानम्'।

(३) 'शिवराज-राज्याभिषेक-कल्पतरु'।

इन सब ग्रथोंके ठीक-ठीक ऐतिहासिक महत्त्वकी विवेचना, और अन्य ग्रन्थों-की सूची तथा उनका विस्तृत वर्णन मेरे अँग्रेजी ग्रन्थ 'शिवाजी'के चौथे संस्क-रणमें विस्तारपूर्वक दिया गया है। इन आधार-ग्रन्थोंकी पूरी जानकारी आदिके लिए उसे देखिए। विस्तारके भयसे उन सबका विवरण यहाँ नहीं दिया गया है।

दिनांक Due Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Due Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.